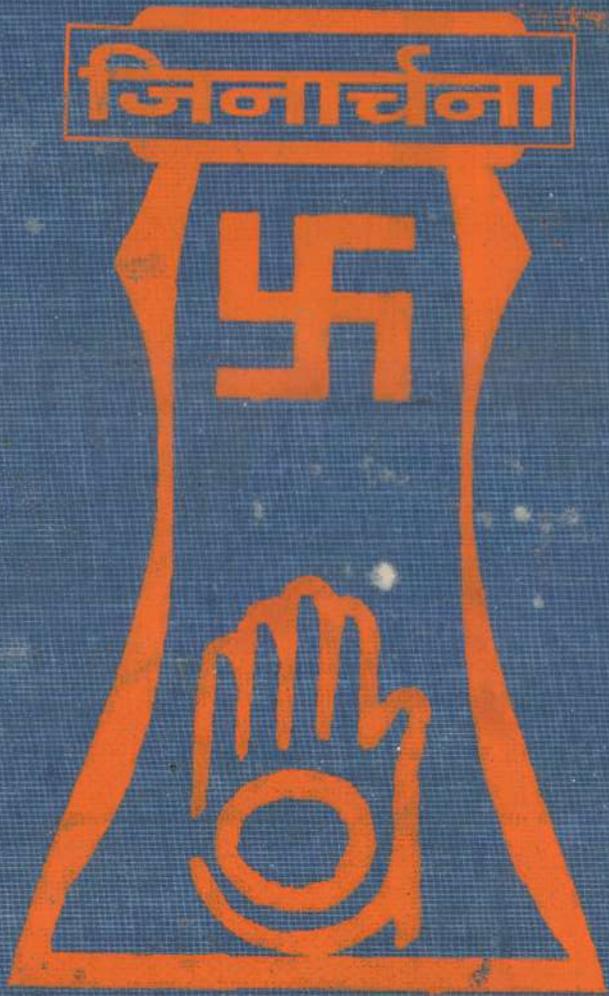


जिनार्चना



लेखक एवं समीक्षक  
उपाध्याय श्री 108 कनकनन्दीजी  
गुरुदेव

# जिनार्चना



लेखक एवं समीक्षक  
उपाध्याय श्री 108 कनकनन्दीजी  
गुरुदेव

समन्तभद्र स्वामी  
कुन्द कुन्द स्वामी  
कवि भूपाल  
मितगति आचार्य  
चार्य कुंदकुंद देव  
चार्य श्री जिनसेन  
चार्य श्री वीरसेन  
ज्यपाद स्वामी  
र्य श्री वसुनन्दि  
सन्तभद्र स्वामी  
श्री उमास्वामी  
शुभचन्द्राचार्य  
र्य श्री सोमदेव  
र्य श्री गुणभद्र  
ब्र. नेमीदत्त  
नरसेन देव

र्य श्री वीरनन्दि  
नेमीचन्द  
वामदेव  
र्य दामोदर  
र्य गुणभद्र  
र्य जयसेन  
र्य षणाचार्य  
नेमीदत्त  
र्य मुनीश्वर  
र्य शाधर

## धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन ग्रन्थांक - 6

### "जिनार्चना"

समीक्षक एवं संग्राहक - उपाध्याय श्री कनकनंदी जी गुरुदेव  
सहयोगी - मुनि श्री विद्यानंदी, मुनि श्री गुप्ति नंदी, आर्यिका राज श्री, आर्यिका क्षमाश्री  
कार्याध्यक्ष - श्रीमान् भंवर लाल पटवारी - बिजौलियाँ

#### सम्पादक मण्डल -

श्री प्रभात कुमार जैन	(एम.ए.सी.रसायन प्रवक्ता)	मुजफ्फर नगर
श्री रघुवीर सिंह जैन	(एम.एस.सी.एल.एल.बी)	मुजफ्फर नगर
श्री सुशीलचन्द्र जैन	(एम.एस.सी. भौतिकी)	बड़ौत।
मंत्री - गुणपाल जैन	(इंजीनियर)	मुजफ्फर नगर

प्रकाशन संयोजक - श्री नेमीचन्द्र काला, जयपुर

सर्वाधिकार सुरक्षित लेखकाधीन

संशोधित द्वितीय संस्करण - 1995

मूल्य - स्वाध्याय चिंतन व ध्यान (रु. 51.00)

प्रतियाँ - 1100

#### प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान

1. धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन, बड़ौत
2. नव अल्पना प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, मोदी खाना जयपुर - 3 (राजस्थान)
3. मुजफ्फर नगर, प्रभात कुमार जैन 48 कुंज गली।

#### द्रव्यदाता -

1. स्वर्गस्थ पिताजी पंकज जैन की पुण्य स्मृति में श्री विजयेन्द्र कुमार जैन (बसन्त कुँज) नई दिल्ली
2. श्री सूरजमल धर्मचन्द्र काला श्री सरस्वती गोलडन ट्रांसपोर्ट कम्पनी, कोटा।
3. हीरालाल (बाबूभाई) माणिक लाल गांधी, अकलूज जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

मुद्रण कार्य नव अल्पना प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, जयपुर द्वारा

### संदर्भित ग्रन्थ सूची

1. स्वयंभूस्तोत्र - समन्तभद्र स्वामी
2. प्रवचनसार - कुन्द कुन्द स्वामी
3. भूपाल स्तोत्र - कवि भूपाल
4. अमितगति श्रावकाचार - अमितगति आचार्य
5. रयणसार - आचार्य कुंदकुंद देव
6. हरिवंश पुराण - आचार्य श्री जिनसेन
7. जयधवला - आचार्य श्री वीरसेन
8. पूज्यपाद श्रावकाचार - आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
9. वसुनन्दि श्रावकाचार - आचार्य श्री वसुनन्दि
10. रत्नकरक श्रावकाचार - श्री समन्तभद्र स्वामी
11. उमास्वामी श्रावकाचार - आचार्य श्री उमास्वामी
12. पाण्डव पुराण - शुभचन्द्राचार्य
13. यशस्तिलक चम्पू - आचार्य श्री सोमदेव
14. जिनदत्त चरित्र - आचार्य श्री गुणभद्र
15. आराधना कथाकोष - ब्र. नेमीदत्त
16. श्रीपाल चरित्र (सिरिवाल चरित्र) - कवि नरसेन देव
17. षट्कर्मोपदेश माला
18. गौतम चरित्र
19. चन्द्रप्रभ चरित्र - आचार्य श्री वीरनन्दि
20. गो. सा. जीवकांड - नेमीचन्द्र
21. भाव संग्रह - वामदेव
22. चन्द्रप्रभ चरित्र - विद्वतप्रवर दामोदर
23. धनकुमार चरित्र - श्री भदन्त गुणभद्र
24. प्रतिष्ठा पाठ - आ. श्री जयसेन
25. गुणभूषण श्रावकाचार - श्री गुणभूषणाचार्य
26. धर्मोपदेशपीयूषवर्णश्रावकाचार - बह्य नेमीदत्त
27. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार - श्री सकल कीर्ति मुनीश्वर
28. सागार धर्मामृत - पंडित आशाधर

29. गद्य चिन्तामणि	-	वादीभ सिंह आचार्य
30. धर्म संग्रह श्रावकाचार		
31. आदि पुराण	-	आचार्य श्री जिनसेन
32. त्रैवर्णिकाचार	-	आचार्य श्री गुणभद्र
33. कुंदकुंद श्रावकाचार		
34. सर्वोपयोगी श्लोक संग्रह	-	आ. श्री अजितसागर
35. पद्म पुराण	-	श्री रविषेणाचार्य
36. लघुअभिषेक पाठ	-	अभयनन्दि संकलित
37. महाभिषेक	-	श्री पूज्यपाद स्वामी
38. वृहत्स्नपनम्	-	श्री गुणभद्राचार्य
39. नित्यमहोद्योतम्	-	पं. आशाधर
40. व्रतोद्योतन	-	श्री अभ्रदेव
41. वरांग चरित्र	-	आचार्य श्री जटासिंह
42. सावय धम्मदोहा	-	आचार्य योगीन्द्रदेव
43. भाव संग्रह	-	श्री देवसेन
44. भव्यमार्गोपदेशक उपासकाध्ययन		जिनदेव
45. पुरुषार्थानुशासनगत श्रावकाचार-		पं. गोविंद
46. सिरिवाल चरिउ	-	कवि नरसेन देव
47. करकंड चरिउ	-	मुनि कनकामर
48. भगवती आराधना	-	आचार्य श्री शिवार्य
49. मूलाचार	-	आचार्य श्री कुंद कुंद देव
50. इष्टोपदेश	-	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
51. समाधितंत्र	-	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
52. तिलोय पण्णत्ति	-	श्री यति वृषभाचार्य
53. शान्ति भक्ति	-	आ. श्री पूज्यपाद स्वामी
54. पंचास्तिकाय	-	आचार्य श्री कुन्दकुन्द
55. परमात्म प्रकाश	-	आचार्य योगीन्द्र देव
56. पद्मनन्दी पंचविंशतिः	-	आचार्य श्री पद्मनन्दी
57. सुगंधदशमी कथा	-	मुनि श्री उदयचन्द्र
58. रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका	-	पं. सदासुखदास जी

## विषयानुक्रमणिका - 1

पृष्ठ संख्या

विषय - क्या आगमोक्त पूजादि पापकारक है ?

### अध्याय - 1

जिनार्चना रहस्य	1
पूज्य (अर्चनीय)	2
पूजक	4
पूजा (अर्चना)	7
पूजा फल	17
जिनदर्शन : निजदर्शन	25
पूजक की स्वपर कल्याण की भावना	28
मुनियों के द्वारा जिनार्चना	29
मुनियों के द्वारा कृत जिनार्चना दोषप्रद नहीं	31
रजस्वला स्त्री के कर्तव्याकर्तव्य	44

### अध्याय - 2

परमात्म प्रकाश में वर्णित जिनार्चना	52
रयणसार में वर्णित जिनार्चना	53
पूजादि न करने का परिणाम	54
पद्म पुराण में वर्णित जिनभिषेक की छटा	56
इन्द्राणी आदि देवियों के द्वारा भगवान को गन्ध अनुलेपन	57
श्री राम लक्ष्मण एवं सीता की मुनि भक्ति	58
महासती सीता का नृत्य	59
हरिवंश पुराण में वर्णित जन्माभिषेक की छटा	59
देवियों द्वारा उबटन लेपन एवं अभिषेक	61

आदि पुराण में वर्णित सुलोचना द्वारा जिनार्चना .....	61
सती अंजना द्वारा जिनार्चना .....	62
मूलाचार मे वर्णित योग्य जिनार्चना .....	66
तिलोय पर्णात्त में वर्णित जिनार्चना .....	70
पूजादि क्रियाओं के उपदेशक तीर्थकर पापी नहीं .....	77
पूज्यपाद - श्रावकाचार में वर्णित जिनार्चना89	
व्रतोद्योतन - श्रावकाचार में वर्णित जिनार्चना .....	90
जिनार्चनादि के निन्दक - मिथ्यादृष्टि .....	95
जिनार्चना दोषप्रद नहीं .....	95
पुरुषार्थनुशासन - गत श्रावकाचार में वर्णित जिनार्चना .....	95
वरांग चरित्र में वर्णित पूजा पद्धति99	
अभिषेक .....	107
अष्टमंगल द्रव्यार्पण .....	110
मूर्ति स्थापन तथा पंचामृत अभिषेक का फल .....	111
द्रव्य पूजा फल .....	111
अष्ट मंगल द्रव्य दान फल .....	112
सावय धम्मदोहा में वर्णित जिनार्चना .....	113
सुगन्ध दशमी कथा में वर्णित जिनार्चना .....	119
वसुनन्दि - श्रावकाचार में वर्णित जिनार्चना .....	123
भावसंग्रह में वर्णित जिनार्चना .....	134
दिक्पालों का वर्णन .....	137
दिक्पालों का सम्मान .....	138
पंचामृत अभिषेक .....	138
पद्मपुराण में वर्णित जिनार्चना .....	144
रत्नकरण्डक श्रावकाचार में वर्णित जिनार्चना150	

उमास्वामी श्रावकाचार में वर्णित जिनार्चना .....	162
पंचामृताभिषेक का फल .....	172
त्रिकाल पूजा .....	176
पाण्डव पुराण में वर्णित जिनार्चना .....	177
यशस्तिलक चम्पू काव्य में वर्णित जिनार्चना .....	183
अभिषेक की विधि .....	187
दिक्पालों का आह्वान .....	190
फल रस अभिषेक .....	191

### अध्याय - 3

आगम में वर्णित स्त्रियों द्वारा अभिषेक .....	200
इन्द्राणी के द्वारा जिन बालक के शरीर में सुगन्धित लेपादि ..	204
स्त्री ने मुनि के चरण स्पर्श से पति को निर्विष किया .....	206
शान्तिकर्म के लिये सीता द्वारा पंचामृताभिषेक एवं जिनार्चना .....	207
श्री राम-सीता द्वारा कमल पुष्पादि से जिनार्चना .....	210
मैना सुन्दरी द्वारा पूजा .....	214

### अध्याय - 4

जिनागम में वर्णित शासन देवता .....	220
पद्मावती की पूजा .....	226

## विषय - पंचामृत अभिषेक

क्र.सं.	ग्रन्थ	आचार्य	अध्याय	श्लोक/गाथा
1.	वंराग चरित्र	जटासिंह नन्दी	23	16 से 20, 23 से 30, 58 से 69
2.	सावय धम्मो दोहा	योगीन्द्र देव	-	181 से 184
3.	भाव संग्रह	देवसेन आचार्य	-	441
4.	पद्म पुराण	रविषेणाचार्य	32	165 से 168
5.	उमा स्वामी श्रावकाचार	आ. उमा स्वामी	-	134 से 137
6.	यशस्तिलक चम्पू	आ. सोमदेव	-	83 से 87
7.	चन्द्रप्रभु चरित्र	विद्वत् प्रवर दामोदर	-	
8.	धर्मरत्नाकर	आ. श्री जयसेन	-	16 से 18
9.	धर्मोपदेश पीयूष वर्षा	ब्रह्मनेमीदत्त	-	206
10.	मेघमाला व्रत कथा व्रत		-	251
11.	आदि पुराण	आ. जिनसेन	-	1 से 35
12.	पद्मपुराण	दौलतरामकृत भाषाटीका	32	165 से 169
13.	वसुनन्दी श्रावकाचार	आ. वसुनन्दी	-	53 से 55
14.	हरिवंश पुराण	आ. जिनसेन	22	20, 21
15.	महाभिषेक पाठ	पूज्यपाद विरचित	-	16 से 18
16.	जैनाभिषेक	गजांकुश कवि	-	94 से 98
17.	नित्य महोद्योतम्	आशाधर	-	11 से 124
18.	त्रेवर्णिकाचार		-	57 से 63

## विषय - शासन देवी देवताओं सम्बन्धी पूजा

क्र.सं.	ग्रन्थ	आचार्य	अध्याय	श्लोक/गाथा
1.	व्रतोद्योतन श्रावकाचार	अभ्रदेव		356
2.	भाव संग्रह	देवसेन आचार्य		439-440
3.	यशस्तिलक चम्पू	सोमदेव	8, सन्धि 2	88, 44, 28
4.	श्री पाल मैना सुन्दरी	कवि नरसेन देव		
5.	जिनागम	अष्टम आशवास		240-241

6.	हरिवंश पुराण		66 पर्व 9 सर्ग	43-45, 22
7.	संस्कृत भाव संग्रह	वामदेव आचार्य	-	41, 42
8.	वृहत्सन्नपनम्	गुणभद्र	-	57
9.	धन्यकुमार चरित्र	श्री भदन्त गुणभद्र	द्वितीय परिच्छेद	100 से 103
10.	भव्य मार्गोपदेश	जिनदेव		350-351
11.	भाव संग्रह	देवसेन		439-440
12.	तिलोय पण्णति	यतिवृषभाचार्य	-	1905
13.	महाभिषेक	पूज्यपाद विरचित	-	11
14.	करकण्ड चरित्र	मुनि कनकामर	-	संधि 7, पृ. 92 गा. 12/पृ. 101, संधि 10, पृ. 151
15.	हरिवंश पुराण		22	102
16.	प्रतिष्ठा सारोद्धार	आशाधर विरचित	-	63-64, 42 से 55
17.	गद्य चिन्तामणि	वादीभसिंह	-	128-130
18.	अभिषेक पाठ संग्रह	इन्दूलाल शास्त्री (संग्रहीत)		28
19.	सम्यक्त्व कौमुदी			पृ. 178

## विषय - स्त्री द्वारा जिनाभिषेक सम्बन्धी प्रमाण

क्र.सं.	ग्रन्थ	आचार्य	अध्याय	श्लोक/गाथा
1.	पद्मपुराण	रविषेणाचार्य	3	171-187
2.	हरिवंश पुराण	आ. जिनसेन	8	172-174
3.	पद्मपुराण	रविषेणाचार्य	39	44-56
4.	सुगन्ध दशमी कथा	उदय चन्द्र मुनि	द्वितीय संधि	17
5.	पाण्डव पुराण	शुभ चन्द्राचार्य	13	22-24
6.	श्रीपाल चरित्र		-	
7.	मुकुट सप्तमी		-	
8.	षट्कर्मापदेशन रत्नमाला		-	
9.	हरिवंश पुराण	आ. जिनसेन	38	54
10.	हरिवंश पुराण	आ. जिनसेन	4	20-21

11. जिनदत्त चरित्र	आ. गुणभद्राचार्य	1	55-56
12. आराधना कथाकोष	-	-	-
13. पद्म पुराण	-	96	-
14. षट्कर्मोपदेशमाला	-	-	-
15. चन्द्र प्रभ चरित्र	आ. वीरनन्दी	-	61
16. श्रावका चार	आ. उमास्वामी	-	149 से 150

### विषय - अष्ट द्रव्य पूजा

क्र.सं.	ग्रन्थ	आचार्य	अध्याय	श्लोक/गाथा
1.	पद्म पुराण	रविषेणाचार्य	32	187 से 188
2.	मूलाचार	वट्टकेराचार्य (मूलगुणाधिकार)	-	- 24
3.	तिलोयपण्णत्ति	यतिवृषभाचार्य पञ्चमअधिकार-	-	104 से 116
4.	हरिवंश पुराण	आ. जिनसेन	66	-
5.	पद्मनन्दी पन्चविंशति	आ. श्री पद्मनन्दी	-	-
6.	आदि पुराण 1	आ. जिनसेन	17	252
7.	व्रतोद्योतन श्रावकाचार	अभ्रदेव	-	108 से 187, 193 से 198
8.	पुरुषार्थनुशासन	पं. गोविन्द	-	98
9.	जय धवला	वीरसेन स्वामी भाग 1	-	91 से 98
10.	वरांग चरित्र	जटासिंह नन्दी	23	7 से 10
11.	सावय धम्म दोहा	योगीन्द्र देव	-	184 से 190
12.	सुगन्ध दशमी कथा	उदय चन्द्र मुनि	-	पृ. 15 श्लोक 11 पृ. 19 श्लोक 12
13.	वसुनन्दी श्रावकाचासर	आ. वसुनन्दी	-	427 से 445
14.	भाव संग्रह	देवसेन आचार्य	-	471 से 486
15.	पद्म पुराण	रविषेणाचार्य	32	150 से 164
16.	रत्नकरण्डक	पं. सदासुख की टीका	-	208 से 11
17.	उमास्वामी श्राव.	आ. उमास्वामी	-	125 से 172
18.	पाण्डव पुराण	शुभ चन्द्राचार्य	13	22 से 29, 51 से 60
19.	यशस्तिलक चम्पू	आ. सोमदेव उत्तरखण्ड-	-	91 से 100

20. संस्कृत भाव संग्रह	वामदेव	-	24 से 63
21. धन्यकुमार चरित्र	भदन्त गुणभद्र	-	68, 75, 85, 102, 105, 106 षष्ठम परिच्छेद 135 से 137
4. प्रतिष्ठा पाठ	आ. जयसेन	-	94 से 104
23. धर्म रत्नाकर	आ. जयसेन	-	8 से 20, 54 से 64
24. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार	मुनि सकल कीर्ति	-	195 से 231
25. सागर धर्मामृत	पं. आशाधरजी	-	30 से 34
26. गद्य चिन्तामणी	वादीभसूरि	-	15
27. धर्म संग्रह श्राव.	मेधावी	-	61 से 65
28. सर्वोपयोगी श्लोक संग्रह	आ. अजित सागर	-	1 से 3, 9 से 26
29. प्रतिष्ठा पाठ	-	-	-
30. जिन यज्ञ कल्प	-	-	-
31. करकण्डु चरित्र	मुनि कनकामर	-	-
32. श्री पाल चरित्र	कवि नरसेन देव	-	-
33. मुकुट सप्तमी कथा	-	-	-
34. भक्तामर स्तोत्र	आ. मानतुंग	-	-
35. त्रिवर्णिकाचार	-	-	-
36. मुक्तावली पूजा	-	-	-
37. प्रभाकर सेन प्रतिष्ठाशास्त्र	-	-	-
38. जिन यज्ञ कल्प	आशाधर जी	-	-
39. त्रिकाल चतुर्विंशति पूजा	-	-	-
40. जिन संहिता	सिद्धांत चक्रवर्ती	-	-
41. वृहत्स्नपनम्	गुणभद्राचार्य	-	13 से 18
42. जैनाभिषेक	गजांकुश कवि	-	94 से 98

## क्या आगमोक्त पूजादि पापकारक है?

प्रत्येक जीव सुख चाहता है एवम् दुःख से दूर भागता है क्योंकि जीव का स्वाभाविक भाव सच्चिदानंद मय है। संसारी जीव भी सत्स्वरूप है, अविकसित चैतन्य स्वरूप भी है परन्तु आनंदमय अभी नहीं बना है। वह पूर्ण चैतन्य स्वरूप एवम् आनन्द स्वरूप बनने के लिये ऐन केन प्रकार से अनादि काल से प्रयत्नरत है परन्तु यह प्रयत्न तब तक सम्यक् नहीं होता है जब तक सम्यक्दर्शन/सत्यप्रतीति/आगमनिष्ठ/समताभावी नहीं हो जाता है। जब जीव योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव तथा गुरु उपदेश आदि को प्राप्त करके सम्यग्दृष्टि बनता है तब वह सत्यग्राही भी बन जाता है। तब उसे ज्ञान होता है, भान होता है कि सर्वज्ञ हितोपदेशी द्वारा प्रतिपादित एवं परम्परा दिग्म्बर जैन आचार्य द्वारा आगत सिद्धान्त ही परोपकारी सत्य सिद्धान्त है। वह अपनी शक्ति, भक्ति, परिस्थिति के अनुसार जैनागम का अनुकरण करता है। जिस सत्य, तथ्य एवम् आदर्श का अनुकरण एवं उसे आत्मसात नहीं कर पाता है उसको वह अपनी कमी मानकर श्रद्धा रूप में जानता है एवं मानता है किन्तु नकाराता नहीं है। जिस प्रकार सम्यग्दृष्टि जानता है एवं मानता है कि यथाजात निर्ग्रन्थ रूप अर्थात् मुनि/श्रमण बने बिना मोक्ष की उपलब्धि नहीं हो सकती है तथापि चारित्र मोहनीय के तीव्रोदय से तथा और भी कुछ कारणों से मुनि दीक्षा स्वीकार नहीं कर पाता है तो भी मुनि धर्म या मुनि-चर्या की निन्दा नहीं करता है और मुनि चर्या को खोटा भी नहीं मानता है। इसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान् के अभिषेक - पूजन, गुरुओं को आहार दान आदि को किन्हीं अनिवार्य कारणों से नहीं कर पाने पर भी जो उन क्रियाओं को करता है

उसकी अनुमोदना करता है, प्रशंसा करता है परन्तु उसकी निन्दा नहीं करता है और उन क्रियाओं का खोटा भी नहीं मानता है तथा करने वालों को किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचाता बल्कि यथायोग्य सहायता करता है। जैसे दयालु व्यक्ति असमर्थ - भूखे - भिखारियों को भोजन देता है। यदि भोजन देने में समर्थ नहीं है तो अन्य प्रकार से सहायता करता है, जो देता है उसकी सराहना करता है परन्तु वह उस भिखारी को न गाली देता है न अपमानित करता है, न विष देता है। इसी प्रकार जो भिखारी की सहायता करता है उसको भी न गाली देता है, न अपमान करता है, न ही किसी प्रकार का कष्ट देता है। वैसे ही सम्यग्दृष्टि की हर क्रियाओं में प्रवृत्ति होती है। परन्तु वर्तमान काल में अधिकांश व्यक्तियों में उपरोक्त क्रियाओं से विपरीत क्रियायें ही परिलक्षित होती हैं। कुछ व्यक्ति तो स्वयं अपना कर्तव्य नहीं करेंगे परन्तु जो कर्तव्य करते हैं उनको निन्दा करेंगे, उनको अपमानित करेंगे, उनको विभिन्न प्रकार की यातनायें भी देंगे। पापोदय से यदि स्वयं अच्छे भोजन नहीं कर पाते हो, दूसरो को भोजन नहीं दे पाते हो, तो जो स्वयं अच्छे भोजन करते हैं या दूसरो को करवाते हैं, उनसे ईर्ष्या क्यों करते हो? घृणा क्यों करते हो? उन्हें विष क्यों पिलाते हो?

कुछ लोग स्वयं को आगमनिष्ठ बताते हुये भी जो आगमानुसार अभिषेक पूजादि करते हैं उन्हें वे धर्मबाह्या, रूढिवादी, हिंसक, शिथिलाचारी, काष्ठसंघी, भट्टारक-परम्परावादी, मिथ्यादृष्टि कहते भी हैं और मानते भी हैं। वे कहते फिरते हैं कि आगम को नहीं मानना मिथ्यात्व है तो फिर वे स्वयं कौन हो जो आगम की दुहाई देते हुये भी स्वयं आगम को नहीं मानते, तदनुकुल आचारण नहीं करते और यहां तक कि आगमानुसार आचरण करने वाले की निन्दा

करते हैं एवं विरोध भी करते हैं। यदि स्वयं आगमानुसार आचरण नहीं करते हो तो कम से कम आगमोनुसार आचरण करने वालों से समता/माध्यस्थभाव रखना चाहिये।

मैंने जो अभी तक विभिन्न प्रदेशों के महानगर से लेकर छोटे ग्रामों का परीक्षण किया उससे मेरा अनुभव हुआ है कि दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी बहुशः अभिषेक एवं पूजा को ही लेकर परस्पर में अधिक कलह, वाद विवाद, मनमुटाव करते हैं जिससे परस्पर में समाज में फूट पड़ती है एवं धर्म की हंसी होती है, शक्ति का हास होता है। इसके कारण ही धर्म की या समाज की प्रगति नहीं होती है। इतना ही नहीं जैनेतर लोग उपरोक्त कारणों से जैन धर्मावलम्बियों को येन केन प्रकारेण से दबाने के लिये कोशिश करते हैं। आँरण बन्द कर दूध पीने वाली बिल्ली के समान कुछ जैनी सोचते हैं कि हमारी कमियों को, गलतियों का कोई नहीं देखते हैं और न ही जानते हैं। बिल्ली को मार पड़ने पर उसे नानी की याद आती है परन्तु जैन धर्मावलम्बियों को मार पड़ने पर भी वे अपनी गलतियों को न जानते हैं न मानते हैं न ही दूर करते हैं और न ही प्रमार्जित करते हैं। इन सब कमियों के कारण अनेक दिगम्बर जैन मंदिर, क्षेत्र संस्थाओं को अन्य लोग अपने अधिकार में कर लेते हैं। उपरोक्त कारणों के निरसन करने के लिये मैंने 'संगठन के सूत्र' नामक पुस्तक लिखी है - जिज्ञासु उसे पढ़ें।

जैन धर्म रत्नत्रयात्मक, अनेकांतमय, अहिंसामय, परम उदार धर्म है। इस जैन धर्म में हर विषय को सापेक्ष रूप से उदार भावना से देखा गया है। सम्पूर्ण आरंभ-परिग्रह तथा कर्मों से विरत होना सम्यग्दृष्टि का परम लक्ष्य है। तथापि सम्यग्दृष्टि श्रावक चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से सर्व विरत रूप मुनि धर्म को धारण नहीं

कर पाता है। इसलिये वे विषय वासनाओं से बचने के लिये विभिन्न आवलम्बनों से शुभोपयोग में मन लगाता है। इसलिये वह चार प्रकार के दान देता है, मंदिर निर्माण करता है, तीर्थक्षेत्र की यात्रा करता है, देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करता है। इन उपरोक्त कारणों में स्वयमेव आनुषंगिक रूप से स्थावर के साथ त्रस जीवों की हिंसा हो जाती है परन्तु यह आनुषंगिक हिंसा उसके लिये अधिक दोषा-वह नहीं है। जैनाचार्यों ने श्रावक के धर्म को एक प्रकार का व्यापार कहा है। जिस प्रकार व्यापार करने के लिये पहले धन-पूँजी लगाते हैं फिर पूँजी प्राप्त करते हैं। यदि वे पहले पूँजी विनिमय नहीं करेगा, तो लाभ भी प्राप्त नहीं कर सकता है। किसान खेत में अनेक क्विंटल बीज पहले डालता है जिससे वह उससे भी अधिक बीज को प्राप्त करता है। यदि किसान विचार करे कि मैं खेत में बीज डालकर क्यों बरबाद करूँ तो वह आगे के अधिक लाभ से वंचित रह जायेगा। इसी ही प्रकार जैन गृहस्थ श्रावक यदि दान, पूजादि से हिंसा होती है ऐसा विचार करके दान पूजादि नहीं करेगा तो वह उस सम्बन्धी शुभोपयोग, पुण्य सम्पादन एवं पाप की निर्जरा से वंचित हो जायेगा। यदि विवेक पूर्व शुद्ध आगमोक्त पंचामृत अभिषेक, पुष्प, फलादि से पूजा करने से एकेन्द्रिय स्थावर जीवों की हिंसा होती है, मान कर यदि त्याग किया जावे तो जल से भी अभिषेक, अष्ट द्रव्य से पूजा, मूर्ति निर्माण, मंदिर निर्माण, तीर्थ यात्रा, आहार दानादि से भी त्रस, स्थावरों की हिंसा होने से यह भी वर्जनीय हो जायेगा क्योंकि जल में विज्ञान की अपेक्षा 36450 त्रस जीव रहते हैं और जैन धर्म के अनुसार इससे भी अधिक त्रस जीव भी रहते हैं। यह तो हुई त्रस जीवों की संख्या परन्तु एकेन्द्रिय जलकायिक स्थावर जीव तो एक बिन्दु में असंख्यात होते हैं। जब अभिषेक के लिये, आहारदान के लिये, मंदिर निर्माण के लिये जल का प्रयोग करते हैं

तब इसमें स्थित कुछ त्रस जीव तो मरते ही है। और उस में स्थित असंख्यात स्थावर भी मरते ही हैं। यदि कोई कहे कि हम जब जल को प्रासुक करके प्रयोग करते हैं तब हिंसा किस प्रकार हुई? वो नहीं जानते हैं कि प्रासुक का क्या अर्थ होता है। प्रासुक का अर्थ होता है जल को गर्म करके व इलायची आदि तीक्ष्ण वस्तुओं को डालकर सम्पूर्ण जीवों से रहित करना है। इसका अर्थ है जलकायिक जीवों का मरण। कोई कहे कि हमारी भावना तो जीवों को मारने की नहीं रहती है किन्तु हमारी भावना तो पूजा करने की रहती है। तो जो पुष्प, फलादि से पूजा पंचामृताभिषेक करता है उनकी भावना क्या जीवों को मारने की रहती है? शुद्ध दूध, दही, घी आदि में न तो त्रस जीव रहते हैं और न ही स्थावर जीव रहते हैं। पुष्प फलादि स्थावर जीव का एक छोटा सा अवयव है। जब पुष्प या फल परिपक्व अवस्था में आ जाता है तब उनमें से कुछ स्वयमेव ही वृक्ष से अलग हो जाते हैं तो कुछ को अलग किया जाता है। अलग होने के बाद उस पुष्प फलादि में अधिक से अधिक आत्मप्रदेश अन्तमुहुर्त तक रह सकते हैं ऐसा विद्वानों का मत है। उसके बाद वह अचित्त हो ही जाता है। कहा भी है-

सुकं पक्कं तत्तं अंवलिलवणेण मिस्सियं दव्वं ।

जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुगं भणियं ॥

सूखने से, पकने से, आग पर गर्म करने पर, अम्ल, लवण को मिलाने से, यंत्र से छिन्न भिन्न करने से प्रत्येक एकेन्द्रिय सचित्त फलादि प्रासुक हो जाते हैं।

सचित्त विरत प्रतिमा पांचवी प्रतिमा है। इस प्रतिमा में श्रावक सचित्त भोजन नहीं करता है परन्तु इसके पहले-पहले के प्रतिमाधारी भी सचित्त भोजन कर सकते हैं। यह सचित्त विरत प्रति-

माधारी फलादि को अचित्त करके भोजन करता है यथा-

भक्षणेऽत्र सचित्तस्य नियमो न तु स्पर्शने ।

तत्त्वहस्तादिना कृत्वा प्रासुकं चात्र भोजयेत् (17) लां. सां.

सचित्त प्रतिमा में सचित्त के भक्षण न करने का नियम है, सचित्त को स्पर्शन करने का नियम नहीं है। इसीलिये अपने हाथ से उसे प्रासुक करके भोजन में ले सकता है।

यदि पहली प्रतिमा से चौथी प्रतिमा तक पंचमगुणस्थानवर्ती श्रावक भी सचित्त भोजन कर सकता है और पंचम प्रतिमाधारी सचित्त को अचित्त करके भोजन कर सकता है तब क्या वह धार्मिक कार्यों में आनुषंगिक रूप में जो स्थावर जीवों की हिंसा हो जाती है उसके भय से उन धार्मिक क्रियाओं को छोड़ सकता है? यदि केवल फल पुष्पों के लिये हठग्राहिता है तो अभिषेक के लिए आहारदान के लिए जल को अचित्त करके प्रयोग में भी नहीं ले सकता है क्योंकि इनमें भी तो सचित्त जल को अचित्त किया जाता है।

श्रावक संकल्पपूर्वक त्रस जीवों की हिंसा का त्यागी है। अप्रयोजनभूत अनावश्यक एकेन्द्रिय जीव की भी विराधना नहीं करता है परन्तु गृहस्थ कार्यों से स्थावर जीवों के साथ आरंभी उद्योगी विरोधी रूप त्रस जीवों के भी हिंसा हो जाती है। यदि गृहस्थ कार्यों के लिये त्रस तथा स्थावर जीवों की हिंसा तक हो जाती है तब धर्म के लिये आनुषंगिक स्थावर हिंसा अतिग्रहीत नहीं है। जो कुछ हिंसा होती है वह हिंसा भी संकल्प पूर्वक या दूषित भाव से नहीं की जाती है। इसीलिये तो समन्तभद्रस्वामी ने कहा है कि-

दही, दूध, गंध, पुष्प मालादि से पूजा करने पर जो पापा होता है वह पाप पुण्य के अनुपात से बहुत ही कम होने पर सावद्य /

पापकारक नहीं है।

यथा - ननु दधिदुग्धगन्धमाल्यादिना भगवतः पूजाभिधाने पाप-  
मप्युपाज्यते लेशतः सावद्यं सद्भावादित्याशङ्कयाह :

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ ।

दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ।(3)

(स्वयंभूस्तोत्र पृ. 71)

पूज्यमित्यादि - पूज्यमाराध्यं जिनमर्हन्तं त्वा त्वां वासुपूज्यं  
अर्चयतः पूजयतः जनस्य भव्यप्राणिगणस्य सावद्यलेशः अवद्यं पापं  
सह अवद्येन वर्तते इति सावद्यं कर्मः । तस्य लेशो लवः पूजां कुर्वतो  
यः संपन्नः स दोषाय पुण्योपार्जने प्रवृत्तदोषः पापोपार्जनं तस्मै न  
अलं न समर्थो भवति, कस्मिन्? बहुपुण्यराशौ प्रचुरपुण्यपुञ्जजे  
तेनोपह-तशक्तित्वास्तस्य । केवेत्याहकणिका मात्रालवो विषस्य न  
दूषिका न मारणात्मकविषधर्म संपादिका । क्व? शीतशिवाम्बुराशौ  
शीतं च शीतलं च स्पर्शनेन्द्रिय प्रहालकरं तच्च तदम्बु च जलं तस्य  
राशिः संघातो यत्रासौ शीतशिवाम्बुराशिः समुद्रस्तस्मिन् ।

हे नाथ! पूजा की सामग्री जुटाते समय आरम्भादि के कारण  
पूजा करने वाले मनुष्य के जो अल्पतम द्रव्य हिंसा होती है तथा  
सराग परिणति के कारण अल्प-तम भाव हिंसा होती है उससे  
पूजा करने वाले का कुछ अहित नहीं होता क्योंकि वीतराग जिनेन्द्र  
की पूजा करने से जो विशाल पुण्य उत्पन्न होता है उसके समक्ष वह  
अल्पतम हिंसा नगण्य होती है ठीक उसी तरह जिस तरह कि  
शीतल और आनन्द दायी जल के समुद्र में विष की एक कणिका ।

जिस प्रकार आहारदान करने में पानी छानना, गर्म करना,  
आगजलाना, फल बनाना, बर्तन साफ करना, चौका साफ करना,  
वस्त्र धोना, स्नान करना आदि से त्रस स्थावरों की भी हिंसा हो

जाती है तथापि यह पाप उद्देश्य पूर्वक नहीं किया जाता है परन्तु  
उद्देश्य महान् एवं पवित्र होने के कारण आहारदान में जो पाप होता  
है वह दोषकारक नहीं है, क्यों कि आहार दान में गुरु के प्रति  
अनुराग होता है, पुण्यबन्ध होता है पाप की निर्जरा होती है, पर-  
म्परा से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है इसी प्रकार अभिषेक पूजा  
तीर्थयात्रा आदि से जानना चाहिये ।

चावल में यदि पुष्प फलादि की स्थापना करके ही काम लिया  
जाय तब उसमें भी उपरोक्त गुणों के साथ-साथ दोष भी हैं । जहां  
पर जिस स्थान में पुष्प फलादि नहीं हैं, वहाँ पर उसकी स्थापना  
तंदुल में करके पूजा में प्रयोग करना चाहिये । जहाँ पर और जब  
आगमोक्त शुद्ध पुष्प फलादि हैं तो उसका भी प्रयोग विवेक पूर्वक  
करना चाहिये, ऐसा आगम में वर्णन पाया जाता है। यदि पुष्पादि में  
दोष है तो स्थापित पुष्पादि में भी दोष लगेगा। जिस प्रकार यशोधर  
के द्वारा आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाने से उसको उसके पाप से अनेक  
भव तक अनेक यातनायें सहन करनी पड़ी । इसी प्रकार पुष्प,  
फलादि चढ़ाने में दोष मानने पर स्थापित पुष्प फलादि के चढ़ाने  
में भी उतना ही दोष लगेगा और एक विचारणीय विषय है कि साक्षात्  
अर्हत भगवान हैं उनकी तो पूजा नहीं करते और मूर्ति में स्थापित  
अर्हत भगवान की ही पूजा करते हैं तो यह उचित एवं विवेक पूर्ण  
कार्य नहीं है । इसी प्रकार यथार्थ आगमोक्त प्रासुक शुद्ध अष्टद्रव्य है  
उससे श्रावक पूजा न करके स्थापित अष्टद्रव्य से पूजा करता है तो  
यह भी असम्यक् है। शक्ति एवं उपलब्धि होते हुये भी यदि चावल में  
स्थापित पुष्प गिरी में स्थापित दीपक एवं नैवेद्य से पूजा करते हैं तो  
इससे मायाचारी एवं झूठ का भी दोष लगता है। इतना ही नहीं  
आगम को नहीं मानने पर आगम का भी अपलाप होता है, आज्ञा

सम्यक्त्व में भी दोष लगता है।

कुछ लोग आगम को जानते हैं और मानते भी हैं तथापि स्थानीय परम्परा या मन्दिर परम्परा के कारण आगमोक्त पद्धति से अभिषेक, पूजा आदि नहीं कर पाते हैं। कुछ व्यक्ति अपने ग्राम में परम्परा के कारण आगमोक्त पूजा आदि नहीं कर पाते हैं परन्तु बाहर कहीं जाकर यदि आगमोक्त पद्धति से पूजादि होती है तो वहाँ जाकर कर लेते हैं। परन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो स्थानीय परम्परा के कारण अपने ग्राम में, नगर में, जो आगमोक्त पद्धति से पूजा आदि होती है, उसका विरोध तो करेंगे परन्तु श्रवण बेलगोला, महावीर जी आदि में जाकर स्त्री, परिवार सहित लाखों रुपये देकर पंचामृत अभिषेक करेंगे व फल आदि चढ़ायेंगे। जो स्वनगर में तो विरोध करते हैं और दूसरे स्थान पर जाकर आगमोक्त पूजा आदि करते हैं उन्हें विचार करना चाहिये कि यदि स्थानीय परम्परा के कारण स्वयं नहीं कर पाते हैं तो जो आगमोक्त रीति से करते हैं कम से कम उनका तो विरोध नहीं करे।

आचार्य, उपाध्याय, साधु, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, पंडित, सम्यग्दृष्टि श्रावक, अवि-रत सम्यग्दृष्टि आदि की दृष्टि आगम दृष्टि होती है। विशेष करके आचार्य, उपाध्याय, साधु की दृष्टि एवम् क्रिया आगमोक्त होती है। इसलिए आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने कहा है "आगम चक्रु साहु" अर्थात् वे आगम के अनुसार देखते हैं, जानते हैं, मानते हैं। आवश्यकता होने पर धर्म की रक्षा, समृद्धि के लिए वे आगम के अनु-कूल ही उपदेश देते हैं, आगम का एक भी शब्द न वे विपर्यास करते हैं न विपरीत बोलते हैं। परन्तु अभी कुछ आचार्य, उपाध्याय, साधु, पंडित आदि आगमोक्त अभिषेक, पूजा आदि का न उपदेश

करते हैं, न पूछने पर आगमोक्त पद्धति से उत्तर देते हैं। कुछ तो स्थानीय रूढ़ि, परम्परा के अनुसार उपदेश करते हैं एवम् उसका हठ भी पकड़ते हैं। यहाँ तक कि जिस शास्त्र में पंचामृत अभिषेक, पुष्प, फल आदि चढ़ाने का स्पष्ट निर्देश है उस शास्त्र के प्रणेता महान् आचार्यो तक को दिगम्बर मूल परम्परा से बाह्य यथा- काष्ठा संघी, यापनीय संघी मानते हैं और कुछ बोलते हैं यह परम्परा अजैनों से ली गई है या भट्टारक-परम्परा है। कुछ शास्त्र ऐसे भी हैं जिसमें पंचामृत आदि का वर्णन है जिस की रचना के समय काष्ठा संघ, भट्टारक परम्परा आदि का उद्गम ही नहीं हुआ था और एक विचारणीय विषय यह है कि यदि जिस शास्त्र में पंचामृत आदि का वर्णन है तो वह मूल परम्परा से बाह्य है तो उसके अन्य सिद्धांत मूल परम्परा के कैसे हो सकते हैं? इतना ही नहीं जिस आचार्य ने एवं जिस शास्त्र में काष्ठा संघ आदि का खण्डन है, उसी शास्त्र में पंचामृत अभिषेक आदि का वर्णन है। उदाहरण के तौर पर "देव-सेन आचार्य का भाव संग्रह एवम् सोमदेव सूरी के यशस्तिलक चम्पू आदि। जो मानते हैं अजैन परम्परा से हमारे आचार्यो ने ये सब ग्रहण किया है तो, क्या हमारे आचार्य मिथ्या परम्परा को स्वीकार करके स्वयं मिथ्या दृष्टि बने एवं अन्य को मिथ्यादृष्टि बनाना चाहे? और क्या जैन परम्परा या जैन आचार्य इतने दीन, हीन, गरीब हैं जो कि अन्य परंपरा से मिथ्यापरंपरा को स्वीकार किये? जो पंचामृत अभिषेक आदि को नहीं मानते हैं वे भी तो जैन धर्म को अनादि अनिधन मानते हैं तो ऐसे अनादि अनिधन, शुद्ध, समृद्ध ऐसे के जैन धर्म आचार्य दीन, हीन, भिखारी, परोपजीवी कैसे हो सकते हैं?

कुछ आचार्य आदि आगमोक्त पूजा आदि को जानते भी है

मानते भी हैं परन्तु लोक संग्रह के लोभ से या लोक का कोप भाजन न बनना पड़े इसलिए पूजादि के लिए जिज्ञासा करने पर भी स्पष्ट उत्तर नहीं देते हैं, दूसरों को गुमराह करते हैं या अन्धकार में रखते हैं? वे ऐसा करके क्या आगम का अपलाप नहीं करते हैं? सत्य को नहीं छिपाते हैं? हाँ, केवल कोइ कुतर्की खोटे भावों से झगड़ा करने के लिए प्रश्न करता है तो उस समय में मौन रहना अलग विषय है।

यदि पंचामृत अभिषेक आदि से हिंसा होती है इसलिए नहीं करना चाहिए, तो मन्दिर बनाने में, यात्रा करने में, आहार दान देने में इससे भी अधिक हिंसा होती है, तो ये भी अकरणीय हो जायेगा। तब तो श्रावकों के अनेक कर्तव्य लोप हो जायेंगे। तीर्थ-कर धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक हैं तो श्रावक आहार दान रूपी व्यवहार-तीर्थ के प्रवर्तक हैं। आहार दान रूपी व्यवहार तीर्थ के लोप से धर्म-तीर्थ का भी लोप हो जायेगा।

कुछ गृहस्थ ऐसे भी होते हैं जो धन के लिए, निहित स्वार्थ के लिए, बहुत बड़ी-बड़ी त्रस-स्थावर की हिंसा कर लेते हैं। निषिद्ध व्यापार, चर्म-, व्यापार, जमीकंद का व्यापार, तेल की मिल, ईट की भट्टी, शराब की फैक्ट्री एवम् दुकान, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट आदि बनाते हैं एवं विक्रय करते हैं, यही व्यक्ति धर्म क्षेत्र में जाकर शुद्ध धार्मिक परम्पराओं का अंहिसा के नाम पर विरोध करते हैं। इसका विशेष वर्णन मैंने मेरी किताब "ये कैसे धार्मिक, निर्व्यसनी, राष्ट्र सेवी?" में किया है। विशेष जिज्ञासुओं को वहाँ अवलोकनीय है।

कुछ गृहस्थ घर में एवं विवाह आदि में अनछना पानी जमी-कंद, शराब आदि का प्रयोग करते हैं एवं लाखों त्रसजीवों से सहित

पुष्पों की मालायें पहनते हैं, सजावट में प्रयोग लाते हैं, गाड़ी सजाते हैं, नीचे बिछा कर उन पर चलते हैं, उन पर सोते हैं तो क्या इससे पाप बन्ध नहीं होता? क्या यह सब विवेक से होता है? क्या इससे जीवों को कष्ट नहीं होता है? क्या ये शुभ धार्मिक क्रियायें हैं? भोग के लिए, धन के लिए, निहित स्वार्थ के लिए तो जानबूझ कर पाप करते रहेंगे परन्तु धार्मिक क्षेत्र में अपनी अवस्थानुसार विवेकपूर्ण आगमानुसार धार्मिक क्रिया करते हुए जो थोड़ी सी आनुषंगिक द्रव्य हिंसा हो जाती है उसको लेकर ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, फूट आदि करके अधिक भाव हिंसा करेंगे।

कुछ लोग कहते हैं हम तो पेट पोषण करने के लिए, धन कमाने के लिये सांसारिक कार्यों में पाप कमाते ही हैं परन्तु मंदिर में आकर पंचामृत अभिषेक आदि करके धार्मिक क्षेत्र में पाप क्यों कमायेंगे? उनका यह कुतर्क आगम-विरुद्ध एवं कुटिल भावों से युक्त है। जैसे कोई कहेगा कि हम भोजन बनाने के लिए जो पानी लाते हैं, आग जलाते हैं, फल सुधारते हैं, उससे तो पाप बन्ध होता ही है, परन्तु आहार दान रूपी धार्मिक क्रियाओं के लिए पानी क्यों लायेंगे? आग क्यों जलायेंगे? फल क्यों सुधारेंगे? क्योंकि इसमें हिंसा होती है, पाप बन्ध होता है। तो क्या उनके ये तर्क विवेक सहित, आगम सम्मत एवम् भाव विशुद्धि सहित हैं? नहीं कदापि नहीं।

कुछ लोग बादाम आदि को पूर्ण अचित्त मानते हैं परन्तु इसमें भी योनिभूत जीव हैं। क्योंकि इसमें भी जीव-उत्पत्ति की शक्ति रहती है क्योंकि उसको बोने से अंकुर की उत्पत्ति होती है। कोई कहे कि पंचामृत अभिषेक के बाद उसमें जीव की उत्पत्ति हो जाती है। इसलिये पंचामृत अभिषेक वर्जनीय है। तो क्या जलाभिषेक में

मर्यादा के बाद एवं अष्ट द्रव्य में भी जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है? और एक विचारणीय विषय है यह है कि साधु को जो आहार देते हैं उससे मल भी बनता है। और साधु उस मल को विसर्जन करते हैं। जिसमें अनेक जीव उत्पन्न होते हैं ऐसा विचार करके क्या साधु को आहार देना पाप है? वर्जनीय है? जब मूर्ति या मन्दिर बनाते हैं तब असंख्यात पृथ्वी कायिक जीवों की हिंसा होती है और मूर्ति के लाने ले जाने में अनंत त्रस, स्थावर जीवों की मृत्यु होती है। तब क्या यह कार्य भी वर्जनीय है? क्षपक श्रेणी आरोहण करने वाले मुनि के शरीर में स्थित अनंत त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा होती है तो क्या क्षपक श्रेणी आरोहण करना पापात्मक है? नहीं, कदापि नहीं क्योंकि उपरोक्त कार्य में उद्देश्य एवं भावना पवित्र एवं अहिंसात्मक रहती है इसलिये उपरोक्त कार्य पापकारी नहीं है। इसी प्रकार पूजा, अभिषेक आदि में जानना चाहिये। विशेष जिज्ञासु मेरी "जिनार्चना" नामक पुस्तक अवलोकन करें।

पूर्व आचार्य एवं पंडितकृत साठ-पैंसठ प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर मैंने "जिनार्चना भाग 1 एवं भाग 2" को लिखा था एवं उनका प्रकाशन 1990 में हुआ था और उस समय से ही उनकी अधिक मांग होने के कारण उनकी प्रतियाँ समाप्त हो गई हैं एवं वर्तमान में इसकी महती आवश्यकता है। इसलिए अभी दोनों भाग संयुक्त रूप में द्वितीय संस्करण के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। सत्य जिज्ञासु, आगमनिष्ठ व्यक्ति तो इस आगमोक्त पद्धति को स्वीकार करते ही हैं परन्तु जो आगमोक्त पद्धति को नहीं जानते हैं, नहीं मानते हैं या नहीं करते हैं, वे भी इस आगमोक्त रीति को जाने, माने और तद्योग्य आचरण करके सातिशय पुण्य को प्राप्त करें। यदि किसी कारण वशतः कर नहीं पत्ते हैं तथापि जानने के साथ-साथ अवश्य

मानें और जो आगमोक्त रीति से पूजा, अभिषेक आदि करता है उनकी अनुमोदना करे एवं यदि स्पष्ट वाचनिक रूप से अनुमोदना भी नहीं कर पाते हो तो मानसिक अनुमोदना करे और करने वालों का किसी भी प्रकार विरोध करके पाप के भागी कदापि ना बने। जिज्ञासु सज्जन इस पुस्तक में दिये गये श्लोकादि की प्रमाणिकता जानने के लिए संदर्भ एवं ग्रंथ सूची की मदद से उन-उन मूल ग्रंथों का अवलोकन अवश्य करे। आचार्य श्री महावीर कीर्ति गुरुदेव, आचार्य श्री विमल सागर गुरुदेव, आचार्य श्री सन्मति सागर गुरुदेव, आचार्य श्री अजितसागर गुरुदेव, मुनि श्री पद्मनन्दी, मुनि श्री देवनंदी, मुनि श्री अमित सागर, मुनि श्री गुप्तिनंदी, आर्यिका श्री विशुद्धमति (संघस्था आचार्य श्री धर्मसागर गुरुदेव), आर्यिका श्रीज्ञानमति, आर्यिका राज श्री, आर्यिका करुणा श्री पंडित वर्य सुमेर चन्द्र दिवाकर आदि पहले पंचामृत अभिषेक आदि आगमोक्त पद्धति को नहीं मानते थे परन्तु जब उन्होंने आगम का अध्ययन किया तब से अपना मत परिवर्तित कर आगमानुसार विचार एवं आचार में परिवर्तन किया है। ठीक ही है सम्यग्दृष्टि जीव अल्प ज्ञानी गुरु से शिक्षा प्राप्त करके असत्य को भी सत्य मान लेता है परन्तु वही विशेष ज्ञानी गुरु के उपदेश से या शास्त्र से सुनकर अथवा उनका अध्ययन कर असत्य को त्याग देता है और सत्य को ग्रहण कर लेता है। उसी प्रकार हर भव्य जीव सत्य को जाने, माने, स्वीकार करे एवं शाश्वतिक मोक्षपद को प्राप्त करें।

ऐसी शुभ महती भावनाओं के साथ-

आगमोपासक

उपाध्याय श्री कनकनंदी

## अध्याय-१

### जिनार्चना रहस्य

जैन धर्म, वस्तु स्वभाव रूप अनेकान्तात्मक होने के कारण इसमें प्रत्येक वस्तु की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया गया है। इसीलिए जैन धर्म, वस्तु स्वतंत्र धर्म को स्वीकार करने के कारण प्रत्येक द्रव्य के स्वचतुष्टय स्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप स्वतंत्रता को स्वीकार करता है। इसीलिए प्रत्येक द्रव्य शुद्ध परमार्थिक दृष्टिकोण से परावलम्बन से रहित है। इसीलिए जैन-चार्यों ने स्पष्ट रूप से उद्घोष किया है :-

“सव्वे सुदा हु सुध्दणया” अर्थात् सम्पूर्ण जीव, शुद्ध निश्चय नय से शुद्धबुद्ध, नित्य, निरंजन, निर्विकार, परम स्वतंत्रता वाले स्वचतुष्टय के धनी हैं। इसीलिये इस दृष्टिकोण से कोई भी जीव न छोटा है न बड़ा है, न उँचा है न नीचा है। यह जैन धर्म का परमोत्कृष्ट साम्यवाद है। इसीलिये परम शुद्ध निश्चय नय से पूज्य और पूजक भाव नहीं है क्योंकि पूज्य पूजक भाव की संभावना तब रहती है जब जीव में प्रभु एवम् दासता का भेद हो। परंतु व्यवहार दृष्टिकोण से कर्म संयोग के कारण जीव में विभिन्न वैसम्यता दृष्टिगोचर होती है। एक जीव कर्म परतन्त्रता के कारण अनंत दुःख, अज्ञान आदि का वेदन करता है तो अन्य एक जीव संपूर्ण कर्म बंधनों से रहित होने के कारण अनंत सुख, ज्ञान का धनी है। कर्म परतन्त्रता में रहने वाला जीव दास है तथा कर्म बंधन से रहित जीव प्रभु है। दासता के बन्धन में जकड़ा हुआ जीव सम्पूर्ण बन्धनों से रहित अनंत स्वतंत्रता के स्वामी का वैभव देखकर उसके समान स्वयं को स्वतंत्र वैभव पूर्ण बनाने के

लिए उनको आदर्श बनाता है। अपना आदर्शनीय पुरुष जिस पुरुषार्थ के माध्यम से उस आदर्शमय स्थान को प्राप्त किये हैं उसका यथाशक्ति अनुसरण करता है। उस आदर्श को आत्मसात् करने के लिए जिन जिन पद्धतियों का आवलम्बन लेता हैं उनमें से सरल, सहज, प्राथमिक साधन होने के कारण अनुराग, भक्ति/समर्पित भाव श्रेष्ठ आवलम्बन है। इससे ही पूज्य, पूजक, पूजा, एवं पूजा फल का शुभारम्भ होता है। उपरोक्त संपूर्ण रहस्य को उद्घाटन करने वाला श्रीमत् जिनसेन आचार्य कृत जिन सहस्रनाम स्तोत्र में एक श्लोक निम्न प्रकार हैं :-

**स्तुति पुण्य गुणोत्कीर्ति : स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः ।**

**निष्ठितार्थो भवां स्तुत्यः फल नैश्रेयसं सुखम् । 99।**

पुण्यमय आदर्श गुणों के कीर्तन/प्रशंसा/गुणगान को स्तुति, अर्चना, प्रार्थना, पूजा कहते हैं। आदर्श गुणानुरागी भव्य प्रसन्न मन वाला स्तोता/स्तुति करने वाला पूजक होता है। जिसने कृतकृत्य होकर परम पुरुषार्थ रूप अमृत स्वरूप पूर्णावस्था को प्राप्त कर लिया है ऐसे परम ब्रह्म स्वरूप शुद्धात्मा स्तुत्य/पूजनीय है। स्तुति, पूजा, प्रार्थना का फल नैश्रेयस सुख है।

### 1. पूज्य (अर्चनीय)

पूजा का एक मनोवैज्ञानिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदर्श होता है। प्रत्येक कार्य के लिए एक निश्चित लक्ष्य बिन्दु होना चाहिए। लक्ष्य बिन्दु को निश्चित करके लक्ष्य की ओर बढ़ना, प्रयाण-यात्रा है। बिना लक्ष्य से चलना केवल भटकाव ही भटकाव है। इसी प्रकार पूजा का भी सुनिश्चित आदर्श लक्ष्य बिन्दु होना चाहिए। उत्तम साधनों से उत्तम साध्य की सिद्धि होती है। इसीलिये उत्तम पूजा रूपी साध्य के लिये उत्तम साधनों की

आवश्यकता होती है। पूजा के साधनों में से सर्वप्रथम साधन पूज्य है। इसीलिये जैनाचार्यों ने स्तुति, पूजा के लिये परिक्षण-निरीक्षण के माध्यम से पूज्य का निर्णय किये हैं। समन्तभद्र स्वामी पूज्य के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि :-

**आप्तेनोच्छिन्नदोषेणसर्वज्ञेनागमेशिना।**

**भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्। 5।**

(रत्नकरण्ड.)

निश्चय से पूज्य (आप्त) को संपूर्ण दोष से रहित होना चाहिए और सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा आगम का प्रणेता होना चाहिए, क्योंकि उपरोक्त गुणों से रहित अन्य प्रकार से पूज्यपना नहीं हो सकता है।

पूज्यपाद स्वामी भी अर्हत् भक्ति में भी पूज्य (जिन, आप्त) का लक्षण बताते हुए कहते हैं :-

**जितमदहर्षद्वेषा, जितमोह परीषहा, जितकषायाः।**

**जितजन्म मरण रोगाः जितमात्सर्यं जयन्तु जिनाः। (90)**

जिन्होंने मद, हर्ष भाव, द्वेष परिणति को जीत लिया है, जिन्होंने मोहरूपी महाशत्रु को तथा क्षुधा, तृषादि 22 परिषहों को जीत लिया है; अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, सज्ज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा हास्य, रति, अरति शोक, भय, जुगुप्सा और, तीनों वेद रूप 25 कषायों को जीत लिया है; जिन्होंने जन्म, मरणादि रोगों को जीत लिया है तथा जिन्होंने मात्सर्य, ईर्ष्या तथा खेद के भाव को भी जीत लिया है; ऐसे जिनेन्द्र देव सदा जयवंत रहें।

## 2. पूजक

आदर्श पूज्य पुरुष के प्रति मन-वचन काय से समर्पण भाव रखने वाला एवं गुणानुराग से ओत-प्रोत होने वाला पूजक होता है। जब तक वस्तु स्वरूप का यथार्थ परिज्ञान, विश्वास नहीं होता है तब तक उसका हेय-उपादेय ज्ञान नहीं होता है। इसलिए वस्तु स्वरूप से सम्पूर्ण अनभिज्ञ आध्यात्मिक प्रकाश से अत्यन्त दूर मिथ्या अन्धकार में व्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव पूज्य के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानने के कारण एवम् पूजा के फल से अनभिज्ञ होने के कारण वह कभी भी पूजक नहीं हो सकता। भले यदि एक मिथ्यादृष्टि पुरुष भी पूजा करता है किन्तु आध्यात्मिक आगम दृष्टि से उसे पूजक नहीं कहा जा सकता, परन्तु उसी प्रकार जीव को जो पुण्य बंध होता है उससे उसको भौतिक सुख सामग्री की उपलब्धि होती है। यदि मिथ्यादृष्टि निकट भव्य, मंद कषायी है उसके पूजा के फल से पुण्य बंध के साथ-साथ भविष्य काल में सम्यक्त्व प्राप्ति के लिए कारण भी बन सकता है। परन्तु यथार्थ पूजक चतुर्थ गुणस्थान से प्रारंभ होता है। सविकल्पक पूजक चतुर्थ गुणस्थान से लेकर छठे गुणस्थान तक का जीव है। सप्तम-गुणस्थान से ध्यान-अवस्था में अभेद पूजक-पूज्य भाव रहता है। चतुर्थ-पंचम गुणस्थान में पूजक भाव-पूजा के लिए द्रव्य पूजा का आवलम्बन लेता है। इसलिये चतुर्थ-पंचम गुणस्थान में द्रव्य-पूजा सहित भाव-पूजा है अथवा भाव-पूजा सहित द्रव्य पूजा है। छठे गुणस्थान में सविकल्प रूप/भेद-रूप भाव पूजा है, द्रव्य पूजा गौण है। सप्तम गुणस्थान से द्रव्यपूजा से रहित अभेद रूप भाव-पूजा है। यह वर्णन सार्वभौमिक आध्यात्मिक, आगमोक्त दृष्टिकोण से है। अन्यान्य वर्णन इसी जिना-

र्चना पुस्तक में विभिन्न आचार्यों के मतानुसार यत्र-तत्र किया गया है। विस्तारभय से विशेष वर्णन नहीं कर रहे हैं, तो भी संक्षिप्तः वर्णन निम्न प्रकार से है- पूजक को शुद्ध मन-वचन-काय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सहित होना चाहिए। पूजक को प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में निद्रा त्याग कर शौचादि से निवृत्त होकर शुद्ध छना जल से शारीरिक शुद्धि करके शुद्ध वस्त्र परिधान करना चाहिए। स्वगृह से शक्त्यादि के अनुसार शुद्ध प्रासुक जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप-धूप, फलादि यथायोग्य अष्ट द्रव्य लेकर जीवों की रक्षा करते हुए ईर्यापथ शुद्धि से पूज्य पुरुष के गुणकीर्तन, प्रार्थना, स्तुति, वंदना आदि करते हुए मंदिर में जाना चाहिए। मंदिर के द्वार में प्रवेश करते हुए ॐ जय! जय! जय! निःसहि! निःसहि! निःसहि! नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु! भावपूर्वक बोलना चाहिए। जब पहले पूजा के लिए घर त्याग किया था तब उस समय द्रव्य रूप से एवम् भाव रूप से सांसारिक समस्त आरंभ - परिग्रह आदि का त्याग करके मन्दिर की ओर प्रयाण किया था किन्तु अभी चाहिए। मंदिर के द्वार पर प्रवेश करते हुए उपरोक्त जय एवं निःसहि शब्द से मंदिर में पूजन अर्चन करने वाले मनुष्य एवं देवों को रास्ता देने की सूचना के साथ साथ पूजक के गुण स्मरण सहित अपने अंतरंग में स्थित भाव - परिग्रह स्वरूप क्रोध, मान, माया, लोभ को स्वयं की आत्मा से दूर होने के लिये सूचना देता है अर्थात् हटाता है। मंदिर के द्वार के एक पार्श्व में प्रासुक जल से हाथ-पैर एवं मुख की शुद्धि करके मन्दिर में प्रवेश करता है क्योंकि रास्ते में गमन करते समय अशुद्ध मिट्टी कीचड़ आदि के साथ साथ सूक्ष्म रोगाणु, कीटाणु हाथ पैर में लग जाते हैं। बिना हाथ-पैर धोये मंदिर में प्रवेश करने से मंदिर का वातावरण दूषित हो जाता है। पूजक को चाहिये कि

शरीर शुद्धि भाव शुद्धि एवं वातावरण शुद्धि के लिये मुख में इला-यची, लौंग, पान, तम्बाकू आदि वस्तुओं का प्रयोग न करें। मंदिर जाने के समय पूजन, वंदन, स्तुति, नमस्कार के समय चर्म निर्मित एवं ऊन से निर्मित किसी भी वस्तु का प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार प्राणी के अवयवों स्वरूप, रक्त, माँस, हड्डी आदि से निर्मित लिपिस्टिक, क्रीम, पाउडर, नेलपा-लिश, आदि सौन्दर्य-प्रसाधन सामग्री का प्रयोग मंदिर जाते समय कदापि नहीं करना चाहिये तथा चर्बी से निर्मित साबुन से स्नान करके भी मंदिर नहीं जाना चाहिए। क्योंकि प्रथमतः उप-रोक्त चीजों की उत्पत्ति हिंसात्मक साधनों एवं प्रक्रिया से होती है एवं प्रत्येक समय में उपरोक्त चीजों में तज्जातिय अचाक्षुष सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति निरंतर होती रहती है। इसी प्रकार संपूर्ण चर्मज, रोमजों में जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। वस्तुतः उन चीजों का त्याग आजीवन करना ही श्रेयस्कर है। उपरोक्त चीजों के व्यवहार से हिंसा के साथ-साथ शारीरिक शुद्धि, मानसिक शुद्धि एवं वातावरण की शुद्धि भी नहीं रहती है। मंदिर आते समय चप्पल आदि का भी प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि नंगे पैर जाने से पूज्य के प्रति विनय प्रगट होता है, उसके साथ-साथ पृथ्वी के साथ पैर के स्पर्श एवं घर्षण से भावात्मक एवं द्रव्यात्मक विद्युत का परिचालन पृथ्वी के साथ होता है, जिससे स्वास्थ्य लाभ भी होता है।

मंदिर में प्रवेश के बाद ईर्यापथ शुद्धि, दर्शन-पाठ, णमोकार मंत्र एवं चत्तारि दण्डक आदि का स्मरण करते हुए मंदिर की तीन प्रदक्षिणा करें। तीन प्रदक्षिणा करते हुए:

(1) जन्म-जरा-मृत्यु

(2) शरीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक रोग

(3) द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म विनाशार्थ एवं सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चरित्र की प्राप्ति के अर्थ बायें की तरफ से तीन प्रद-क्षिणा लगायें। प्रदक्षिणा के अनन्तर भगवान, के सन्मुख एक पार्श्व भाग में कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े होकर ईर्यापथ शुद्धि के लिये णमोकार मंत्र का नव बार स्मरण करें। उसके अनन्तर गवासन में बैठकर तीन बार पंचाँग नमस्कार करें। गवासन का अर्थ यह है कि जिस प्रकार गाय पाँच अंगों का स्पर्श करके बैठती है उसी प्रकार दो पैर दो हाथ और एक सिर को जमीन में स्पर्श करके मन-वचन-काय से नमस्कार करें। भावपूर्वक गवासन में बैठकर नमस्कार करने से मानसिक तनाव आदि दूर होते हैं, विनय गुण प्रगट होता है, पूज्य के प्रति आदर एवं समर्पण भाव प्रगट होता है। दर्शन के उपरान्त पूर्वाचार्य प्रणीत अभिषेक-पूजा आदि विधि से करें। अनन्तर प्रासुक शुद्ध सफेद वस्त्र से भगवान् को ठीक से पोंछकर सिंहासन में विराजमान करें। आगमानुकूल प्रासुक आसन में पूर्व या उत्तरदिक् की ओर मुख करके बैठकर पूजन करें।

3 पूजा (अर्चना)

पूजा के पर्यायवाची शब्द -

यागो यज्ञः क्रतुः पूजा सपर्येज्याध्वरो मखः।

मह इत्यपि पर्याय वचनान्यर्चनाविधेः॥ म.पु.6(193)

याग, यज्ञ, क्रतु, पूजा, सपर्या, अध्वर, मख और मह ये सब पूजा विधि के पर्यायवाची शब्द हैं।

## पूजा के भेद

प्रोक्ता पूजार्हतामिज्या सा चतुर्था सदार्चनम्।

चतुर्मुखमहःकल्पद्रुमाश्चाष्टान्हिकोऽपि च॥ म.पु.38 (26)

पूजा चार प्रकार की है:-

(1) सदार्चन (नित्यमह)

(2) चतुर्मुख (सर्वतोभद्र)

(3) कल्पद्रुम

(4) अष्टान्हिका।

इसके अतिरिक्त एक ऐन्द्रध्वज महायज्ञ भी है जिसे इन्द्र किया करता है। तथा और भी जो पूजा के प्रकार हैं वे इन्हीं भेदों में अन्तर्भूत हैं।

संक्षिप्त से पूज्य पुरुष के प्रति आदर-सत्कार, बहुमान, विनय, समर्पण, भाव ही पूजा है। तथापि विभिन्न अपेक्षा-दृष्टि-नय-निक्षेपों की अपेक्षा इसमें भेद-प्रभेद परिलक्षित होता है। जैसे : नाम पूजा, स्थापना पूजा, द्रव्य पूजा, क्षेत्र पूजा, काल पूजा, भाव पूजा अथवा द्रव्य पूजा और भाव की अपेक्षा दो भेद भी है।

बाह्य द्रव्यों का आवलम्बन लेकर प्राथमिक चतुर्थ-पंचम आदि गुणस्थानवर्ती पूजक, पूज्य पुरुषों की जो भावपूर्वक अर्चना करता है उसे द्रव्य पूजा कहते हैं। शुद्ध प्रासुक जल, चंदन, अक्षत, पुष्प (गुलाब, कमल, जाई, जुई) नैवेद्य (मिष्ठान्न, लड्डू, पेड़ादि) दीप, धूप, फल (नारियल, आम, केला, सुपारी, बादाम आदि) आदि से मन-वचन-काय की

शुद्धि पूर्वक पूज्य पुरुषों की अर्चना को द्रव्य पूजा कहते हैं। अथवा शरीर से अवनत होकर, वचन से, पंच परमेष्ठी का गुण-गान करना भी द्रव्य पूजा है। साक्षात् जीवन्त पंच परमेष्ठियों की पूजा करना सचित्त पूजा है। पंच परमेष्ठियों की मूर्तियों की पूजा करना अचित्त पूजा है। इस उपरोक्त प्रकार से सचित्त, अचित्त पूजा का वर्णन शास्त्र में पाया जाता है।

सम्पूर्ण आरम्भ-परिग्रह से रहित मुनीश्वर विशेषतः बाह्य द्रव्यों के अवलम्बन बिना भाव पूजा करते हैं। परन्तु वे भी शरीर, वचन, मूर्ति आदि का भाव शुद्धि के लिये द्रव्य पूजा रूप में आवलम्बन लेते हैं। परन्तु श्रावक, सम्यग्दृष्टि जीव आरम्भ-परिग्रह से लिप्त होने के कारण, मन की अस्थिरता के कारण विशेषतः बाह्य द्रव्यों के आवलम्बन लेकर भाव पूजा करते हैं। बिना बाह्य द्रव्यों के आवलम्बन से उनके मन की स्थिरता, भाव शुद्धि तथा भाव पूजा नहीं हो सकती हैं। इसीलिये पूर्वाचार्यों ने इस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को भले प्रकार से अवगत करके उनके लिये द्रव्य का विशेष महत्व दिया है।

द्रव्य पूजा के लिये निश्चित रूप से आरम्भ तथा परिग्रह का आवलम्बन लेने से कुछ न कुछ सावद्य का दोष लगता ही है। परन्तु अल्प दोष के भय से श्रावक यदि द्रव्य पूजा को त्याग देगा तो बहुत कुछ अनर्थ की परम्परा प्रारम्भ हो जायेगी क्योंकि स्वयं वह सम्पूर्ण प्रकार आरम्भ, परिग्रह, हिंसा से विरक्त नहीं हुआ है। वह जीवन-यापन करने के लिए कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि आरंभ करता है। वह धन-सम्पत्ति आदि बाह्य 10 प्रकार परिग्रह और लोभादि अन्तरंग चौदह प्रकार के परिग्रह से सहित है एवं आरम्भी, उद्योगी, विरोधी हिंसा से युक्त है। द्रव्य पूजा से हिंसा

होती हैं यह मानकर यदि द्रव्य पूजा का गृहस्थ त्याग कर देता है तब मंदिर बनवाने में, मूर्ति बनवाने में, तीर्थ यात्रा करने में, रथ-यात्रा में, पंच कल्याणक महोत्सव में, आहार दान आदि करने में भी आरम्भ, परिग्रह, हिंसा अनिवार्य रूप से होने से इन सबका भी परित्याग करने का प्रश्न उपस्थित होगा, जो कि महान् अनर्थ का कारण बनेगा क्योंकि उपरोक्त कार्य के बिना व्यवहार तीर्थ की प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। व्यवहार तीर्थ के अभाव में निश्चय तीर्थ की प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। निश्चय तीर्थ के बिना मोक्ष की उपलब्धि नहीं हो सकती है। इसीलिये अनिवार्य, प्रासंगिक, अनिच्छापूर्वक होने वाले दोष से भयभीत होकर आत्मकल्याण के लिए अनिवार्य अपने पुनीत कर्तव्य को अज्ञान-प्रमाद-आलस्यवशतः त्यागना नहीं चाहिये। द्रव्य पूजा से भी अधिक आरम्भ-परिग्रह-हिंसा आहार दान में होती है। तब क्या आहार देना श्रावक छोड़ दे? कदापि नहीं। क्योंकि "दाणं पूया मुखं सावय धम्मे ण सावया तेण विणा" दान एवं पूजा श्रावकों का मुख्य कर्तव्य है। यदि वह दान और पूजा नहीं करता है तो वह श्रावक ही नहीं है। महान् तार्किक, महामनीषि, आद्य स्तुतिकार समन्तभद्र स्वामी, भक्ति को सम्यग्दर्शन का अभिन्न अंग या पर्यायवाची मानते हैं। 'पूजा, भक्ति का अभिन्न अंग या पर्यायवाची शब्द है' इससे सिद्ध होता है कि भक्ति के बिना सम्यग्दर्शन की उपलब्धि, वृद्धि, विशुद्धि नहीं हो सकती है। समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि-

देवाधिदेव चरणे परिचरणं सर्वदुःख निर्हरणम्।

कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादाटतो नित्यम्। 119। (र.श्रा.)

श्रावक को आदर से युक्त होकर प्रतिदिन मनोरथों को पूर्ण

करने वाली और काम को भस्म करने वाले पूजा करनी चाहिये। अरंहत भगवान् के चरणों में समस्त दुःखों को दूर करने वाली पूजा करना चाहिये। समन्तभद्र स्वामी दान, जिनार्चना को वैया-वृत्ति में अन्तर्निहित करके यह बताये हैं कि तीनों परस्पर परिपूरक, अनुपूरक हैं। उपरोक्त कार्य से यथार्थतः पाप संचय नहीं होता है परन्तु संचित पाप कर्म का प्रक्षालन होता है। कहा भी है:-

गृह कर्मणापि निचितं कर्म विमाष्टि खलु गृह विमुक्तानाम्।  
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि। (114)

जिन्होंने अंतरंग और बहिरंग से घर का त्याग कर दिया हैं तथा सब तिथियाँ जिन्हें एक समान हैं, किसी खास तिथि से राग द्वेष नहीं है ऐसा मुनियों के लिये जो दान किया जाता है वह सावद्य-व्यापार-सपाप कार्यों से उत्पन्न बहुत कर्म को भी उसी तरह नष्ट कर देता है जिस तरह कि स्वच्छ जल, मलिन, रुधिर को धो देता है-नष्ट कर देता है।

वस्तुतः गृहस्थ लोग कर्म की निर्जरा एवं पुण्य बंध की अपेक्षा पापास्त्रव एवं पाप बंध अधिक करते हैं। इसीलिये यहाँ पर समन्तभद्र स्वामी-गृहस्थों को रुधिर से लिप्त विशेषण दिया है। दान-पूजा आदि को स्वच्छ जल का विशेषण दिया है। जिस प्रकार रुधिर से लिप्त अवयव या वस्त्र को धोने के लिये स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार कृषि, वाणिज्य आदि व्यापार क्रोध, लोभादि कषाय, भोग, विषय आदि वासना से अर्जित पाप रूपी रुधिर को प्रक्षालन करने के लिये देव पूजा, आहार दानादि पुण्य रूपी स्वच्छ जल की आवश्यकता होती है। जब तक गृहस्थ-संबन्धी सम्पूर्ण विषय-वासनाओं को त्याग नहीं करता है तब तक दान-पूजादि त्याग करने वाला,

मुनि धर्म से भी भ्रष्ट तथा श्रावक धर्म से भी भ्रष्ट अर्थात् वह उभय भ्रष्ट है। जब वह गृहस्थ संबन्धी समस्त आरम्भ, परिग्रहादि का त्याग कर देगा और मुनि धर्म को स्वीकार करेगा तब दान-पूजादि स्वयमेव छूट जायेंगे। गृहस्थ होते हुए भी अल्प सावद्य भय से दान नहीं करना, मानो बीज के नष्ट होने के भय से कृषक बीजारोपण नहीं करने के सदृश है। निश्चय से कृषि कार्य के लिए पहले कुछ बीजों को भूमि में रोपण किया जाता है। इस दृष्टि से यदि कृषक बीजारोपण नहीं करेगा तब वह स्व पर भरण-पोषण स्वरूप अनाज उत्पन्न नहीं कर सकता है। उसी प्रकार गृहस्थ आनुषंगिक अनिच्छ पाप के भय से यदि दान-पूजा आदिक नहीं करेगा तब वह इहलोक-परलोक संबन्धी आत्म-कल्याण रूपी फल से वंचित हो जायेगा क्योंकि जैसे बीज को उपयुक्त योग्य उपजाऊ भूमि में रोपण करने से फलित होता है उसी प्रकार धर्म क्षेत्र में दान, पूजादि रूपी बीजारोपण करने से वह बीज योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव को प्राप्त कर अंकुरित पल्लवित होकर उभय लोक सुखदायक फल पुष्प से भरित होता है। स्वामी समन्तभद्र ने कहा भी है:-

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।  
फलतिच्छाया विभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम्। (116)

उचित समय में योग्य पात्र के लिये दिया हुआ थोड़ा भी दान उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए वट वृक्ष के बीज के समान प्राणियों के लिए माहात्म्य और वैभव से युक्त, पक्ष में छाया की प्रचुरता सहित बहुत भारी अभिलषित फल को देता है।

आचार्य श्री ने संक्षिप्ततः इसका फल लिखकर विराम नहीं लिये परन्तु प्रत्येक प्रकार भक्ति आदि से क्या-क्या फल की

उपलब्धि होती है बताये हैं। यथा :-

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।  
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्ति स्तपोनिधिषु। (115)

तपस्वियों को प्रणाम करने से उच्चगोत्र, दानादिक देने से भोग, सेवा से पूजा-प्रभावना, भक्ति अर्थात् गुणानुराग से उत्पन्न श्रद्धा विशेष से सुन्दर रूप, तथा आप ज्ञान के सागर है'' इत्यादि स्तुति करने से कीर्ति प्राप्त होती है।

यदि छठे-सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनियों को नमस्कार आदि करने से उपर्युक्त फल प्राप्त होता है तब क्या तेरहवें गुणस्थान-वर्ती अरहंत भगवान् तथा नव देवताओं की पूजा अर्चना, भक्ति, आदर, सत्कार, नमस्कार, आरती आदि करने से उभय लोक सुखदायक फल की प्राप्ति नहीं होगी? निश्चय से होगी ही। इसी-लिये किंचित् प्रासंगिक सावद्य भय से उभय लोक सुखदायक दान-पूजादिक का त्याग नहीं करना चाहिये। यह मत केवल मेरा ही नहीं है यह अभिप्राय स्वामी समन्तभद्र, जयध्वला, ध्वला-कार आचार्य वीरसेन से लेकर सभी पूर्वाचार्यों के है जिसका वर्णन इसी पुस्तक में यत्र तत्र सर्वत्र आपको देखने में मिलेगा। तो भी संक्षिप्ततः समन्तभद्र स्वामी की एक कारिका उद्धृत कर रहा हूँ। यथा -

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।  
दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीत शिवाम्बु राशौ ॥

हे जिनेन्द्र भगवान् ! आप ही निर्दोष होने के कारण पूज्य है। आपकी पूजा करने वालेको लेश मात्र पाप संचय होता है एवं विपुल मात्रा में पुण्य संचय होता है इसीलिए आपकी पूजा दोष कारक नहीं है। जैसे शीतल अगाध समुद्र की जल राशि में एक

कण विष डालने से वह विष-कण विपुल जल राशि को दूषित नहीं बना सकता है उसी प्रकार इहलोक-परलोक, अभ्युदय एवं मोक्ष सुख को देने वाली पूजा से यत्किंचित् पाप होते हैं किन्तु वह दोषकारक नहीं है।

कुछ विचारणीय विषय यह है कि गृहस्थ, आरम्भ-परिग्रह एकेन्द्रिय हिंसा, आरम्भी हिंसा, उद्योगी हिंसा, विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं है। इसके बिना गृहस्थ आश्रम टिक ही नहीं सकता है। जब स्वस्वार्थ के लिए, धन कमाने के लिए भोगोपभोग के लिए हिंसा करता है तब भोग उपभोग के लिए, स्वकर्त्तव्य पालन करने के लिए, आत्म-विशुद्धि के लिए पुण्य सम्पादन के लिए अनिच्छा पूर्वक अनिवार्य हिंसा हो जाती है तो क्या दोष है? यदि इस हिंसा से भी गृहस्थ भयभीत है तो बहुत ही उत्तम है क्योंकि उपरोक्त हिंसा का त्याग किये बिना छटा आदि गुणस्थान रूप प्रशस्त मोक्ष मार्ग प्रारम्भ नहीं होता है। तब उसको सम्पूर्ण आरम्भ परिग्रह का त्याग करके निर्ग्रन्थ मुनि बन ही जाना चाहिए जो कि अत्यन्त उपादेय, अभिनन्दनीय, अभिवन्दनीय है। परन्तु जब तक विषय कषाय, आरम्भ-परिग्रह को त्याग नहीं करता है, धनादि के लिए केवल स्थावर नहीं, त्रस वध तक करता है, झूठ बोलता है, एक बार ही स्त्री सम्भोग करके नवलक्ष पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य जीवों का हनन करता है तब तक दान पूजादिक से होने वाली अनिवार्य हिंसा से डरकर पूजा आदि नहीं करना उसकी अज्ञानता, हठग्राहिता, मूढता, आगम, अनभिज्ञता है। संसार को बढ़ाने वाले क्रिया-कलापों को करता हुआ, जीवों की हिंसा करता है पाप से नहीं डरता है। परन्तु मोक्षमार्ग के लिए प्रशस्त कार्य कलापों से, कर्त्तव्य पालन से, यत्किंचित् आनुसंगिक पाप स्वयमेव हो जाता

है, उसके लिए मनमाना आगम विरुद्ध, कुतर्क करके स्वयं दान पूजादिक प्रशस्त कार्य को नहीं करता है और जो करता है उसके रास्ते में कंटक स्वरूप होकर ऊपर उभरता है। दूसरी बात यह है कि पुण्य, पाप, कर्म-बंध एवं निर्जरा का मूल आधार भाव है। दान पूजादिक से भाव प्रशस्त एवं शुभ होने से यथायोग्य पुण्य-बंध, कर्म निर्जरा आदि होती है। इसका वर्णन यत्र-तत्र इस पुस्तक में वर्णित है तो भी यहाँ कुछ संक्षिप्त से पूर्वाचार्यों के मतानुसार प्रस्तुत कर रहा हूँ। यथा-

परिणाममेव कारण माहुः खलु पुण्यपापयोः प्राज्ञाः ।

तस्मात् पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेयः ।

(आत्मानुशासन) (23)

पुण्य एवं पाप के लिए प्राज्ञ व्यक्तियों ने परिणाम (भाव) को ही कारण कहा है। इसीलिए पाप का अपचय (विनाश) करना एवं पुण्य का संचय करना सहज है।

पूजा का मूल उद्देश्य या साध्य दर्शन-विशुद्धि, पंच परमेष्ठी प्रति समर्पित भाव, विनय, पुण्य संचय, कर्म निर्जरा एवं परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति है। इसीलिए मुमुक्षु गृहस्थों को यथायोग्य आगमोक्त द्रव्य पूजा सहित भाव पूजा करनी चाहिए। यदि कोई आगमोक्त पूजा कर रहा है एवं स्वयं कोई कारण वशतः नहीं कर रहा है तो आगमोक्त पूजा करने वालों का किसी प्रकार से विरोध नहीं करना चाहिए तथा श्रद्धान रखना चाहिए कि मैं किसी कारण-वशतः आगमोक्तरीति से पूजा नहीं कर पा रहा हूँ परन्तु आगम में वर्णित पद्धति ही यथार्थ है। आगम का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। कुंदकुंद स्वामी ने कहा भी है :-

जं सकृद् जं कीरद् जं च ण सकृद् जं च सदहणं ।

केवलि जिणेहिं भणियं सदहमाणस्स सम्मतं ॥ (22)

(दंसण पाहुड)

जितना करने की सामर्थ्य हो उतना करना चाहिए, जितना करने की सामर्थ्य नहीं है उसमें श्रद्धान करना चाहिए। केवली जिनेन्द्रों ने कहे हैं, श्रद्धान करने वालों को सम्यक्त्व होता है।

परन्तु वर्तमान में कुछ लोग द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव से प्रेरित होकर आगमोक्त प्रणाली से जिनार्चना नहीं करते है तथा किसी भी प्रकार की पूजा नहीं करने वाले भी जो आगमोक्त पद्धति से जिनार्चना करने वालो की निंदा समीक्षा करते रहते हैं वे व्यक्ति “उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे” इस नीति को चरितार्थ कर रहे हैं। यहाँ तक कि जो कभी देवदर्शन, जिनार्चना, आहार दान आदि क्रियाये नहीं करते हैं वे भी आगमोक्त जिनार्चना करने वालों की भर्त्सना करते हैं। इतना ही नहीं जो श्रावक भक्ति से आगमोक्त पद्धति से पूजादि करते हैं उसको वह पाखंडि, पन्थवादी, रूढ़िवादी, पापी, हिंसक, मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इतना ही नहीं जिनार्चना के साधन भूत द्रव्यों को लेकर कलह, विग्रह, मुकदमा, पार्टीबाजी (गुटबन्दी) आदि करते हुए स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जैन धर्म सर्वज्ञ प्रणीत, परम्परा आचार्य द्वारा संजीवित अनेकांत स्याद्वादमय, अहिंसा-पूर्ण, शांति, सह-अस्तित्व धर्म में साधन को लेकर साध्य को भूलकर नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। यहाँ तक कि प्रासंगिक एकेन्द्रिय जीव की द्रव्य हिंसा को लेकर भाव हिंसा के साथ-साथ पंचेन्द्रिय सहधर्मी मनुष्य की हिंसा करने के लिए उतारू हो रहे हैं। इसलिये वे लोग अजैन द्वारा कही गई सूक्ति (जैनी होकर छैनी बन रहे हैं) “पानी पीवे छानकर जीव मारे जानकर” को चरितार्थ कर रहे हैं। इसलिए मेरे मन में बहुत दिनों से आगमोक्त जिनार्चना विधि क्या है ? इसको जनगण के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए विचार तरंगे कल्लोलित हो रही थी। वही भावात्मक अमूर्तिक तरंगे साकार रूप लेकर गुणग्राही पाठको के सम्मुख प्रस्तुत है।

#### 4. पूजा -फल -

अरंहतादि पंचपरमेष्ठी या नव देवता यथायोग्य राग-द्वेष से रहित होने के कारण वे पूजा आदि से प्रसन्न होकर वर प्रदान नहीं करते हैं तथा निंदा अवमानना आदि से अभिशाप नहीं देते हैं। तब स्वाभाविक प्रश्न होता है कि यदि वे प्रसन्न होकर या रूष्ट होकर हमारा कुछ लाभ-हानि नहीं करते हैं तो उनकी अर्चना से क्या लाभ है? इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर समन्तभद्र स्वामी के वचन में निम्न प्रकार है:-

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।  
तथापि ते पुण्य गुण स्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः।57।

(स्वयंभूस्तोत्र)

हे जिनेन्द्र भगवान् । आप वीतरागी होने के कारण आपको पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है तथा निंदा करने वालों से आपका किसी प्रकार का वैरत्व नहीं है तथापि आपके पुण्य श्लोक, गुणों के स्मरण मात्र से चित्त पवित्र हो जाता है एवं पाप रूपी कलंक दूर हो जाते हैं।

परिणत दशा में बाह्य शुभाशुभ द्रव्यों का परिणाम जीवों पर भी शुभाशुभ रूप से पड़ता है जैसे स्वच्छ स्फटिक मणि विभिन्न रंग की संगति से विभिन्न रूप से परिणत करता है, जैसे लौह खण्ड चुम्बक के घर्षण से चुम्बक रूप परिणमन कर लेता है, बुझा हुआ दीप प्रज्वलित दीपक की संगति से प्रज्वलित हो जाता है, वीर पुरुषों के फोटों देखने से उनकी जीवनगाथा सुनने से, स्मरण करने से अंतरंग में वीरत्व भाव जागृत होता है कामी पुरुष द्वारा अश्लिल चित्र, संगीत, सिनेमा, नाटक देखने से तथा तद्विषयक पुस्तक पढ़ने से, स्मरण करने से उसके मन में काम चेतना जागृत होती है। महापुरुष, धर्मात्मा पुरुष, वीतराग पुरुष की मूर्ति देखने से, उनके गुणगान करने से, उनकी स्तुति करने से, मन में भी उनके आदर्श गुण जागृत हो जाते हैं। यह ही मनोवैज्ञानिक अनुभवगम्य सिद्धान्त पूजा-अर्चना-स्तुति में निहित है। पूज्य पुरुष पूजक

के लिए आदर्श (दर्पण) के समान होते हैं। जैसे - स्वमुख को देखने की इच्छा रखने वाला स्वच्छ दर्पण को देखता है उसी प्रकार स्वात्मा गुणों को देखने के इच्छुक आदर्श पुरुष का दर्शन करता है।

आचार्य- कुंदकुंद स्वामी ने प्रवचन सार में स्वआत्मद्रव्य परिज्ञान का उपाय बताते हुए वर्णन किया है :-

जो जाणदि अरहतं दव्वत्तगुणत्त पञ्जयत्तेहि।

सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।80।

(प्रवचनसार)

जो अरहतं भगवान् को द्रव्य-दृष्टि, गुण-दृष्टि, पर्यायदृष्टि से जानता है वह स्वआत्मद्रव्य को जानता है और उसका मोह विलय हो जाता है। भक्त जब भगवान् के पास जाता है तब वह भगवान् के स्वरूप रूपी दर्पण से अपने स्वरूप का दर्शन करता है जब वह द्रव्य दृष्टि से स्वयं को एवं भगवान् को देखता है तब दोनों में कोई अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है क्योंकि पूज्य भी जीव द्रव्य है तथा पूजक भी जीव द्रव्य है। गुण दृष्टि से भी कोई विशेष अंतर परिलक्षित नहीं होता है किन्तु जब पर्याय दृष्टि से अवलोकन करता है तब दोनों में महान् अन्तर परिलक्षित होता है क्योंकि भगवान्, पर्याय दृष्टि से अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य के अक्षय भण्डार है एवं पूजक स्वयं अनन्त अज्ञान, दुखादि को भोगने वाला है।

इंग्लिश में एक नीति वाक्य है-

There is no difference between God and us.

But there is so difference between God and us.

अर्थात् द्रव्यदृष्टि से भगवान् और हमारे में कोई अन्तर नहीं है किन्तु अवस्था दृष्टि (पर्याय दृष्टि) से भगवान् और हमारे में महान् अंतर है। भक्त भगवान् के पास एक अलौकिक उपादेय प्रशस्त स्वार्थ को लेकर जाता है। उसका स्वार्थ यह है कि मेरा स्वरूप भगवत् स्वरूप होते हुए भी

मैं अभी दीन-हीन भिखारी के समान हूँ। मैं भगवान् के पास जाकर उनसे वही शिक्षा प्राप्त करूँगा जिस मार्ग पर चलते हुए भगवान् ने इस परमो-त्कृष्ट नित्यानंद अवस्था को प्राप्त किया है। इसीलिए भक्त की आद्यन्त भावना एवं परिणति निम्न प्रकार की होती है-

दासोऽहं रटता प्रभो आया जब तुम पास।

“द” दर्शत हट गयो, “सोऽहं रहो प्रकाश” ॥

सोऽहं सोऽहं ध्यावतो रह न सको सकार ।

दीप “अहं” मय हो गयो अविनाशी अविकार॥

जब भक्त भगवान् के पास आता है तब वह स्वयं को दास (पूजक) एवं भगवान् को प्रभू (पूज्य) मानता है। जब भगवान् का दर्शन करके भगवान् का स्वरूप एवं स्व स्वरूप का तुलनात्मक विश्लेषण करता है, जब वह पूज्य के गुणों को अनुकरण करके आध्यात्मिक साधना करता है तो उस साधना के फलस्वरूप निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करता है तब सोऽहं रूप विकल्प भी विलय हो जाता है, तब अहं रूप अविनाशी, अविकार स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यह ही पूजा का परमो-त्कृष्ट फल है। आचार्य प्रवर उमास्वामी ने कहा है - “वन्दे तद्गुणलब्धये” अर्थात् मैं वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, भगवान् को उनके गुणों की प्राप्ति के लिए वन्दना करता हूँ।

पूजा, वंदना, अर्चना, विनय, समर्पित भाव में ऐसी एक शक्ति है जिससे पूजक के मन में पूज्य के गुण संचार करते जाते हैं तथा धीरे-धीरे पूजक भी पूज्य बन जाता है। विद्वद्वर श्री आशाधर जी ने अध्यात्म रहस्य के मंगलाचरण में कहा है:-

भव्येभ्यो भजमानेभ्यो यो ददाति निजपदम्।

तस्मै श्री वीरनाथाय नमः श्री गौतमाय च॥

जो भजमान भव्यों को भक्ति में अनुरक्त सुपात्र भव्य जीवों को अपना पद प्रदान करते हैं- जिनके भजन आराधन से भव्य प्राणियों को उन जैसे

पद की प्राप्ति होती है-उन श्री वीर स्वामी को अक्षय ज्ञान लक्ष्मी एवं भारती विभूतिरूप “श्री” से सम्पन्न भगवान् महावीर को तथा श्री गौतम स्वामी को नमस्कार हो।

वीतराग सर्वज्ञ भगवान् के पास जो गुण होते हैं वे ही गुण पूजक को देते हैं। भगवान् के पास स्वरूप को छोड़कर और कुछ उनके पास है ही नहीं। इसलिये वे भक्त को स्व स्वरूप ही दे देते हैं। पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है-

**अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।  
ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्ध मिदं वचः ॥इष्टोपदेशः॥२३॥**

आत्म ज्ञान से शून्य अज्ञानियों की सेवा उपासना अज्ञान को देती है और ज्ञानियों की सेवा उपासना ज्ञान उत्पन्न करती है क्योंकि यह बात अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्य के पास जो कुछ होता है उसी को वह देता है।

**भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।  
वर्त्तिदीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी॥१७॥समाधितन्त्र॥**

अपने आत्मा से भिन्न अर्हन्त, सिद्ध परमात्मा की उपासना-आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाती है। जैसे-दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानी-साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

**येन भावेन यद्रूपं ध्यायेत्मात्मानमात्मवित्।  
तेन तन्मयता याति सोपधिः स्फटिको यथा॥**

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है वह उस स्वरूप हो जाता है जैसे-स्फटिक मणि विभिन्न रंगों के सम्पर्क से उस वर्ण रूप परिणमन करता है।

**परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।  
अर्हत्ध्यानाविष्टो भवार्हन् स्यात् स्वयं तस्मात्॥**

यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है वह उस स्वरूप हो जाता है।

अर्हत् के ध्यान सहित ध्याता स्वयं अर्हत् रूप हो जाता है।

जिनार्चना से बहुआयामी लाभ होता है। इससे महान् आत्मा के प्रति विनय भाव प्रकट होता है। मानसिक शान्ति मिलती है जिससे मानसिक तनाव दूर होने के कारण शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य प्राप्त होता है। पूज्य पुरुषप्रति प्रशस्त राग होने के कारण पाप कर्म के संवर के साथ-साथ असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा एवं सातिशय पुण्य बन्ध होता है। जिससे अभ्युदय के साथ-साथ अन्त में मोक्ष सुख की उपलब्धि होती है। पूज्य पुरुष का नामोच्चारण, गुणगान, नामस्मरण स्वयं मंगल स्वरूप है। वीरसेन स्वामी ने धवला में तथा यति वृषभाचार्य ने तिलोयपण्णत्ति में मंगल का विस्तृत वर्णन करते हुए निम्न प्रकार कहा है :-

**पुण्यं पूदपवित्ता पसत्थ सिवभद्धसेग कल्लाणा।  
सुहसोक्खादी सव्वेणिद्धिट्ठा मंगलस्स पज्जाया॥४॥**

पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ और सौख्य इत्यादि सब मंगल के ही पर्याय अर्थात् समानार्थक शब्द कहे गये हैं।

**गालयदि विणासयदेघादेदि देहदि हंति सोधयदे।  
विध्वंसेदि मलाई जम्हा तम्हा य मंगलं भणिदं॥१॥**

क्योंकि यह पाप-या मलों को गलाता है, विनष्ट करता है, घातता है, दहन करता है, हनता है, शुद्ध करता है और विध्वंस करता है इसीलिए इसे मंगल कहा गया है।

**अहवा बहुभेयगयं णाणावरणादिद्व्वभावमलभेदा।  
ताई गालेइ पुढं जदो तदो मंगलं भणिदं॥४॥**

अथवा ज्ञानावरणादिक द्रव्यमल के और ज्ञानावरणादिक भावमल

के भेद से मल के अनेक भेद है, उन्हें चूँकि यह पृथक् करता है, गलाता है अर्थात् नष्ट करता है इसीलिए यह “मंगल” कहा गया है।

अहवा मंग सोक्खं लानादि हु गेणहेदि मंगलं तम्हा।  
एदेण कज्जसिद्धि मंगइ गच्छदि गंथकत्तारो॥5॥

अथवा, चूँकि यह “मंग” को अर्थात् सुख को लाता है, इसलिए भी इसे “मंगल” समझना चाहिए। इसी के द्वारा ग्रंथकर्ता अपने कार्य की सिद्धि पर पहुँच जाता है।

पावं मलं ति भण्णइ उपयार सरुवरण जीवाणं।  
तं गालेदि विणासं णेदि ति भणंति मंगलं केई॥7॥

जीवों के पाप को उपचार से मल कहा जाता है। उसे मंगल गलाता है, विनाश को प्राप्त करता है, इस कारण भी कोई आचार्य इसे मंगल कहते हैं।

अरहंताणं सिद्धाणं आइरिय उवज्जयाइं साहूणं।  
णामाइं णाममंगल मुदिदं वीयराएहिं॥9॥

वीतराग भगवान् ने अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इनके नामों को नाममंगल कहा है।

ठावणमंगलमेदं अकट्टिमाकिट्टिमाणि जिणबिवा।  
सूरि उवज्जसाहूदेहाणि हु दव्वमंगलयं॥20॥

जिन भगवान् के जो अकृत्रिम और कृत्रिम प्रतिबिम्ब है, वे सब स्थापना मंगल हैं। तथा आचार्य, उपाध्याय और साधु के शरीर द्रव्य मंगल है।

णासदि विग्घं भेददि अग्घं दुट्ठा सुरा ण लंघंति।  
इट्ठो अत्थो लब्भइ जिणणामगहणमेत्तेण॥30॥

जिन भगवान् के नाम के ग्रहण करने मात्र से विघ्न नष्ट हो जाते हैं, पाप खण्डित होता है, दुष्ट देव लांघते नहीं अर्थात् किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करते और इष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है।

सत्थादि मज्झअवसाणएसु जिणतोत्तमंगलुच्चारो।  
णासइ णिस्सेसाइं विग्घाइं रविव्व तिमिराईं॥31॥

शास्त्र के आदि, मध्य और अन्त में किया गया जिनस्तोत्ररूप मंगल का उच्चारण सम्पूर्ण विघ्नों को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार सूर्य अंधकार को।

पूज्यपाद स्वामी, जिन भक्ति का महत्व प्रतिपादन करते हुए समाधि भक्ति में निम्न प्रकार कहते हैं :-

एकापि समर्थयं जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम्।  
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः॥8॥

एक ही जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति समस्त दुर्गतियों का निवारण करने के लिये, सातिशय पुण्य को सम्पादन करने के लिए मुक्ति श्री को प्रदान करने के लिए समर्थ है।

जन्म-जन्म कृतं पापं जन्मकोटि समार्जितम्।  
जन्ममृत्युजरा मूलं हन्यत जिनवन्दनात्॥5॥

जन्म-जन्म में किया हुआ पाप, कोटि जन्मों में उपार्जित पाप तथा जन्म-जरा-मृत्यु, जिनेन्द्र भगवान् की वन्दना से नष्ट हो जाते हैं।

विघ्ना प्रणश्यन्ति भयं न जातु न दुष्टदेवाः परिलङ्घयन्ति।  
अर्थान्यथेष्टाश्चे सदा जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन॥2॥

धवला पु., पृ.4

जिनेन्द्र देव के गुणों का कीर्तन करने से विघ्न नाश को प्राप्त होते हैं, कभी भी भय नहीं होता है, दुष्ट देवता आक्रमण नहीं कर सकते हैं और निरंतर यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है।

आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः।  
तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं तद्विघ्नप्रसिद्धये॥22॥

धवला पु.। पृ.4

विद्वान् पुरुषों ने, प्रारम्भ किये गये किसी भी कार्य के आदि, मध्य

और अंत में मंगल करने का विधान किया है। वह मंगल निर्विघ्न कार्य सिद्धि के लिये जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का कीर्तन करना ही है।

इसी धवला में वीरसेन स्वामी मंगल, भक्ति, पूजा, स्वाध्यायादि शुभोपयोग से जो सर्वांगिण लाभ होता है, उसका वर्णन करते हुए कहते हैं-

तत्र हेतुद्विविधः प्रत्यक्ष हेतुः परोक्ष हेतुरिति कस्य हेतुः? सिद्धान्ताध्ययनस्य  
तत्र प्रत्यक्ष हेतुद्विविध साक्षात्प्रत्यक्ष परम्परा प्रत्यक्ष भेदात्।

तत्र साक्षात्प्रत्यक्षमज्ञानविनाशः सज्ज्ञानोत्पत्तिर्देवमनुष्यादिभिः  
सततमभ्यर्चने प्रति समयमसंख्यात गुणश्रेण्या कर्म निर्जरा चा कर्म-  
णामसंख्यात गुण- श्रेणिनिर्जरा केषां प्रत्यक्षेति चेन्न, अवधि, मनः पर्यय  
ज्ञानिनासूत्रमधीयानानां तत्प्रत्यक्षतायाः समुपलम्भात् तत्र परम्पराप्रत्यक्षं  
शिष्यप्रशिष्यादिभिः सततमभ्यर्चनम्। परोक्षद्विविधं, अभ्युदय नैःश्रेयस-  
मिति तत्राभ्युदयसुखं नामा सांतादि-प्रशस्त-कर्म-तीव्रानुभागोदय-  
जिनेन्द्र प्रतीन्द्र सामानिक-त्रायस्त्रिंशदादि-देव-चक्रवर्ति-बलदेव-  
नारायणार्धमण्डलीक-मण्डलीक-महामण्डलीक-राजाधिराज-महारा-  
जाधिराज-परमेश्वरादि-दिव्य मानुष्य सुखम्।

धवला-पु. 1, पृ. 55

हेतु दो प्रकार का होता है। एक प्रत्यक्ष हेतु और दूसरा परोक्ष हेतु।

शंका : यहाँ पर किसके हेतु का कथन किया जाता है?

समाधान : यहाँ पर सिद्धान्त के अध्ययन के हेतु का कथन किया जाता है।

उन दोनों प्रकार के हेतुओं में से प्रत्यक्ष हेतु दो प्रकार का है, साक्षात्प्रत्यक्ष हेतु और परंपरा-प्रत्यक्ष हेतु। उनमें से अज्ञान का विनाश, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति, देव, मनुष्यादि के द्वारा निरंतर पूजा का होना और

प्रत्येक समय में असंख्यात-गुणित-श्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा का होना साक्षात्प्रत्यक्ष हेतु फल समझना चाहिए।

शंका : कर्मों की असंख्यात्-गुणित-श्रेणी रूप से निर्जरा होती है, यह किनके प्रत्यक्ष है?

समाधान : ऐसी शंका ठीक नहीं है? क्योंकि, सूत्र का अध्ययन करने वालों की असंख्यात-गुणित-श्रेणी रूप से प्रति समय कर्म निर्जरा होती है, यह विषय अवधिज्ञानी और मनः पर्यय ज्ञानियों को प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध होती है।

शिष्य, प्रतिशिष्यादिक के द्वारा निरंतर पूजा जाना परंपरा, प्रत्यक्ष हेतु है। परोक्ष हेतु भी दो प्रकार का है, एक अभ्युदय सुख और दूसरा नैःश्रेयससुख। इनमें से साता-वेदनीय आदि प्रशस्त-कर्म-प्रकृतियों के तीव्र अनुभाग के उदय से उत्पन्न हुआ इन्द्र, प्रतीन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि देव संबंधी दिव्य-सुख और चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, अर्ध-मण्डलीक, मण्डलीक महामण्डलीक, राजाधिराज, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि मनुष्य सुख को अभ्युदय सुख कहते हैं।

जिनदर्शन : निजदर्शन -

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पाप नाशनम्।

दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनम्॥1॥

देवाधिदेव अरहन्त भगवान् का दर्शन पापों का नाशक है, स्वर्ग की सीढ़ी है और अधिक क्या दर्शन मोक्ष का भी साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।

न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्र हस्ते यथोदकम्॥2॥

जिस प्रकार छिद्र सहित हाथों में जल बहुत समय नहीं टिकता है, उसी प्रकार जिनेन्द्र देव के दर्शन और साधुओं की वंदना करने से पाप लम्बे समय तक नहीं ठहरते हैं।

वीतरागं मुखं दृष्ट्वा, पद्म राग समप्रभम्।  
जन्म-जन्म कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति॥३॥

पद्म राग मणि की प्रभा के समान वीतराग भगवान को देखकर जन्म-जन्म में किये गये पाप, दर्शन करने से नाश को प्राप्त हो जाते हैं। जिनेन्द्र का मुख देखने से ही मुक्ति रूपी लक्ष्मी के मुख का दर्शन होता है। जो मनुष्य दर्शन से रहित है उसे सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? (दर्शन-पाठ)

श्री लीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं,  
वाग्देवी रतिकेतनं जयारमा क्रीडा निधानं महत्।  
स स्यात्सर्वमहोत्सवैक भवनं यः प्रार्थितार्थप्रदा।  
प्रातःपश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिनांघ्रिद्वयम्।  
(भूपालस्तोत्र)

जो मनुष्य प्रातःकाल इच्छित पदार्थों को देने वाले एवं कल्पवृक्ष के पल्लव के समान कान्तिवाले जिनचरण कमल युगल का दर्शन करता है वह लक्ष्मी का क्रीडागृह, पृथ्वी का कुलभवन, कीर्ति का हर्षस्थान, सरस्वती का प्रीतिगृह विजयलक्ष्मी का महान् क्रीडा निधान तथा समस्त महोत्सवों का अद्वितीय भवन होता है।

जिनेन्द्रसद्म दर्शनतो नराणा  
मनेकजन्मार्जित पापनाशः।  
स्यात्सर्वदा मंगल सौरव्य राशिः,  
स्वर्गापवर्गाधिपतिश्च नूनम्।(८)

जिनेन्द्र देव के समीचीन दर्शन से मनुष्यों के अनेक जन्मोपार्जित पापों का नाश होता है तथा दर्शन करने वाला पुरुष मंगलमय सुख की राशि एवं स्वर्ग और मोक्ष का स्वामी होता है।

मयूरस्यैव मेघोद्ये वियुक्तस्यैव बान्धवे।  
तृषार्तस्यैव पानीये विबध्दस्यैव मोक्षणे॥९॥

सत्याधोरिव कल्यत्वे विदष्टेरिव लोचने।  
जायते नरश्च सन्तोषो जिनवक्त्राविलोकने॥१०॥

जिनेन्द्रदेव के मुख का दर्शन करने से मनुष्य को वैसा सन्तोष होता है जैसा कि मयूर को मेघ समूह में, बिछुड़े हुए को बन्धुजन में, प्यास से पीडित को जल की प्राप्ति से, रोगी को स्वस्थता में और दृष्टिहीन को नेत्र प्राप्त करने में होता है।

फलं ध्यानाद्यतुर्थस्य षष्ठस्योद्यममात्रतः।  
अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु।(११)  
द्वादशस्य ततः किञ्चिन्मध्ये पक्षोपवासजम्।  
फलं मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात्।(१२)  
चैत्यां गणं समासाद्य याति षाण्मासिकं फलम्।  
फलं वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमश्नुते।(१३)  
फलं प्रदक्षिणीकृत्य भुङ्क्ते वर्षशतस्य च।  
दृष्ट्वा जिनास्यमाप्नोति फलं वर्षसहस्रजम्।(१४)  
अनन्तफलमाप्नोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः।  
न हि भक्तेर्जिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम्।(१५)

जिनेन्द्र दर्शन का विचार करने से मनुष्य एक उपवास का, उद्यम करने से दो उपवास का, गमन प्रारम्भ करने से तीन उपवास का, गमन करने पर चार उपवास का, बीच मार्ग में एक पक्ष के उपवास का, मंदिर के द्वारा में प्रवेश करने पर एक वर्ष के उपवास का, प्रदक्षिणा करने पर सौ वर्ष के उपवास का, जिनबिम्ब के मुख का दर्शन करने पर हजार वर्ष के उपवास का और स्तुति करने से अपने आप अनन्त उपवासों के फल को प्राप्त होता है। सचमुच ही जिनेन्द्र भक्ति से बढ़कर दूसरा उत्तम पुण्य नहीं है।

अद्य में सफल जन्म नेत्रे च विमले मम।  
त्वामद्राक्षं यतो देव हेतमक्षय सम्पदः॥१६॥

यतश्च हे देव ! मैने अविनाशी सम्पत्ति के कारण स्वरूप आपका दर्शन किया है अतः आज मेरा जन्म सफल हुआ है तथा नेत्र निर्मल हो गए हैं।

अद्य संसार गम्भीर पारावारः सुदुस्तरः ।

सुतरोऽयं क्षणेनैव जिनेन्द्र! तव दर्शनात् ॥17॥

हे जिनेन्द्र ! आपके दर्शन से हमारा यह कठिनाई से तिरने योग्य संसार रूप गहरा समुद्र क्षणभंग में सुख से नैमि प्रोय हो गया है।

**पूजक की स्वपरकल्याण की भावना -**

पूजक पूज्य की पूजा केवल औपचारिकता से नहीं करता है परन्तु पूजक स्व-पर इहलोक-परलोक कल्याणकारी महान् उदात्त भावना को लेकर पूजा करता है तो अधिक भगवान् जिस प्रकार संपूर्ण संसार के उदार के लिए भावना भाते हैं उसी प्रकार पूजक भी भाता है। भावना में तीव्र सूक्ष्म ऊर्जा होती है। वह विशुद्ध उर्जा भावात्मक तरंग रूप से वातावरण में फैल जाती है, जिससे वातावरण में फैला हुआ दूषित भावात्मक प्रदूषण को नष्ट करके परिशुद्ध बना देती है, जिसके कारण विश्व में शान्ति, मैत्री, समता, सौम्यता, सुकाल, सुभिक्ष का प्रसार होता है। तीव्र परिशुद्ध विशुद्ध भावना का परिणाम स्व-पर, प्रकृति, वातावरण पर क्या-क्या और कैसे प्रभाव डालता है इसको वर्तमान में मनोवैज्ञानिक, पर्यावरण वैज्ञानिक लोग शोध-बोध करके विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। प्राकृतिक-चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक-चिकित्सा में प्रार्थना, परिशुद्ध भावना से कैसे अनेक शारीरिक, मानसिक रोग दूर होते हैं इसको सिद्ध करके धर्म, प्रार्थना, पूजा विशुद्ध भावना का महत्व आधुनिक युग में सिद्ध कर दिये हैं। पूजक भावना माना है कि -

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतींद्रसामान्यतपोधनानाम्  
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः क्रोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥ (14)

वे केवल ज्ञानी जिनेन्द्र भगवान्, पूजा करने वाले के लिए चैत्य, चैत्यालय और धर्म की रक्षा करने वालों के लिये आचार्य, उपाध्याय और साधुओं के लिये, शैक्ष्य आदि सामान्य तपस्वियों के लिए देश के लिए, राष्ट्र के लिए, नगर के लिए, प्रजा के लिए, शान्ति प्रदान करें।

क्षेमं सर्वप्रजानां, प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः,  
काले काले च सम्यग्वितरतु मघवा, व्याधयो यांतु नाशमाः  
दुर्भिक्षं चौरमारिः, क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीव-लोके,  
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं, प्रभवतु सततं, सर्वसौख्यप्रदायि (15)

इस संसार में समस्त प्रजा का कल्याण हो। बलवान् राजा धार्मिक हो समय-समय पर इन्द्र (बरसने वाले बादल) अच्छी वर्षा करें, रोग सब नष्ट हो जावे, चोर और मारी अर्थात् प्लेग आदि मारक रोग व शस्त्रादिक से होने वाले अपघात इन संसारी जीवों के कभी नहीं हो तथा जो समस्त जीवों को सुख देने वाला है ऐसा भगवान् जिनेन्द्र देव का कहा हुआ उत्तम क्षमादि धर्मों का समूह बिना किसी रूकावट के सदा प्रवृत्त होता रहे।

**मुनियों के द्वारा जिनार्चना -**

शुभोपयोग स्वरूप जिनार्चना, भक्ति केवल श्रावक ही नहीं करते हैं परन्तु मुनि भी करते हैं। मुनियों के 28 मूलगुणों में षट् आवश्यक हैं, जो प्रत्येक दिन करने योग्य हैं, उसमें जिन वंदना एवं जिन स्तुति दो आवश्यक मूलगुण हैं। प्रशस्त राग में प्रवर्तन करने वाले मुनियों के लिए ये दोनों क्रियायें नितान्त आवश्यक है। कुंदकुंद स्वामी पंचास्तिकाय में इसका वर्णन निम्नप्रकार करते हैं:-

अरंहत सिद्ध साहुसु भक्ती धम्मम्मि जा य खलु चेदृठा।  
अणुगमणं पि गुरुणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति॥ (136)

उपरितन भूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थान राग निषेधार्थं तीव्रराग

ज्वर विनाशार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति। (अमृतचन्द्र आचार्य की टीका)

उच्च भूमिका में (ऊपर के गुणस्थानों में) स्थिति-स्थिरता प्राप्त न की हो तब, अस्थान का राग रोकने के हेतु अथवा तीव्र राग ज्वर मिटाने के हेतु, कदाचित् ज्ञानी को भी शुभराग होता है।

जिनसिद्धयोस्तथा साधु शब्द वाच्येष्व्वाचार्योपाध्याय साधुषु च या बाह्याभ्यंतरा भक्तिं सा प्रशस्तसंगो भण्यते तं प्रशस्तरागं अज्ञानी जीवो भोगाकाक्षारूप निदानबंधन करोति। ज्ञानी पुनर्निर्विकल्प समाध्यभावे विषय या कषायरूप अशुभस्य विनाशार्थं करोतीति भावार्थः। (जयसनाचार्य की टीका)

जिनन्द्रों में व साधु शब्द से कहने योग्य आचार्य, उपाध्याय और साधुओं में जो बाहर और भीतर से भक्ति करना सो प्रशस्त राग कहा जाता है। इस शुभ राग को अज्ञानी जीव भोगों की इच्छा रूप निदान भाव से करता है परन्तु ज्ञानी निर्विकल्प समाधि को न धाकर विषय या कषायरूप अशुभ रागों के नाश करने के लिये करता है, यह भावार्थ है।

अरहत सिद्ध व साधुओं में भक्ति और शुभराग रूप चरित्र में जो निश्चय करके उद्योग करना व गुरुओं के अनुकूल चलना यह प्रशस्त राग है ऐसा आचार्य कहते हैं।

अरहत सिद्ध चैदिय प्रवयण गुणगण भक्ति संपण्णो।  
बंधदि पुण्णं बहुसो.....॥(166)॥ पंचस्तिकाय

अर्हदादिभक्तिसंपन्नः कथाचिच्छुद्धसंप्रयोगोऽपि सन् जीवोद्रागलव-  
त्वाच्छुभोपयोगतामजहत् बहुशः पुण्यं बंधनाति।

अरहत भगवान, सिद्ध परमात्मा, उनकी प्रतिमा, जैन सिद्धांत, मुनिसमूह तथा ज्ञान की भक्ति करने वाला अधिकतर पुण्यकर्म को बांधता है।

## मुनियों के द्वाराकृत जिनाचरणा दोषप्रद नहीं

पुण्णकम्मबंधत्थीणं देसव्वयाणं मंगलकरणं जुत्तं ण मुणीणं कम्म-  
क्खयकंखु वाणमिदि ण वोत्तु जुत्तं; पुण्णबंधहेउत्तं पडि विसेसाभावादो,  
मंगलस्सेव सराग संजमस्यविपरिच्चागप्पसंगादो। ण च एवं, तेण संजमो  
परिचागप्पसंगभावेण णिव्वुइगमणाभावप्पसंगादो। सराग संजमो गुण-  
सेडि णिज्जराए कारणं, तेण बंधादो मोक्खो असंखेज्जगुणोत्ति सरागसं-  
जमे मुणीणं वट्टणं जुत्तमिदि ण पच्चवट्टाणंकायव्वं, अरहतणमोक्का-  
रोसंपहिवंधादोअसंखेज्जगुणकम्मक्खयकारओत्ति तत्थ वि मुणीणं पवु-  
त्तिप्पसंगादो। उक्तं च

अरहतणमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयडमदी।  
सो सव्वदुक्खमोक्खंपावई अचिरेण कालेण॥2॥

यदि कहा जाय कि पुण्यकर्म के बाँधने के इच्छुक देशव्रतियों को मंगल करना युक्त है, किन्तु कर्मों के क्षय के इच्छुक मुनियों को मंगल करना युक्त नहीं है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि पुण्यबंध के कारणों के प्रति उन दोनों में कोई विशेषता नहीं है अर्थात् पुण्यबंध के कारणभूत कामों को जैसे देशव्रती श्रावक करते हैं वैसे ही मुनि भी करते हैं, मुनि के लिये उनका एकान्त से निषध नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो जिस प्रकार मुनियों को मंगल के परित्याग के लिये यहाँ कहा जा रहा है उसी प्रकार उनके सरागसंयम के भी परित्याग का प्रसंग प्राप्त होता है, क्योंकि देशव्रत के समान सराग संयम भी पुण्यबंध का कारण है।

यदि कहा जाय कि मुनियों के सरागसंयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होता है तो होओ, सो भी बात नहीं है, क्योंकि मुनियों के सराग-  
संयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होने से उनके मुक्तिगमन के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है।

यदि कहा जाय कि सराग संयम गुणश्रेणी निर्जरा का कारण है,

क्योंकि उनसे बन्ध की अपेक्षा मोक्ष अर्थात् कर्मों की निर्जरा असंख्यात गुणी होती है, अतः सरागसंयम में मुनियों की प्रवृत्ति का होना योग्य है, सो ऐसा भी निश्चय नहीं करना चाहिये, क्योंकि अरहंत नमस्कार तत्कालीन बन्ध की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्मनिर्जरा का कारण है, इसीलिये सरागसंयम के समान उसमें भी मुनियों की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। कहा भी है- “जो विवेकी जीव भावपूर्वक अरहंत भगवान को नमस्कार करता है वह अतिशीघ्र समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।”

तेण सोयण-भोयण-पयाण-पच्चावण, सत्थपारंभादिकिरियासु-णियमेण अरहंतणमोक्कारो कायव्वोत्ति सिद्धं। ववहारणयमस्सिदूण गुण-हरभडारयस्य पुण एसो अहिप्पाओ, जहा-करिउ अण्णत्थ सब्वत्थणि-यमेण अरहंतणमोक्कारो, मंगलफल पारध्दकिरियाए अणुवंलभादो।

इसीलिये सिद्ध हुआ कि सोना, खाना, जाना, वापिस आना और शास्त्र का प्रारम्भ करना आदि क्रियाओं में अरहंत नमस्कार अवश्य करना चाहिये। किन्तु व्यवहारनय की दृष्टि से गुणधर भट्टारक का यह अभिप्राय है कि परमागम के अतिरिक्त अन्य सब क्रियाओं में अरहंत नमस्कार नियम से करना चाहिये, क्योंकि अरहंत नमस्कार किये बिना प्रारम्भ की हुई क्रिया से मंगल की उपलब्धि नहीं होती अर्थात् खाना, सोना आदि क्रियाएं स्वयं मंगलरूप नहीं है अतः उसमें मंगल का किया जाना आवश्यक है। (जय धवला)

पूर्वाचार्या कृत अनेक शास्त्रों में अष्ट द्रव्य अर्चना में पुष्प (कमल, जाई, जुई), नैवेद्य लड्डू, जलेबी, खीर, पेडा, (दीपक) घृत-दीपक, रत्न दीपक (धूप) (अष्टांगधूप) (फल) अंगूर, संतरा, केला, सुपारी, इलायची, बादाम आदि आदि का यत्र-तत्र पूजा अवसर पर चढ़ाने का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। उपरोक्त पुष्पादि चढ़ाते समय आगमोक्त विधि से विवेक पूर्वक शुद्ध प्रासुक द्रव्यों का प्रयोग करने के

लिये निर्देश, आज्ञा, उपदेश पाया जाता है। परन्तु एक भी पूर्वाचार्यों कृत शास्त्र में निषेध नहीं पाया जाता है।

रत्नकरण्डक श्रावकाचार की टीका करते हुये पंडित सदासुख जी ने उपरोक्त द्रव्य के साथ-साथ रोटी, भात, ज्वार आदि द्रव्यों को चढ़ाने का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि आगम में सचित्त-अचित्त द्रव्यों को चढ़ाने का उल्लेख पाया जाता है। हठाग्राही होकर नयपक्ष को बिना जाने कदाग्रह नहीं करने के लिये भी सलाह दिये हैं।

पूर्व आचार्य कृत शास्त्रों में स्त्री अभिषेक के साथ-साथ जल, चंदन, इक्षुरस, फलरस, दूध, दही, घी आदि से भी जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करने का वर्णन पाया जाता है। किन्तु पूर्व आचार्यों कृत कोई एक भी शास्त्र में उपरोक्त द्रव्य से अभिषेक नहीं करना चाहिये ऐसा निषेधात्मक वर्णन नहीं पाया जाता है। परन्तु शुद्ध-प्रासुक द्रव्य से विवेक पूर्वक आगमोक्त विधि से अभिषेक करना चाहिए। कोई कोई तर्क देते हैं कि दही आदि से अभिषेक करने से दही में रहने वाले सूक्ष्म जीवों (वेक्टोरिया) का घात हो जाता है परन्तु प्रासुक गर्म किये हुये दूध से बना हुआ दही 24 घंटे तक निर्जीव प्रासुक शुद्ध रहता है यह आगमोक्त सिद्धान्त है। अप्रासुक अवधि रहित दही में निश्चित रूप से जीव पाये ही जाते हैं। विधिपूर्वक निकला हुआ दूध तथा अन्तर्मूर्त के पहले छानकर विशेष गर्म करने से दूध 24 घंटे तक निर्जीव प्रासुक रहता है। आगमोक्त प्रासुक घी में भी किसी प्रकार के जीव नहीं रहते हैं। इसी प्रकार के प्रासुक द्रव्य से अभिषेक करने से जीवों का घात कैसे होगा ? इसी प्रकार प्रासुक फलरस आदि में जीव नहीं रहते हैं। केवल प्रासंगिक अनिच्छुक एकेन्द्रिय जीवों के घात के भय से पुष्प फलादि का निषेध करेगे तो फिर जल से भी अभिषेक नहीं करने का प्रसंग प्राप्त होगा क्योंकि वैज्ञानिक सिद्धान्त यह है कि एक बूँद जल में 36450 जीव रहते हैं। जैन दर्शन के अनुसार वे

राजा ने जो आटे के पिण्ड में मुर्गा की स्थापना करके बली देने से जो पाप संचय किया था उसके कारण वे अनेक भव तक अनेक यातनायें प्राप्त की थी यह सुप्रसिद्ध है। इसी प्रकार पीले चावल में पुष्प की स्थापना करते हैं तो एकेन्द्रिय जीव के घात का दोष लगेगा ही तथा उसके साथ-साथ झूठ एवं मायाचारी का भी दोष लगेगा। पुष्प के अभाव में केसर से रंगे हुए चावल में पुष्प की स्थापना करके पूजा करने का वर्णन शास्त्र में पाया जाता है इसलिए जिस समय जीवों से रहित प्रासुक योग्य पुष्प उपलब्ध नहीं होता है उस समय में पीले चावल में पुष्प की स्थापना करने में कोई दोष नहीं है। हारश्रृंगार फूल से चावल को रंगना अयोग्य है क्योंकि उस में जो जीव रहते हैं वे जीव पिसने से मर जाते हैं। शास्त्र में पाया जाता है कि अविकसित पुष्प को नहीं तोड़ना चाहिए तथा पांखुड़ी भी नहीं तोड़ना चाहिए क्योंकि उसको तोड़ने से एक मुनि की हिंसा का पाप लगता है। इसी प्रकार नैवेद्य के स्थान में खोपरे (श्रीफल) की चिटकी चढ़ाते हैं। क्या मंत्र में नैवेद्य कह कर चढ़ाने से उपरोक्त झूठ एवं मायाचारी का दोष नहीं लगेगा ? स्वयं के तो खाने के लिये अच्छे-अच्छे पकवान चाहिए परंतु भगवान की पूजा के लिए चिटकी का प्रयोग करते हैं। कोई भी शास्त्र में, व्याकरण में, शब्द कोश में नैवेद्य का अर्थ चिटकी नहीं होता है। नैवेद्य का अर्थ चरू, पकवान, मिठाईयाँ, मिष्ठान्न होता है। यदि कहो कि मिष्ठान्न चढ़ाने से चीटियाँ आती हैं, यह आपके विवेक के ऊपर निर्भर है। पूजा- विसर्जन के बाद मंदिर को स्वच्छ करना चाहिए जिससे मंदिर में जीवों का संचार न हो। इसी प्रकार रंगी हुई चिटकी को दीपक रूप से प्रयोग करना आगम विरुद्ध है। दीपक के प्रकाश को आदर्श मानकर ज्ञान ज्योति स्वरूप भगवान की पूजा की जाती है जिससे स्वयं के अंदर ज्ञान ज्योति जगे। परन्तु चिटकी में कोई ज्योति ही नहीं है, तब वह रंगी चिटकी भगवान की एवं अपनी ज्योति को कैसे इंगित करके आदर्श प्रस्तुत कर सकती है।

वर्तमान कुछ लोग धूप खेने से हिंसा मानकर धूप नहीं खेते हैं। परन्तु शुद्ध अगर, तगर, चंदन, गुग्गल, कपूर, लोभान आदि धूप से प्रदूषित वातावरण शुद्ध हो जाता है, मन प्रसन्न हो जाता है, रोगाणु कीटाणु, मक्खी, मच्छर आदि उस सुगंधी के कारण दूर हट जाते हैं। इससे भाव की विशुद्धि होती है। जिससे पूजा, जाप आदि से मन लगता है। धूप खेते हुए पुजारी अष्टकर्म के नाश की भावना रखता है। जिससे भाव विशुद्धि के कारण कर्म- निर्जरा होती है।

अभिषेक के समय में मूर्ति पर वस्त्र को रखकर अभिषेक नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे वीतरागता में दोष आता है। कुछ व्यक्ति आवाहन एवं विसर्जन नहीं करना चाहिए कहते हैं। वे तर्क देते हैं कि भगवान् न आवाहन से आते हैं, न विसर्जन करने से जाते हैं। वे और भी तर्क देते हैं कि भगवान् की मूर्ति सन्मुख है ही फिर आवाहन क्यों? यदि ऐसे कहेंगे तो भगवान् की पूजा, अर्चना, स्तुति से भी भगवान् न सन्तुष्ट होते हैं तथा न अपशब्द का उपयोग करने पर क्रोध ही होते हैं। द्रव्य चढ़ाने पर भी वे भोजन नहीं करते हैं तब क्यों पूजा में द्रव्यादि चढ़ाना चाहिए? यदि आप कहो कि स्वयं की भाव- विशुद्धि होती है जिससे पाप, कर्म की निर्जरा होती है तथा पुण्य का संचय होता है उसी प्रकार आवाहन के माध्यम से भक्ति भाव से अपने हृदय रूपी सिंहासन पर भगवान् को विराजमान करने के कारण भगवान् को अत्यन्त निकटवर्ती अनुभव करता है, जिससे उसके परिणाम में निर्मलता आती है। यह अनुभवगम्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि प्रेमी जन, तथा गुरुजन आदि के सन्निकट से भावों में तीव्रता अधिक आती है। इसी मनोवैज्ञानिक दृष्टि को रखकर आचार्यों ने पूजा के अभिन्न अंग में आवाहन को प्रथम स्थान दिये हैं। पूजा के अनन्तर जो पूजा के अवसर में जिन शासन देवी देवताओं का भावात्मक आवाहन किया गया था उनका आदर सहित विसर्जन करना आगम में वर्णित है अन्यथा पूजा पूर्ण नहीं होती है।

वस्तुतः जैनधर्म में रत्नत्रय, रत्नत्रयधारी तथा नवदेवताओं को ही परम पूज्य माना गया है। परन्तु जिन शासन के अनुरागी, जैनधर्म-प्रभावक संकट के समय विशेष पुण्य पुरुषों की सेवा करने वाले जिन शासन देवी देवताओं का वर्णन पाया जाता है। समवशरण में तीर्थंकर के पार्श्व-भाग में भक्ति से अवनत होकर वे भगवान् की सेवा करते हैं। यह वर्णन तिलोयपण्णत्ति, पुराण आदि शास्त्रों में पाया जाता है। तीर्थंकर की प्रतिमा के पार्श्वभाग में यक्ष-यक्षिणी की मूर्ति बनाने का विधान प्रतिष्ठा पाठ आदि में पाया जाता है। भारत के प्राचीन मंदिरों में, प्रतिमाओं में यक्ष-यक्षिणियों की मूर्ति अनेक स्थानों में उपलब्ध होती है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि, चक्रवर्ती आदि के द्वारा यक्ष-यक्षिणी के सत्कार का वर्णन शास्त्र में पाया जाता है। मंदिर समोवशरण का प्रतीक होने से मन्दिर में यक्ष-यक्षिणी की प्रतिमा का होना आगमोक्त है। भले यक्ष-यक्षिणी, जन्म के समय निश्चित रूप से मिथ्यादृष्टि ही होते हैं किंतु वे आगे जाकर सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं। उसका प्रमाण यह है कि यक्ष-यक्षिणी गंध कुटी में भगवान् के पार्श्वभाग में रहते हैं। गंधकुटी में वह ही प्रवेश कर सकता है जो सम्यग्दृष्टि हो। पंचकल्याणक, इन्द्रध्वज पूजादि के अवसरों पर उनका आवाहन एवं सत्कार आगम में वर्णित है। यदि कोई सत्कार आदि नहीं करता तो उन्हें अनादर करने का भी अधिकार नहीं है। क्या एक धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि का बिना कारण अनादर कर सकता है? कदापि नहीं। कुछ व्यक्ति इतने द्वेष करते हैं कि प्राचीन भगवान् में जुड़ी हुई यक्ष-यक्षिणी की मूर्ति, पार्श्वनाथ भगवान् का फण तक तोड़कर निकालकर के फेंक देते हैं। अनेक स्थलो में दो हजार से भी अधिक प्राचीन कालीन अनेक प्रतिमाएं हैं जिनके साथ यक्ष-यक्षिणी की मूर्ति जुड़ी हुई है। उस समय में बड़े-बड़े आचार्य उपस्थित थे। उनके तत्वावधान में प्रतिष्ठा आदि हुई थी। तब क्या आचार्यों को ज्ञात नहीं था कि यक्ष-यक्षिणी की

मूर्ति रखने से सम्यग्दर्शन की विराधना होती है। स्पष्ट ज्वलंत उदाहरण कर्नाटक के श्रमणबलगोला गोम्मटेश बाहुबली का है। सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य नेमीचन्द्र के तत्वावधान में, मार्गदर्शन में, वीर मार्तण्ड चामुण्डराय द्वारा स्वमाता कारलादेवी की प्रेरणा से विश्व विख्यात गोम्मटेश बाहुबली की मूर्ति की स्थापना हुई थी। उस समय में तथा उससे भी पहले प्रतिष्ठित मूर्तियों के पार्श्वभाग में जुड़ी हुई एवं स्वतन्त्र रूप में अनेक यक्ष-यक्षिणी की मूर्तियाँ मौजूद थीं जो कि अभी तक है। यदि फणा सहित या यक्ष-यक्षिणी सहित मूर्ति अपूज्य है तब गोम्मटेश बाहुबली की मूर्ति में माधवी लता ऊपर तक चढ़ी हुई है तो क्या वह मूर्ति अपूज्य है? यदि अपूज्य है तो स्वयं सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमीचन्द्र आचार्य इसी प्रकार की मूर्ति निर्माण करने के लिए, उसकी प्रतिष्ठा करने के लिए क्यों मार्गदर्शन दिए एवं उपस्थित रहे? इससे सिद्ध होता है फणादि से किसी प्रकार दोष का नहीं होता है। फणा रखने के पीछे एक महान् ऐतिहासिक प्रेरणाप्रद उद्देश्य है। वह यह है कि भगवान् पर उपसर्ग होने पर भी वे उपसर्ग को सहन किये, स्वध्यान से विचलित नहीं हुए। यक्ष-यक्षिणी पद्मसवती, धरणेन्द्र भक्ति भाव से प्रेरित होकर भगवान् की सेवा की तथा उपसर्ग दूर करने के लिए पुरुषार्थ किये। इसीलिए भगवान् पार्श्वनाथ इतने विख्यात हुए एवं भक्त के लिये इतने प्रेरणाप्रद आदर्श हुए कि आज भारत वर्ष में सबसे अधिक फणा सहित पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्तियाँ हैं। जिस प्रकार ईसा मसीह को क्रॉस में कीलित किया गया था और उससे उनका प्राणान्त हुआ था। आज ईसाई लोग उस क्रॉस को पवित्र चिन्ह रूप से स्वीकार किये हैं। इसी प्रकार फणा, मुनि अवस्था में जो यातनाओं को समता भाव से भगवान् सहे थे उसका प्रतीक स्वरूप है। वस्तुतः केवली अवस्था में उपसर्ग नहीं रहता है, तो भी भूतपूर्व प्रज्ञापन-नय की अपेक्षा, आदर्श प्रस्तुत करने के लिए एवं भक्तों को प्रेरणा देने के लिए यह फणा रहना कोई दोषप्रद नहीं है।

आगम में यत्र-तत्र अनेक संदर्भ में स्त्री द्वारा जिनेन्द्र भगवान् के अभिषेक पूजन करने के प्रकरण पाये जाते हैं। श्राविका-श्रावक के अंत-भूत होने के कारण श्राविकाओं के भी षट् कर्तव्य होते हैं। उनमें भी दान-पूजा दो मुख्य कर्तव्य हैं। उपरोक्त कर्तव्य पालन किये बिना कोई श्रावक या श्राविका नहीं कहला सकता है। आगमोक्त पद्धति के अनुसार अभिषेकपूर्वक ही पूजा होती है: इसका वर्णन इसी पुस्तक में यत्र-तत्र किया गया है। इसलिए श्राविकाओं को पूजन करने के पहले अभिषेक करना चाहिए। कोई-कोई तर्क देते हैं कि स्त्रियाँ अशुद्ध होती हैं, इसलिए अभिषेक नहीं करना चाहिए, ठीक है अशुद्ध अवस्था में अभिषेक नहीं करना चाहिए किंतु शुद्ध अवस्था में अभिषेक करने से आगमोक्त किसी भी प्रकार का दोष नहीं है। यदि कहा जाय कि स्त्रियाँ ऋतुमति होती हैं, इसलिए नहीं करना चाहिए किंतु आगम में वर्णन है कि प्राकृतिक रूप में जो स्त्री रजस्वला होती है वह गृहकार्य के लिए चतुर्थ दिन योग्य हो जाती है तथा दान-पूजा के लिए पंचम दिन योग्य हो जाती है। जो स्त्रियाँ अप्राकृतिक रोग जनित ऋतुमती होती हैं वे अशुद्ध रहती हैं। इस प्रकार की अशुद्ध स्त्रियाँ दान-पूजादि करने के लिए अयोग्य हैं। यदि कोई कहे कि स्त्री के शरीर के गुप्त अंगों में सूक्ष्म लब्धयपर्याप्तक मनुष्यजाति के जीव होते हैं इसलिये स्त्रियाँ अयोग्य हैं किंतु यह तर्क कपोलकल्पित आगम-बाह्य होने से कुतर्क है। यदि केवल रजस्वला होने से तथा गुप्तअंगों में सूक्ष्मजीव होने से अयोग्य है तब वे मंदिर जाने के लिए पूजा करने लिए, साक्षात् मुनि-अवस्था में स्थित तीर्थंकर को तथा चरम शरीरी मुनि, गणधर, सामान्य मुनि आदि को आहार देने के लिए भी अयोग्य ठहरेगी। परन्तु यदि उपरोक्त कार्य करने के लिये अयोग्य नहीं है तो केवल अभिषेक करने के लिये अयोग्य क्यों ठहरेगी? कोई-कोई प्रमाण देते हैं कि जन्माभिषेक के समय इन्द्रअभिषेक करता है किन्तु इन्द्राणियाँ अभिषेक नहीं करती हैं इसलिए अभिषेक नहीं करना चाहिये परन्तु उन्हे

ज्ञात नहीं है कि हरिवंश पुराण में इन्द्राणियाँ अभिषेक करती हैं ऐसा स्पष्ट वर्णन है जिसका वर्णन आगे इसी पुस्तक में दिया गया है। इतना ही नहीं, अनेक रानियाँ, श्राविका, मैनासुन्दरी, सीता आदि ने अभिषेक पूजा की है, इसका स्पष्ट वर्णन इसी पुस्तक में किया गया है। अन्य एक आश्चर्य का विषय यह है कि इन्द्राणी के द्वारा अभिषेक का निषेध करके स्त्री द्वारा अभिषेक न करने की पुष्टि करते हैं वे भी मानते हैं कि इन्द्राणी ही प्रसूतिगृह में पहले प्रवेश करके बाल तीर्थंकर को गोद में उठाकर लाती है। इतना ही नहीं अभिषेक के बाद तीर्थंकर को पोछती है इस से भगवान् को स्पर्श करने का प्रसंग क्या उत्पन्न नहीं होता है? जिससे शील में दोष उत्पन्न होने की शंका उत्पन्न होती है। तब क्या साक्षात् बाल तीर्थंकर को प्रसूतिगृह से गोद में उठाकर लाने में तथा अभिषेक करने के बाद शरीर पोछने से, श्रृंगार करने से स्पर्श का प्रसंग नहीं आता? शील में दोष लगने की शंका नहीं होती है? यदि कोई कहे मूलाचार आदि में वर्णन है कि आचार्य से 5 हाथ, उपाध्याय से 6 हाथ तथा साधुओं से 7 हाथ दूर से वन्दना आदि करना चाहिए किन्तु अभिषेक करने के लिए समीप में जाना पड़ता है तब क्या अभिषेक कर सकती है? यह प्रश्न स्वाभाविक है तथा अविचारित रम्य भी है। परन्तु विचार करना चाहिए कि जिस समय स्त्रियाँ मुनि आदि का पङ्गाह करके, पाद प्रक्षालन आदि नवधा भक्ति करती हैं तब क्या 5 हाथ, 6 हाथ, 7 हाथ दूर से करती है? मान लें कि उपरोक्त क्रियायें इतनी दूर से कर ले तो भी आहारदान क्या इतनी दूर से करती है? यदि इतनी दूर से आहारदान करेगी तो आचार्य के लिये 5 हाथ के चम्मच, उपाध्याय को आहारदान देने के लिए 6 हाथ के चम्मच तथा साधु को आहार दान के लिए 7 हाथ के चम्मच की आवश्यकता होगी। जो कि अव्यवहार्य, अशोभनीय, अविनयसूचक तथा आगम विरुद्ध है। ठीक है मर्यादा से शील की रक्षा करते हुए प्रत्येक कार्य करना चाहिए परन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव एवं प्रसंग को लेकर स्याद्वाद

पद्धति से आगमोक्त निर्णय करना चाहिए। मूलाचार में जो वर्णन है वह वंदना, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त आदि के लिए आया है उस प्रसंग को लेकर अभिषेक करने का निषेध करने पर आहार दान आदि के निषेध का भी प्रसंग आ जायेगा।

पहले जो तर्क दिया गया कि अभिषेक करने से शील में दोष आयेगा, उसके बारे में भी विचार करना चाहिए। प्रथमतः तीर्थंकर भगवान् की मूर्ति, वीतराग भगवान् की मूर्ति होने से मूर्ति को शील का दोष लगने का प्रसंग ही नहीं है। दूसरी बात स्त्री सम्बन्धी है, जो स्त्री भक्ति से अपने आराध्य देव का अभिषेक कर रही है उस समय में क्या वह स्त्री आराध्यदेव को कामुक दृष्टि से देख सकती है? यदि वह कामुकदृष्टि से देखती है तो वह भगवान् के अभिषेक की बात तो दूर रहे भगवान् के दर्शन दूर से करने के भी अयोग्य है। जिनके दर्शन, पूजन से भाव विशुद्धि, कर्मक्षय, कामबाण विनाश का मुख्य उद्देश्य होता है यदि उसी कार्य से उसके कामभाव जागृत हो जाते हैं, तब उसके भाव विशुद्धि कहाँ होगी? यदि अन्तरंग में दूषित भाव है तो बिना अभिषेक के भी वह शील में दोष लगा सकती है। यदि भाव में अशुद्धता नहीं है यदि भाव विशुद्धि के लिए अभिषेक कर रही है तो दूषण नहीं है भूषण स्वरूप है। कुशील न होकर सुशील का कार्य है। कहा भी है:-

**भाव तीर्थ परं तीर्थं प्रमाणं सर्व कर्मसु।**

**अन्यथालिङ्ग्यते कान्ता अन्यथालिङ्ग्यते सुता॥**

भाव तीर्थ सब तीर्थों में प्रधान स्वरूप है एवं सर्व कार्यों में प्रमाण स्वरूप है। जैसे एक योग्य पिता अपनी नवयुवती कन्या का आलिङ्गन करता है वहाँ वात्सल्य भाव है किंतु काम विकार नहीं है परन्तु जब वह स्व-स्त्री का मैथुन भाव से आलिङ्गन करता है तब वहाँ कामभाव है वात्सल्य भाव नहीं है।

कोई-कोई व्यक्ति उपरोक्त सिद्धान्त से सहमत होकर भी तर्क देते हैं कि स्त्री कब रजस्वला धर्म से युक्त हो जायेगी मालूम नहीं पड़ता है इसलिए अभिषेक नहीं करना चाहिए किंतु यह तर्क भी अयथार्थ है, क्योंकि पहले ही बताया गया है कि जो अप्राकृतिक भाव से ऋतुधर्म से युक्त होती है वह कभी भी धार्मिक कार्य करने के लिए अयोग्य ही है। परन्तु प्राकृतिक भाव से जो ऋतुमती होती है वह प्रायः एक महीने में एक बार होती है। ऋतुमती के पहले ही स्त्रियों का पेट में दर्द, सिर में दर्द आदि भाव होते हैं। जिससे और भी कुछ सूचना से उन्हें पूर्व ही सूचना मिल जाती है। जब विवेकवान् स्त्रियाँ धार्मिक कार्य की बात तो दूर रही सामान्य गृहकार्य भी नहीं करती हैं और जिस स्त्री को उपरोक्त विवेक नहीं है वह किसी भी धार्मिक कार्य करने के लिए अयोग्य हो सकती है किन्तु समस्त स्त्रियों को अभिषेक करने के लिए निषेध करना अयुक्त है। यदि इसी प्रसंग को लेकर अभिषेक का निषेध करते हैं तो आहारदान, पूजा, दर्शन आदि का निषेध स्वयमेव प्राप्त हो जाता है। उपरोक्त दृष्टियों के साथ-साथ अन्य एक दृष्टि से भी विचार करना चाहिए वह दृष्टि यह है कि अभिषेक के निषेध करने से स्त्रियों के एक विशिष्ट धार्मिक अधिकार को जबरदस्ती छीन लेना है। प्रत्येक तीर्थंकरों ने स्त्रियों के यथा-योग्य अधिकार प्रदान किये हैं। यदि स्त्रियाँ श्रेष्ठ गृहस्थ, शुल्लक ऐलक, से भी उच्च पद्म गुणास्थानवर्ती आर्यिका अवस्था को धारण करके श्राविका से पूज्य बन सकती हैं तब सामान्य श्राविका योग्य कार्य करने में क्यों असमर्थ हैं? अयोग्य हैं? जैन धर्म को छोड़कर अन्य धर्म में जहाँ स्त्रियों को धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार देने के लिए बहुत कुछ निषेध है वहाँ पर जैन धर्म में अनादि-काल से स्त्रियों को यथायोग्य प्रत्येक अधिकार दिया गया है। महान्क्रांतिकारी अहिंसा के अवतार, साम्यवाद के समर्थ पुरस्कर्ता महावीर भगवान् मुनि अवस्था में बंधनयुक्त चंदनबाला के हाथ से आहार लेकर मानो स्त्रियों के समस्त कुरूड़ी रूप बंधनों को तोड़ डाले

थो इतना ही नहीं आगे जाकर चंदना को आर्यिका दीक्षा देकर आर्यिका सघ का नायकत्व पदवी को भी प्रदान किये थे। आज वही साम्यवादी तीर्थंकर भगवान् की विरासत में धर्म के नाम पर स्त्रियों का अधिकार ही छिना जा रहा है तथा कुछ स्त्रियाँ भी उस रूढ़िवादी बंधन से अभ्यस्त हो गहै हैं जिससे वे उस बंधन को तोड़ने के लिए संकोच कर रही हैं। जिस साम्यवादी युग में अन्य राष्ट्र, समाज, धर्म की स्त्रियाँ आगे बढ़ रही हैं, वहाँ पर सर्वश्रेष्ठ जैनधर्म की स्त्रियाँ पीछे हट रही हैं। यह कुछ धर्म के ठेकेदारों का काम है जो कि स्त्रियों को रूढ़ि के बंधन में अधिक जकड़ने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। मेरा समस्त स्त्रियों को साग्रह, सादर, आवाहान है कि आप लोग आगम के प्रकाश से अज्ञान एवं रूढ़ि रूपी अंधकार को दूर करते हुए अपना पवित्र धार्मिक अधिकार को प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ो। जिज्ञासुओं की रजस्वला विषयक जिज्ञासाओं को शान्त करने के लिये गुणभद्राचार्य वर्णित रजस्वला के कर्त्तव्यों को नीचे उद्धृत कर रहा हूँ।

## ६. रजस्वला स्त्री के कर्त्तव्याकर्त्तव्य

रजस्वला के भेद:-

आर्तवं पुष्परजसी ऋतुश्चेत्याभिधीयते।  
प्रकृतं विकृतं चेतिसत्रीणां तद्विधिविधंभवेत्॥(4)

स्त्रियों का रजस्त्राव जो होता है वह आर्तव कहा जाता है, इसे ऋतु भी कहते हैं। वह ऋतु या रजस्त्राव स्त्रियों को दो तरह से होता है एक प्रकृत दूसरा विकृत।

मासेमासे समुद्भूतं प्रायः प्रकृतमुच्यते।  
द्रवं रोगादिभिर्जातमकाले विकृतं रजः॥(5)

महीने-महीने में यथाकाल जो स्त्राव होता है वह प्रकृत है परंतु

रोगादि के कारण अकाल में होने वाला विकृत है।

कालजे त्रयहमाशौचं तद्रजो दर्शनात्परं।  
अर्धरात्रात्परं यत्तत्प्रभाताद्यधमिष्यते॥6॥

यथाकाल होने वाले रजस्त्राव में रजोदर्शन के बाद अशौच हाने पर तीन दिन का अशौच है। अर्धरात्रि के बाद अशौच होने पर प्रातः काल से अशौच प्रारंभ करना चाहिये।

विकृते तत्र तद्यावत्तावत्तस्या अघं भवेत्।  
तद्वती दूषिताभिख्या प्रकृते तु रजस्वला॥7॥

विकृत अशौच में जब तक विकृति है तब तक उस स्त्री के अशौच मानना चाहिये। विकृत अशौच से वह स्त्री दूषिता कहलाती है, परन्तु प्रकृत अशौचमें रजस्वला कहलाती है।

अस्नानात् घर्षिणी ब्रम्हचारिणी मंडनोज्जिता।  
अंजनाभ्यंगंधानुलेपस्रग वर्जिता भवेत्॥8॥

अशौच अवस्था में स्त्री स्नान नहीं करें, मालिश न करावें, ब्रम्हचारिणी रहे, अलंकार न करें। अंजन, अभ्यंग, सुगंध द्रव्य लेपन, माला आदि का परित्याग करें।

सा वसेद्विजनच्छन्नमितगेहे कुशास्तरे।  
माधवी मालती मल्लीकुंदादि लतिकाकरे॥9॥

एकांत में नियमित स्थान में चटाई पर रहें तथा माधवी, मालती, मल्लिका, कुंदादि पुष्पों में बगीचे में रहें।

न स्पृशेन्मनुजान्सर्वीन्न पश्येद्देवतां गुरुं।  
राजानं दर्पणादौ सा प्रतिबिम्ब ग्रहानपि॥10॥

वह रजस्वला स्त्री किसी को स्पर्श न करें, देवता और गुरु का दर्शन भी न करें, इसी प्रकार राजा को भी नहीं देखे, दर्पणादि में अपना प्रतिबिम्ब भी नहीं देखें।

अन्श्रीयादंजलौ पर्णपात्रं वा कांस्यभाजने ।  
आहरोपि भवेत्तस्या एक वारं विगोरसः॥11॥

वह हाथ में पत्तल में, काँसे के पात्र में भोजन करें और भोजन दूध,  
घी आदि से रहित दिन में एक बार करें।

न स्वपेद्वृक्षमूले सा खट्वाया च दिवापि च ।  
स्मरेत् पंचनमस्कारमंत्रं पुण्यस्तवं नुतं॥12॥

वह वृक्ष के मूल में, खाट पर शयन न करें, पंच नमस्कार मंत्र या  
स्तुति का स्मरण करें, उच्चारण न करें।

रजस्वला चतुर्थेन्दिह स्नायाद्गोसर्गतः परं ।  
पूर्वाह्ने घटिकाषट्कं गोसर्ग इति भाषितः॥31॥

रजस्वला स्त्री चौथे दिन में गोसर्ग समय के बाद स्नान करें। प्रातः छह  
घटिका के बाद का समय गोसर्ग काल कहलाता है।

**रजस्वला की शुद्धि:-**

तस्मिन्नहनि योग्या स्यादुदक्या गृहकर्मणि ।  
देवपूजागुरुपास्तिहोम सेवासु पंचमा (14)

उस दिन वह स्त्री पानी भरने आदि गृह कार्यों के लिये योग्य हो जाती  
है, परन्तु देवपूजा, गुरुपास्ति, होमादिक शुभकार्य के लिए पाचवें दिन  
योग्य हो जाती है।

उदक्ये यदि संलापं कुर्वाते उभयोस्तयोः ।  
अतिमात्रमघं तस्मात् वर्ज्यं संभाषणादिकं॥15॥

रजस्वला की अवस्था में दो स्त्रियाँ संभाषण न करें। संभाषण करने में  
अनेक दोष आते हैं अतः संभाषण न करें।

संलापे तु तयोः शुद्धिर्भवदेकोपवासतः ।  
तद्वयात्सहसंवासे तत् त्रयात् पंक्तिभोजने॥16॥

संभाषण करने पर उनके शुद्धि एक उपवास से होती है। साथ में

सहवास करने पर दो उपवास से शुद्धि होती है।

ऋतुमत्योर्विजात्यास्तु संलापादि भवेद्यदि ।  
तदाधिकाया शुद्धिः प्रागुक्तादेकाधिकाद्भवेत्॥17॥

विजातीय रजस्वला के साथ रजस्वला स्त्री का संलाप आदि हो जाये  
तो उच्चजातीय की स्त्री को प्रागुक्त प्रकार से एक-दो अधिक उपवास से  
शुद्धि करनी चाहिये।

अन्यास्यास्तु विशुद्धि स्यात् पूर्वोक्ताद् दानतोपि च ।  
तयोर्गोत्रं यदि समं तदा शुद्धिस्तु पूर्ववत्॥18॥

दूसरी हीन जाति की स्त्री पूर्वोक्त उपवास एवं दान से शुद्ध होती है।  
दोनों समान गोत्रवाले के साथ संभाषणादिक होने पर पूर्वोक्त प्रकार ही  
प्रायश्चित्त है।

सूतकं प्रेतकं वाघमंत्यस्पर्शजमेव वा ।  
मध्ये रजसि जातं चेत् स्नात्वा भुंजीत पुष्पिणी॥19॥

रजस्वला के बीच में सूतक, प्रेत संबंधी एवं अंत्यज स्पर्श संबंधी  
अशौच होने पर स्नान कर भोजन करें।

आर्तवं भुक्तिकाले चेदन्नं त्वक्त्वा स्वयं तत् ।  
स्नात्वा भुंजीत शंकाचेत् परं स्नानेन शुद्धयति॥20॥

भोजन काल में ऋतुमती होने पर भोजन त्याग करें। शंका होने पर  
स्नान कर भोजन करें, क्योंकि वह स्नान से शुद्ध हो जाती है।

मध्येस्नानं तु कार्यं चेत् तद्भवेदुद्धृतैर्जलेः ।  
नावगाहनमेतस्यास्तटाकादि जले तदा॥21॥

रजस्वला के बीच में स्नान करना पड़े तो कुंआ, तालाब आदि से  
पानी अलग निकलवाकर स्नान करें। तालाब आदि में प्रवेशकर स्नान न  
करें।

अज्ञानाद्ब्रह्मणो पुष्पे स्पृष्टं यद्यन्तया तथा ।  
हस्तादर्वाकस्थितं चापि तत्सर्वं दूषितं भवेत्॥24॥

रजस्वला होने की अजानकारी से तो उस स्त्री ने जिन चीजों को स्पर्श किया हो वे सब चीजें और एक हस्त पर्यन्त के पदार्थ दूषित होते हैं।

अज्ञानात् ज्ञानतो वापि तत्पाणिदत्तमोदनम्।  
अन्यद्वा योत्ति नाश्रीयादसामेक दिववासरम्॥25॥

ज्ञान या अज्ञान से रजस्वला के हाथ से कोई भोजन करें तो वह शुद्धि के लिए एक या दो दिन उपवास करें।

यामादर्वाकृत्तदभ्यर्णं कुड्याद्विरहिते स्थितः।  
कुड्यादिसंयुतेप्यात्मासन्नं स्नायात् सचेलकं॥26॥

रजस्वला के पास एक प्रहर से भी कम यदि वस्त्र वगैरह पड़े तो वह अशुद्ध हो जाते हैं। रजस्वला जिस भित्त से लगी बैठी है, उस भित्त का स्पर्श होने पर सचेल स्नान करना चाहिये।

संदृष्टरजसो नार्याः पुनरेवं रजो यदि।  
दृश्येत्तद्वादशाहात्प्राक् शुद्धिं प्रक्षालनाभवेत्॥27॥

एक बार रजस्वला होने के बाद बारह दिन के अंदर ही पुनः रजोदर्शन हो जाय तो वह स्नान से शुद्ध हो जाती है।

अष्टादशाहादर्वाकृत् येत् स्नानतः परिशोधने।  
तदूर्ध्वं चेत्तद्दिनानं त्रयमाशौचमिष्यते॥28॥

उसी प्रकार अठारह दिनों से पहिले हो जाय तो स्नान से शुद्ध हो जाती है इससे अधिक होने पर तीन दिन का अशौच रहता है

रजस्युपरते तत्र क्षालनं स्नानमेव वा।  
रजः प्रवर्तते यावत्तावदाशौचमेव हि॥29॥

रजो दर्शन बंद होने पर पास के सर्व पदार्थों का क्षालन (शुद्धि) कर स्वयं स्नान करें। रजोदर्शन जब तक होता है तभी तक अशुद्धता मानी गई है।

जो आगमोक्त जिनाभिषेक, पूजा पाठ की निन्दा करते हैं उनके लिए

पूर्वाचार्य ने सार संग्रह में कहा है:-

जिनाभिषेक जिनावैप्रतिष्ठा,  
जिनालये जैन सुपात्रतायाम्।  
सावद्यलेशो वदते स पापो,  
स निन्दको दर्शनघातकं च ॥(सार संग्रह)

जिनेन्द्र देव के अभिषेक, पंचकल्याणकादि, प्रतिष्ठा, जिनालयनिर्माण, सप्त क्षेत्र तथा सुपात्र आदि दान में सावद्य लेश को ही पाप बताते हैं वे जिन धर्म के निन्दक हैं। इतने ही नहीं जिनधर्म के निन्दा करने के कारण सम्यग्दर्शन को घात करने वाला है।

क्योंकि आगम में जो वर्णन है उसको श्रद्धान करने वाला सम्यग्दृष्टि है जो श्रद्धान नहीं करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। इतना ही नहीं संपूर्ण आगम में श्रद्धान करते हुए भी एक भी पद या अक्षर का श्रद्धान नहीं करता है वह मिथ्यादृष्टि है। प्रायः 2000 वर्ष पूर्व का अत्यन्त प्राचीन शास्त्र भगवती आराधना में आचार्य श्री शिवार्य इसी सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से उद्घोष करते हैं:-

पदमक्खरं च एकं पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्धिट्ठम्।  
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो। (38)

(भगवती आराधना)

आगम में कहा एक भी पद और अक्षर नहीं रूचता, शेष में रूचि होते हुए भी निश्चय से उसे मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए।

आगमोक्त सूर्य के समान स्पष्ट सत्य सिद्धान्त को भी मिथ्यादृष्टि जीव देख नहीं पाता है जैसे सूर्य आकाश में प्रकाशवान होते हुए भी उल्लू को दिखाई नहीं देता। स्वयं आचार्य श्री कहते हैं:-

मोहोदयेण जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।  
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं अणुवइट्ठं वा। (39)

(भगवती आराधना तथा 8 गो. सारजीवकांड)

मोह के उदय से जीव उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान नहीं करता किंतु उपदिष्ट अथवा अनुपदिष्ट असमीचीन भाव अर्थात् अतत्व का श्रद्धान करता है।

**मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि।  
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो (40)**

मिथ्यात्व का वेदन-अनुभव करने वाला जीव विपरीत श्रद्धा वाला होता है। उसे धर्म नहीं रूचता। जैसे- ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति को निश्चय से मधुर रस नहीं रूचता।

कभी-कभी सम्यग्दृष्टि जीव भी आगमोक्त सिद्धान्त को नहीं जानता हुआ या विशिष्ट ज्ञान से रहित दूसरे के उपदेश को आगमोक्त है ऐसा मानकर श्रद्धान करता है तब तक वह सम्यग्दृष्टि है। पूर्वाचार्यों ने कहा भी है :-

**सम्माइड्डी जीवो उवइट्टं पवंयणं तु सददहदि।  
सददहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरु णियोगा (27)**

गो.सा. जीवकाण्ड

जो जीव अर्हन्त आदि के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ इनकी श्रद्धा रखता है, साथ ही उनके विषय में असद्भाव अर्थात् अतत्व भी स्वयं के विशेष ज्ञान से शून्य होने से, केवल गुरु के नियोग से कि जो गुरु ने कहा वही अर्हन्त भगवान् की आज्ञा है श्रद्धान करता है, वह भी सम्यग्दृष्टि ही है अर्थात् अपने को विशेष ज्ञान न होने से और गुरु भी अल्पज्ञानी होने से वस्तुस्वरूप अन्यथा कहे और यह सम्यग्दृष्टि उसे ही जिनाज्ञा मानकर अतत्व का श्रद्धान कर ले तब भी वह सम्यग्दृष्टि ही है, क्योंकि उसने जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं किया।

इसी प्रकार के जीव सरल परिणामी, आज्ञाप्रधानी, गुणग्राही होते हैं, जब उनको विशिष्ट ज्ञानी विशिष्ट प्रमाण देकर बताते हैं कि आपने जो

श्रद्धान किया है वह आगम विरुद्ध है उसे त्याग करना चाहिए तब वह निःसंकोच सरलता से आगमोक्त सिद्धान्त को स्वीकार कर लेता है। वह दुराग्राही, हठग्राही, कुतर्कि नहीं होता है। परन्तु यदि वह सत्य सिद्धान्त को पूर्वाग्राह से प्रसित होकर स्वीकार नहीं करता है तत्क्षण वह मिथ्या-दृष्टि हो जाता है। आचार्यों ने कहा है :-

**सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सददहदि।  
सो चेव हवइ मिच्छाइड्डी जीवो तदो पहुदि (28)**

गो. सा. जीवकाण्ड

उक्त प्रकार से असत् अर्थ का श्रद्धान करता हुआ आज्ञा सम्यग्दृष्टि जीव जब अन्य कुशल आचार्यों के द्वारा पूर्व में उसके द्वारा गृहीत अस-त्यार्थ से विपरीत तत्व गणधर आदि के द्वारा कथित सूत्रों को दिखाकर सम्यक् रूप से बतलाया जावे और फिर भी वह दुराग्रहवश उस सत्यार्थ का श्रद्धान न करें तो उस समय से वह जीव मिथ्यादृष्टि होता है, क्योंकि गणधर आदि के द्वारा कथित सूत्र का श्रद्धान न करने से जिन आज्ञा का उल्लंघन सुप्रसिद्ध है। इसी कारण यह मिथ्यादृष्टि है। अतः सम्यग्दृष्टि का कर्तव्य है कि सर्वज्ञ हितोपदेशी द्वारा कथित एवं परम्पराचार्य कृत सत्य जिनवाणी के ऊपर सर्वोपरि विश्वास, श्रद्धा-आस्था रखें।

## अध्याय-2

### परमात्म प्रकाश में वर्णित जिनार्चना

(योगिन्द्र देव विरचित)

अथ दानपूजापंचपरमेष्ठी वन्दनादि रूपं परंपरया मुक्तिकारणं श्रावकधर्म कथयति -

दाणु च दिण्णउ मुणिवरहं ण वि पुज्जिउ जिणणाहु

पंच ण वंदिय परम-गुरु किमु होसइ सिव-लाहु (168)

आगे दान पूजा और पंचपरमेष्ठी की वंदना आदि परम्परा मुक्ति का कारण रूप जो श्रावक धर्म है उसे कहते हैं :-

आहारादि दान मुनिश्वर आदि पात्रों को नहीं दिया, जिनेन्द्र भगवान् को भी नहीं पूजा, अरहंत आदिक पंचपरमेष्ठी भी नहीं पूजे, तब मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है? कदापि नहीं।

दाणु इत्यादि। दाणु ण दिण्णउ आहाराभयभेषज्यशास्त्र भेदेन चतुर्विधदानं भक्ति पूर्वकं न दत्तम् केषाम्। मुणिवरहं निश्चय व्यवहार रत्नत्रयाराधकानां मुनिवरादि चतुर्विध संघ स्थितानां पात्राणां ण वि पुज्जिउ जलधारया सह गन्धाक्षतपुष्पाद्यष्टविध पूजया न पूजितः कोऽसौ। जिणणाहु देवेन्द्रधरणेन्द्र नरेन्द्र पूजितः केवल ज्ञानाद्यनन्त गुण परिपूर्णः पूज्य पद, स्थितो जिननाथः पंच ण वंदिय पंच न वन्दिताः। के ते। परम गुरु त्रिभुवनाधीश वन्द्यपद स्थिता अर्हत्सिद्धा त्रिभुवनेश वन्द्य मोक्षपदाराधकाः आचार्योपाध्याय साधवश्चेति पंच गुरुवः किमु होसइ सिवलाहु शिवशब्द वाच्य मोक्ष पद स्थितानां तदाराधकानामाचार्यादीनां च यथायोग्यं दान-पूजा-वन्दनादिकं न कृतम् कथं शिवशब्द वाच्य मोक्ष सुखस्य लाभो भविष्यति न कथमपीति। अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा उपासका व्याख्यानं ज्ञात्वा उपासकाध्ययन शास्त्र कथित मार्गेण विधिद्रव्य दातृपात्र-लक्षणविधानेन दानं दातव्यं पूजा

वन्दनादिकं च कर्तव्यमिति भावार्थः

आहार, औषध शास्त्र और अभयदान ये चार प्रकार के दान भक्ति-पूर्वक पात्रों को नहीं दिया अर्थात् निश्चय व्यवहार रत्नत्रय के आराधक जो यति आदिक चार प्रकार संघ, उनको चार प्रकार का दान भक्तिपूर्वक नहीं दिया, और भूखे जीवों को करुणा पूर्वक दान नहीं दिया। इंद्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र आदिकर पूज्य केवलज्ञानादि अनंत गुणोंकर पूर्ण जिननाथ की पूजा नहीं की, जल चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल से पूजा नहीं की, और तीन लोक से वंदने योग्य ऐसे अरिहन्त सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पंच परमेष्ठियों की आराधना नहीं की सो हे जीवा इन कार्यों के बिना तुझे मुक्ति का लाभ कैसे होगा? क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति के ये ही उपाय हैं। जिन पूजा, पंचपरमेष्ठी की वंदना और चार संघ को चार प्रकार का दान, इन बिना मुक्ति नहीं हो सकती। ऐसा व्याख्यान जानकर सातवें उपासकाध्ययन अंग में कहीं गई जो दान पूजा वंदनादिक की विधि वही करने योग्य है। शुभ विधि से न्यायकर उपार्जन किया अच्छा द्रव्य वह दातार के अच्छे गुणों को धारणकर विधि से पात्र को देना, जिनराज की पूजा करना और पंचपरमेष्ठी की वंदना करना, ये ही व्यवहानयकर कल्याण के उपाय हैं।

रणसार में वर्णित जिनार्चना-

-आ. कुंदकुंद देव विरचित-

जिणपूजा मुणिदाणं करेइ जो देई सत्तिरुवेणा

सम्माइट्ठी सावय धम्मी सो होइ मोक्खमग्गरओ (13)

जो श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिदिवस देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करता है और सुपात्र को चार प्रकार का दान देता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक है। दान देना तथा पूजा करना श्रावक का मुख्य धर्म है। जो भक्ति भाव और श्रद्धापूर्वक अपने धर्म का पालन करता है वह मोक्षमार्ग में गमन करता है। शीघ्र ही संसार समुद्र से पार हो जाता है।

पूयाफलेण तिलोए सूरपूज्जो होवइ सुद्धमणो।  
दाण फलेण तिलोए सारसुह भुंजदे णियदं (14)

जो शुद्धभाव से श्रद्धापूर्वक पूजा करता है वह पूजा के फल से त्रिलोक का अधीश व देवताओं के इन्द्रों से पूज्य हो जाता है, और जो सुपात्र को चार प्रकार का दान देता है वह दान के फल से त्रिलोक में सारभूत उत्तम सुखों को भोगता है।

णरइतिरियाइडुगदी दारीददवियलंगहाणिदुक्खणि।  
देवगुरुसत्थवन्दणसुयभेयसज्झादाणविघणफलं। (38)

जो मनुष्य देव, गुरु, शास्त्र के उद्धार, वंदना और पूजा प्रतिष्ठा आदि के निमित्त होने वाले दान में अथवा प्रदान किये हुए दान में, श्रुत की वृद्धि पाठशाला विद्यालय और स्वाध्याय आदि के लिये दान में विघ्न करता है उसको नरक, तिर्यच आदि दुर्गति के दुःख और मनुष्य-गति में दरिद्रता, विकलांगता तथा विविध प्रकार के दुःख प्राप्त होते हैं।

सम्मविसोही तवगुण चारित्तसण्णाणदाणपरिहीणं।  
भरहे दुस्समकाले मणुयाणं जायदे णियदं (37)

इस दुस्सह दुःषम (कलिकाल) पंचमकाल में मनुष्यों के नियमपूर्वक शुद्ध सम्यग्दर्शन रहित तप, व्रत अठाईस मूलगुण, चरित्र और सम्यग्ज्ञान आदि सर्व होता है।

**पूजादि न करने का परिणाम -**

ण हि दाणं ण हि पूया ण हि सीलं ण हि गुणं ण चारित्तं।  
जे जइणा मणिया ते णेरइया हुंति कुमाणुसा तिरिया।। (39)

जिन जीवों ने मनुष्य पर्याय प्राप्त कर सुपात्र को दान नहीं दिया, श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा नहीं की, शीलव्रत (स्वदारसंतोष-परस्त्री त्याग) नहीं पालन किया, मूलगुण और उत्तरगुण पालन नहीं किया, चरित्र धारण नहीं किया और श्री जिनेन्द्र देव की आज्ञा पालन नहीं की,

वे मनुष्य मर कर परलोक में नारकी, तिर्यच अथवा कुमनुष्य होते हैं।  
पतिभक्तिविहीण सदी भिच्चोय जिणसमयभक्ति हीण जईणा  
गुरुभक्तिविहीणसिस्सो दुग्गइ मग्गाणुलग्गणो णियमा (81)

पति की भक्ति से रहित स्त्री, स्वामी की भक्ति से रहित सेवक, श्रुत(शास्त्र) की भक्ति से रहित यतिराज और गुरु की भक्ति से रहित शिष्य निंद्य व दुर्गति का पात्र है।

गुरुभक्तिविहीणाणं सिस्साणं सव्वसंगविरदाणं।  
ऊसरखे ते वविय सुवीयसमं जाणसव्वणुट्टाणं। (82)

यदि सर्वप्रकार के बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह से रहित यतिश्रवों में गुरु (श्री आचार्य परमेष्ठी) में शिष्यों की भक्ति नहीं हैं तो उनकी सर्व क्रियायें ऊसर भूमि में पतित अच्छे बीज के समान व्यर्थ है

रज्जं पहाणहीणं पतिहीणं देसगामरट्ठ बलं।  
गुरुभक्तिहीणसिस्साणुट्टाणं णरस्सदे सव्वं (83)

जिस प्रकार प्रधान रहित राज्य और स्वामी रहित देश ग्राम संपत्ति सैन्य आदि की विभूति निरूपयोगी है, व्यर्थ है उसी प्रकार गुरु की भक्ति से रहित शिष्य गणों के सब आचरण व्यर्थ हैं।

सम्माण विणय रूई भक्तिविणा दाण दयाविणा धम्मं।  
गुरुभक्तिविणा तह तवचरियं णिफ्फलं जाणे (84)

जिस प्रकार सम्मान के बिना रूचि वा प्रेम नहीं होता, भक्ति के बिना दान नहीं दिया जाता और दया के बिना धर्म नहीं होता, उसी प्रकार गुरु की भक्ति के बिना चरित्र पालन करना व्यर्थ है।

धम्मज्झाणब्भासं करेई तिविहेण भाव सुद्धेणा।  
परमप्पज्झाणचेतो तेणेव खवेइ कम्माणि (86)

मन-वचन-काय की विशुद्धता से अपने आत्मा के परिणामों से होने वाले अशुभ संकल्प विकल्पों को रोककर धर्म ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। उस धर्म ध्यान के फल से ही आत्मा में परम विशुद्ध निर्विकल्प

शुक्ल ध्यान होता है जिससे यह आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में तन्मय होकर समस्त प्रकार के कर्मों का नाश कर स्व-स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

**पावारंभणिविक्ती पुण्णारंभ पाउत्ति करणं पि।  
पाणं धम्मज्झाणं जिणभणियं सव्वजीवाणं (97)**

पाप कार्य की निवृत्ति और पुण्य कार्यों में प्रवृत्ति का मूल कारण एक सम्यग्ज्ञान है। इसलिए मुमुक्षु जीवों के लिए सम्यग्ज्ञान पूर्वक धर्मध्यान श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है।

**पद्मपुराण में वर्णित जिनाभिषेक की छटा -**

(आचार्य रविषेण द्वारा विरचित प्रथम भाग तृतीय पर्व-171से 187 तक) महाविभूति युक्त इन्द्र क्षणभर में नाभिराज के उस घर जा पहुँचे जो कि नाना रत्नों की किरणों के प्रकाश रूपी वस्त्र से आवृत था। इन्द्र ने पहले देवों के साथ-साथ नगर की तीन प्रदक्षिणाएँ दी। फिर नाभिराज के घर में प्रवेश किया और तदनन्तर इन्द्राणी के द्वारा प्रसूति गृह से जिन बालक को बुलवाया। इन्द्राणी ने प्रसूति गृह में जाकर पहले जिन माता को नमस्कार किया। फिर माता के पास मायामयी बालक रखकर जिन बालक को उठा लिया और बाहर लाकर इन्द्र के हाथों में सौंप दिया। यद्यपि इन्द्र हजार नेत्रों का धारक था तथापि तीनों लोकों में अतिशय पूर्ण भगवान् का रूप देखकर वह तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ था। तदनन्तर-सौधर्मेन्द्र भगवान् को गोद में बैठाकर ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हुआ और श्रेष्ठ भक्ति से सहित अन्य देवों ने चमर तथा छत्र आदि स्वयं ही ग्रहण किये। इस प्रकार इन्द्र समस्त देवों के साथ चलकर वैदूर्य आदि महारत्नों की कान्ति के समूह से उज्ज्वल सुमेरु पर्वत के शिखर पर पहुँचा। वहाँ पाण्डु कम्बल नाम की शिला पर जो अकृत्रिम सिंहासन स्थित है उस पर इन्द्र ने जिन बालक को विराजमान कर दिया और स्वयं

उनके पीछे खड़ा हो गया। उसी समय देवों ने क्षुभित समुद्र के समान शब्द करने वाली भेरियाँ बजायी, मृदंग और शंख के जोरदार शब्द किये। यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, तम्बुरू, नारद और विश्वावसु उत्कृष्ट मूर्च्छनाएँ करते हुए अपनी-अपनी पत्नियों के साथ मन और कानों को हरण करने वाले सुन्दर गीत गाने लगे। लक्ष्मी भी बड़े आदर के साथ वीणा बजाने लगी। हाव-भावों से भरी एवं आभूषणों से सुशोभित अप्सराएँ तथा योग्य अंगहार करती हुई उत्कृष्ट नृत्य करने लगीं। इस प्रकार जब वहाँ उत्तमोत्तम देवों के द्वारा गायन वादन और नृत्य हो रहा था तब सौधर्मेन्द्र ने अभिषेक के लिये शुभ कलश हाथ में लिया। तदनन्तर जो क्षीर सागर के जल से भरे थे, जिनकी अवगाहना बहुत भारी थी, जो सुवर्ण निर्मित थे, जिनके मुख कमलों से आच्छादित थे लाल-लाल पल्लव जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, ऐसे एक हजार आठ कलशों के द्वारा इन्द्र ने विक्रिया के प्रभाव से अपने अनेक रूप बनाकर जिन बालक का अभिषेक किया। यम, वैश्रवण, सोम, वरुण आदि देवों ने और साथ ही शेष बचे समस्त इन्द्रों ने भक्तिपूर्वक जिन बालक का अभिषेक किया।

**इन्द्राणी आदि देवियों के द्वारा भगवान् को गंध से अनुलेपन -**

**इन्द्राणी प्रमुखा देव्यः सद्गन्धैरनूलेपनैः ।**

**चक्रुर्द्वर्तनं भक्त्या करैः पल्लव कोमलैः । (186)**

**महीधरमिव तं नाथं कुम्भैर्जलधरैरिव ।**

**अभिषिच्य समारब्धाः कर्तुमस्य विभूषणम् । (187)**

(पद्मपुराण भाग 1 पर्व 3, पृ. 44)

इन्द्राणी आदि देवियों ने पल्लवों के समान कोमल हाथों के द्वारा समीचीन गंध से युक्त अनुलेपन से भगवान् को उद्वर्तन किया।

जिस प्रकार मेघों के द्वारा किसी पर्वत का अभिषेक होता है उसी प्रकार विशाल कलशों के द्वारा भगवान् का अभिषेक कर देव उन्हें आभूषण पहनाने के लिये तत्पर हुए।

## श्रीराम लक्ष्मण एवं सीता की मुनि भक्ति -

अथोव्दत्यं चिरं पादौ तयो निर्झर वारिणा ।

गन्धेन सीतया लिप्तो चारुणा पुरुभावया ।(44)

आसनानानां च वल्लीनां कुसुमैर्वनसौरभैः ।

लक्ष्मीधरार्पितेः शुक्लैः पूरितान्तरमर्चितौ (45)

ततस्ते करयुग्माब्जमुकुल भ्राजितालिकाः ।

चकुर्यौगीश्वरी भक्तया वन्दनां विधिकोविदाः (46)

अथनन्तर भक्ति से भरी सीता ने निर्झर के जल से देर तक मुनियों के पैर धोकर मनोहर गन्ध से लिप्त किये। तथा जो वन को सुगन्धित कर रहे थे एवं लक्ष्मण ने जो तोड़कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओं के फूलों से उनकी खूब पूजा की। तदनन्तर ऐसे अंजलीरूपी कमल की कलियों से जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि विधान के जानने में निपुण थे ऐसे उन सबने भक्तिपूर्वक मुनिराज की वंदना की।

अत्यन्त उत्तम तथा मधुर अक्षरों से गाते हुए राम ने मनोहर स्त्री के समान वीणा को गोद में रखकर बजाया। इनके साथ ही लक्ष्मण ने भी बड़े आदर से तत्वपूर्वक गान गाया। उस समय लक्ष्मण, लक्ष्मीरूपी लता से आलिङ्गित वृक्ष के समान जान पड़ते थे और उनका मधुर शब्द कोयल की मीठी तान के समान मालूम होता था। वे गा रहे थे कि जो महायोग के स्वामी है, धीर वीर है तथा उत्तम चेष्टाओं से सहित है, उत्तम भाग्य के धारक जिन मुनियों ने उपमा से रहित, अखण्डित तथा तीन लोक में प्रसिद्ध “अर्हत्” यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया है, जिन्होंने ध्यान-रूपी दण्ड के द्वारा महामोह रूपी शिलातल को तोड़ दिया है और जो धर्मानुष्ठान-धर्माचरण से रहित विश्व को दीन समझते हैं ऐसे साधु देवों के द्वारा भी मन से, शिर से तथा वचन से वन्दनीय हैं। जानकी को जानने वाले राम लक्ष्मण जब इस प्रकार के अक्षर गा रहे थे तब तिर्यचों के भी चित्त कोमलता को प्राप्त हो गये थे।

## महासती सीता का नृत्य -

तदनन्तर जो समस्त सुन्दर नृत्यों के लक्षण जानती थी, मनोहर वेशभूषा से युक्त थी, हार माला आदि से अलंकृत थी, परम लीला से सहित थी, स्पष्ट रूप से अभिनय दिखला रही थी, जिसकी बाहुरूपी लताओं का भार अत्यन्त सुन्दर था, जो हाव भाव आदि के दिखलाने में निपुण थी, लय बदलने के समय जिसके सुन्दर स्तनों का मण्डल कुछ ऊपर उठकर कम्पित हो रहा था, जिसके चरण कमलो का विन्यास शब्द रहित था, जिसकी एक जांघ चल रही थी, जो भक्ति से प्रेरित थी ऐसी सीता ने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार जिनेन्द्र के जन्माभिषेक के समय सुमेरू पर श्री देवी ने किया था। (पद्मपुराण/पर्व 39 श्लोक 44-50)

## हरिवंश पुराण में वर्णित जन्माभिषेक की छटा -

(आ. जिनसेन स्वामी रचित)

तदनन्तर देवों के साथ-साथ उस नगर की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर सौधर्मेन्द्र ने भीतर प्रवेश किया और पवित्र जिनेन्द्र को लाने के लिए इन्द्राणी को आज्ञा दी। इन्द्र की आज्ञा पाते ही इन्द्राणी ने माता के प्रसूति गृह में प्रवेश किया और देवकृत माया से माता को सुख निद्रा में निमग्न कर उसके पास मायामयी दूसरा बालक लिटा दिया। तत्पश्चात् प्रणाम करने के बाद जिन बालक को लेकर उसने इन्द्र के हाथों में सौपा। इन्द्र ने हजार नेत्र बनाकर उसका अतिशय सुन्दर रूप देखा फिर भी वह तृप्ति को प्राप्त नहीं हुआ। जिन बालक को अपनी गोद में रखकर ऐरावत हाथी पर बैठा हुआ सौधर्मेन्द्र उस समय ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो सूर्योदय से सहित निषधाचल का शिखर ही हो। जो छत्र की छाया रूपी वस्त्र से आच्छादित थे तथा जिनके दोनों ओर चामरों के समूह ढोले जा रहे थे, ऐसे जिन बालक को सौधर्मेन्द्र देव समूह के साथ सुमेरू के शिखर पर ले गया। इन्द्र ने पहले आकर देव समूह के साथ मेरू पर्वत की प्रद-

क्षिणा दी। फिर पाण्डुक शिला पर स्थित सिंहासन पर जिन बालक को विराजमान किया। उस समय देवों ने क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान गम्भीर शब्द वाले भेरी, पटह, मर्दल तथा मृदंग आदि बाजे बजाये और शंख फूँके। किन्नर, गन्धर्व, तुम्बरू, नारद तथा विश्वावसु जाति के समस्त देव अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ कानों एवं हृदय को हरने वाली भौंति-भौंति के गान गाने लगे। उस समय देव तत, वितत, घन और सुषिर नाम के चारों मनोहारी बाजे बजा रहे थे। हाव-भाव से सुन्दर, अंगहारों से युक्त तथा श्रृंगारादि रसों के आश्चर्य उत्पन्न करने वाला अप्सराओं का नृत्य हो रहा था। इस प्रकार जब वहाँ देव समूह के द्वारा महान् आनन्द मनाया जा रहा था। लम्बी चौड़ी गुफाओं से युक्त मेरु पर्वत उनकी प्रतिध्वनि से गूँज रहा था, हर्ष से भरा सौधर्मेन्द्र अभिषेक के लिए योग्य वेष धारण कर रहा था और उत्तम देवांगनाएँ अपने हाथों में अष्ट मंगल द्रव्य धारण कर रही थीं, तब महावेगशाली देवों के समूह घट लेकर विशाल मेघों के समान समस्त दिशाओं में फैल गये और उन्होंने क्षीर सागर को क्षुभित कर दिया। क्षीर से भरे हुए चांदी और सोने के कलश देवों द्वारा एक हाथ से दूसरे हाथ में दिये जाकर सुमेरु पर्वत पर पहुँच रहे थे और वे चन्द्र तथा सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे। निरन्तर शब्द करने वाले एवं क्षीर सागर के जल से भरे हुए कलशों के द्वारा हजारों देवों ने जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक किया। उस समय इन्द्रों के कलशरूपी महामेघ जिन बालक रूपी पर्वत के ऊपर क्षीरोदक की वर्षा कर रहे थे परन्तु वे उन्हें रंचमात्र भी खेद के कारण नहीं हुए थे। भगवान् के श्वासोच्छ्वास से बार-बार उछाले हुए क्षीरोदक के प्रवाह से प्रेरित देव, उस क्षीरोदक के समुद्र में क्षणभर के लिए मक्खियों के समूह के समान तैरने लगते थे। देवों के समूह ने पहले जिस मेरु को रत्नों से पीला देखा वही उस समय क्षीरोदक के पूर से सफेद दिखने लगा था। यद्यपि क्षीरसागर अत्यन्त परोक्ष है तथापि जिनेन्द्र के जन्माभिषेक के समय देवों

के समूह ने उसे प्रत्यक्ष कर दिखाया था। जिसमें मेरुपर्वत स्नान का आसन था, क्षीर समुद्र का क्षीर स्नान जल था, और देव स्नान कराने वाले थे ऐसा वह भगवान् का स्नान था।

**देवों द्वारा अभिषेक -**

इन्द्रसामानिकानेकलोकपालादयोऽमराः।

क्रमेण चक्रुरम्भोभिरभिषेकं पयोम्बुधेः (171)

इन्द्र, सामानिक तथा लोकपाल आदि अनेक देवों ने क्षीरसागर के जल से भगवान् का क्रमपूर्वक अभिषेक किया था।

**देवियों द्वारा उबटन लेपन एवं अभिषेक -**

अत्यन्तसुकुमारस्य जिनस्य सुरयोषितः।

शच्याद्याः पल्लवस्पर्शसुकुमारकरास्ततः। (172)

दिव्यामोद समाकृष्टषटपदोधानुलेपनैः।

उद्वर्तयन्त्यस्ताः प्रापुः शिशुस्पर्शसुखं नवम्। (173)

ततो गन्धोदकैः कुम्भैरभ्यर्षिचन् जगत्प्रभुम्।

पयोधरभरार्नघ्रास्ता वर्षा इव भूभृतम्। (174)

तदनन्तर जिनके हाथ पल्लवों के समान अत्यन्त सुकुमार थे ऐसी इन्द्राणी आदि देवियों ने अतिशय सुकुमार जिन बालक को अपनी दिव्य सुगन्धि से भ्रमर समूह को आकृष्ट करने वाले अनुलेपन से उबटन किया और इस तरह उन्होंने जिन बालक के स्पर्श से समुत्पन्न नूतन सुख प्राप्त किया।

तदनन्तर पयोधर भार(मेघों के भार) से नम्रीभूत वर्षा ऋतु जिस प्रकार पर्वत का अभिषेक करती है उसी प्रकार पयोधर भार स्तनों के भार से नम्रीभूत देवियों ने सुगन्धित जल से भरे कलशों द्वारा भगवान् का अभिषेक किया।

**आदि पुराण में वर्णित सुलोचना द्वारा जिनार्चना -**

उस सुलोचना ने श्री जिनेन्द्र की अनेक प्रकार की रत्नमयी बहुतसी

प्रतिमाएँ बनवायी थीं और उनके सब उपकरण भी सुवर्ण ही के बनवाये थे। प्रतिष्ठा तथा तत्सम्बन्धी अभिषेक हो जाने के बाद वह उन प्रतिमाओं की महापूजा करती थी, अर्थपूर्ण स्तुतियों के द्वारा श्री अर्हन्त देव की भक्तिपूर्वक स्तुति करती थी, पात्र दान देती थी, महामुनियों का सम्मान करती थी, धर्म को सुनती थी तथा धर्म को सुनकर आप्त, आगम और पदार्थों का बार-बार चिन्तन करती हुई सम्यक् दर्शन की शुद्धता को प्राप्त करती थी। अथान्तर-फाल्गुन महीने की अष्टान्हिका में उसने भक्ति पूर्वक श्री जिनेन्द्र देव की अष्टान्हिका पूजा की। विधि पूर्वक प्रतिमाओं की पूजा की, उपवास किया और वह कृशांगी पूजा के शोषाक्षत देने के लिए सिंहासन पर बैठे हुए राजा अकम्पन के पास गयी। राजा ने भी उठकर और हाथ जोड़कर उसके दिए शोषाक्षत लेकर स्वयं अपने मस्तक पर रखे तथा यह कहकर कन्या को विदा किया हे पुत्री! तू उपवास से खिन्न हो रही है, अब घर जा यह तेरे पारणा का समय है।

(आदि पुराण भाग 2 श्लोक 173-179)

### सती अंजना द्वारा जिनार्चना -

पद्म पुराण - रविषेणाचार्य रचित

अपवाद के कारण निर्वासित अंजना सुन्दरी एवं बसन्तमाला जंगल में गई। वहाँ पर अवधिज्ञानी अमितगति नाम के मुनीश्वर के दर्शन हुए। वसन्तमाला ने अंजना के वर्तमान भव सम्बन्धी दुःखों के कारण जानने की मुनिश्वर से जिज्ञासा की। मुनीश्वर ने गर्भस्थ शिशु (हनुमान) का वृत्तान्त सुनाकर कहा:

जब यह अंजना कनकोदरी के भव में थी, तब इसकी लक्ष्मी नामक सौत थी। उसकी आत्मा सम्यग्दर्शन से पवित्र थी और वह सदा मुनियों की पूजा करने में तत्पर रहती थी। उसने घर के एक भाग में देवाधिदेव

जिनेन्द्र देव की प्रतिमा स्थापित कराकर भक्तिपूर्वक मुख से स्तुतियाँ पढ़ती हुई उसकी पूजा की थी। कनकोदरी महादेवी थी इसलिए उसने अभिमानवश सौत के प्रति बहुत ही क्रोध प्रकट किया। इतना ही नहीं, जिनेन्द्र देव की प्रतिमा को घर के बाहरी भाग में फिकवा दिया। इसी बीच में संयम श्री नामक आर्यिका ने भिक्षा के लिए इसके घर में प्रवेश किया। संयम श्री अपने तप के कारण समस्त संसार में प्रसिद्ध थी। तदन्तर जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का अनादर देख उन्हें बहुत दुःख हुआ। पारणा करने से उनका मन हट गया तथा इस अंजना का जीव जो कनकोदरी था उसे मिथ्यात्वग्रस्त देख उन्हें परम करुणा उत्पन्न हुई, सो ठीक ही है क्योंकि साधुर्वा समस्त प्राणियों का कल्याण चाहता है। गुरुभक्ति से प्रेरित हुए साधुजन बिना पूछे भी अज्ञानी प्राणियों का हित करने के लिए धर्मोपदेश देने लगते हैं।

हे शोभने! तू पुण्योदय से मनुष्य योनि को प्राप्त हुई है अतः घृणित आचार करने वाली न हो। तू उत्तम क्रिया करने योग्य है अर्थात् अच्छे कार्य करना ही तुझे उचित है। जो प्राणी मनुष्य पर्याय पाकर भी शुभ कार्य नहीं करता है उस मोही के हाथ आया हुआ रत्न यों ही नष्ट हो जाता है। मन, वचन, काय की शुभ प्रवृत्ति ही प्राणियों का हित करती है और अशुभ प्रवृत्ति अहित करती है इस संसार में निन्दित आचार के धारक मनुष्यों की ही बहुलता है पर जो आत्म हित का लक्ष्य कर शुभ कार्य में प्रवृत्त होते हैं वे उत्तम कहलाते हैं जो स्वयं कृत-कृत्य होकर भी उपदेश देकर भव्य प्राणियों को संसार-रूपी महासागर से तारते हैं, जो सर्वोत्कृष्ट हैं तथा धर्मचक्र के प्रवर्तक हैं ऐसे अरहन्त भगवान् की प्रतिमा का जो तिरस्कार करते हैं उन मोही जीवों को अनेक भवों तक साथ जाने वाला दुःख प्राप्त होता है। उसे पूर्ण रूप से कहने के लिए कौन समर्थ हो सकता है? कनकोदरी भी पुण्योपार्जन कर आयु के अन्त में स्वर्ग गई

और वहाँ उत्तमोत्तम भोग भोगकर वहाँ से च्युत हो महेन्द्र नगर में राजा महेन्द्र की मनोवेगा नामक रानी से यह अंजना नामक पुत्री हुई। इसने जन्म-जन्मान्तर में जो पुण्य किया था उसके अवशिष्ट अंश से यह यहाँ सम्पन्न एवं विशुद्ध कुल में उत्पन्न हुई है तथा उत्तम वर को प्राप्त हुई है। इसने त्रिकाल में पूजनीय जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा को कुछ समय तक घर से बाहर किया था उसी से इसे यह दुःख प्राप्त हुआ है।

तदन्तर निर्मल हृदय के धारक मुनिराज उन दोनों के लिए आशीर्वाद देकर आकाश मार्ग से संयम के योग्य स्थान पर चले गये। वे उत्तम मुनिराज उस गुहा में पर्यकासन से विराजमान थे। इसलिए आगे चलकर वह गुहा संसार में “पर्यक गुहा” इस नाम को प्राप्त हो गयी। इस प्रकार राजा महेन्द्र की पुत्री अंजना अपने भवान्तर सुन आश्चर्य से चकित हो गयी। उसने पूर्वभव में जो निन्द्य कार्य किया था उसकी वह बार-बार निन्दा करती रहती थी। गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन! मुनिराज के संगम से जो अत्यन्त पवित्र हो चुकी थी ऐसी उस गुफा में अंजना प्रसवकाल की प्रतीक्षा करती हुई रहने लगी। विद्या बल से समृद्ध वसन्तमाला उसकी इच्छानुसार आहार-पान की विधि मिलाती रहती थी।

अथान्तर रात्रि में एक सिंह दोनों पर आक्रमण करने के लिए आया। एक गन्धर्व ने अष्टापद का रूप लेकर उस उपसर्ग को दूर किया। तब सखी वसन्तमाला बोली:-

तस्मात्साधुमिमं देवं समाश्रित्य कृतोचितम् ।  
मुनिपर्यकंपूतायां गुहायामत्र संक्षयात् (289)  
मुनिसुव्रतनाथस्य विन्यस्य प्रतियातनाम् ।  
अर्चयन्त्यौ सुखप्राप्त्यै स्वामोदैः कुसुमैरलम् (290)  
सुखप्रसूतिमेतस्य गर्भस्याध्यायचेतसि ।

विस्मृत्य वैरहं दुःख समयं किंचिदास्वहे (291)

इसलिए उस उत्तम देव का यथोचित आश्रय लेकर मुनिराज की पद्मासन से पवित्र इस गुफा में श्री मुनिसुव्रत भगवान् की प्रतिमा विराजमान कर सुख प्राप्ति के लिए अत्यन्त सुगन्धित फूलों से उसकी पूजा करती हुई हम दोनों कुछ समय तक यहीं रहे। इस गर्भ की सुख से प्रसूति हो जाये चित्त में इसी बात का ध्यान रखे और विरह सम्बन्धी सब दुःख भूल जावें।

एवभक्तांजनावोचत्सरिव मे सर्वबान्धवाः ।

त्वमेव त्वयि सत्यां च ममेद विपिनं पुरम् (301)

वसन्तमाला के ऐसा कहने पर अंजना ने उत्तर दिया कि हे सखि! मेरे समस्त बान्धव तुम्ही हो। तेरे रहते हुए मुझे यह वन नगर के समान है।

आपन्मध्योत्सवावस्थाः सेवते यस्य यो जनः ।

स तस्य बान्धवो बन्धुरपि शत्रुरसौरव्यदः (302)

जो मनुष्य जिसके आपत्तिकाल, मध्यकाल और उत्सवकाल अर्थात् सभी अवस्थाओं में सेवा करता है वही उसका बन्धु है तथा जो दुःख देता है वह बन्धु होकर भी शत्रु है।

इत्युक्त्वा देवदेवस्य विन्यस्य प्रतिमायातनाम् ।

पूजयन्त्यौ स्थिते तत्र ते विद्याकृतवर्तने (303)

इतना कहकर वे दोनों गुफा में देवाधिदेव मुनि-सुव्रतनाथ की प्रतिमा विराजमान कर उसकी पूजा करती हुई रहने लगी। विद्या के बल से उनके भोजन की व्यवस्था होती थी।

गन्धर्वोऽप्यनयोश्चक्रे सर्वतः परिरक्षणम् ।

आतोद्यं प्रत्यहं कुर्वन् कारुण्याज्जिनभक्तितः (305)

जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति से प्रतिदिन संगीत करता हुआ गन्धर्वदेव भी करुणा भाव से इन दोनों स्त्रियों की सबसे रक्षा करता था।

## मूलाचार में वर्णित मुनियोग्य जिनाचरना

आ. वट्टकेर/आ. कंदकुंददेव

चतुर्विंशति स्तव स्वरूपं निरूपयन्नाह-

उसहादि जिणवराणं णामणिरुत्तिं गुणाणुकित्तिं चा

काउण अच्चिदूण च तिसुद्धि पणमो थावो णेओ। (24)

चतुर्विंशतिस्तव का स्वरूप निरूपित करते हैं-

ऋषभादि तीर्थकरों के नाम का कथन और गुणों का कीर्तन करके तथा उनकी पूजा करके उनको मन, वचन, कार्य पूर्वक नमस्कार करना स्तव नाम का आवश्यक जानना चाहिये।

काउण-कृत्वा गुणग्रहणपूर्वकं नामग्रहणं प्रकृत्या अच्चिदू-  
णय-अर्चयित्वा च गन्धपुष्पधूपदीपादिभिः प्रासुकैरानीतै दिव्य-  
रूपैश्च दिव्यैर्निराकृत मलपटल सुगन्धैश्चतुर्विंशति तीर्थकर पदं  
युगलार्चनं कृत्स्वान्यस्याश्रुतत्वात्तेषामेव ग्रहणम्। तिसुद्धिप-  
णमो-तिस्रश्च ताः शुद्धयंश्च त्रिशुद्धयस्ताभिः त्रिशुद्धिभिः  
प्रणामः त्रिशुद्धिप्रणामः मनोवाक्काय शुद्धिभिः स्तुते करणं।

(आ. श्री वसुनन्दी)

इस प्रकार इन तीर्थकरों का गुणग्रहण पूर्वक नाम ग्रहण करके तथा मलपटल से रहित सुगन्धित दिव्यरूप लाये गये, प्रासुक गन्ध पुष्प, धूप, दीप आदि के द्वारा चौबीस तीर्थकरों के पद युगलों की अर्चना करके मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक उनकों प्रणाम करना-स्तवन करना स्तव आवश्यक है।

(मूलगुणाधिकारः, मूलाचार पृ. 30)

नाम वंदना का प्रतिपादन करते हैं-

किदियम्मं चिदियम्मं पूयाकम्मं च विणयकम्मं चा

कादव्वं केण कस्स व कधे व कहिं व करिखुत्तो ॥578॥

कृति कर्म, चितिकर्म, प्रजाकर्म और विनयकर्म ये वंदना के एकार्थ नाम है। किसको, किसकी, किस प्रकार, किस समय और कितनी बार वन्दना करना चाहिये-

पूर्वगाथार्द्धेन वंदनाया एकार्थः कथ्यतेऽपराद्धेन तद्विकल्पा इति। कृत्यते छिद्यते अष्टविधं कर्म येनाक्षरकदंवकेन परिणामेन क्रियया वा तत्कृतिकर्म पाप विनाशनोपायः। चीयते समेकीक्रियते संचीयते पूण्यकर्म तीर्थकरत्वादि येन तच्चितिकर्म पुण्यसंचयकारणं। पूज्यंतेअर्च्यन्तेअर्हदादयो येन तत्पूजाकर्म बहुवचनोच्चारणस्त्रक्चंदनादिकं। विनीयंते निराक्रियन्ते संक्रमणोदयोदीरणादि भावेन प्राप्यंते येन कर्माणि तद्विनयकर्म। शुश्रूषणं तत्क्रिया कर्म कर्तव्य केन कस्य कर्तव्यं कथमिव केन विधानेन कर्तव्यं कस्मिन्नवस्थाविशेषे कर्तव्यं कति वारान्। (578) संस्कृत टीका: आ. श्री वसुनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्ती)

गाथा के पूर्वार्द्ध से वंदना के पर्यायवाची नाम कहे हैं अर्थात् कृतिकर्म आदि वन्दना के ही नाम है। तथा गाथा के अपराद्ध से वन्दना के भेद कहे हैं।

**कृति कर्म** : जिस अक्षर समूह से या जिस परिणाम से अथवा जिस क्रिया से आठ प्रकार का कर्म काटा जाता है - छेदा जाता है वह कृति कर्म कहलाता है अर्थात् पापों के विनाश का उपाय कृतिकर्म है।

**चिति कर्म** : जिस अक्षर समूह से या परिणाम से अथवा क्रिया से तीर्थकरत्व आदि पुण्य कर्म का चयन होता है-सम्यक् प्रकार से अपने साथ एकीभाव होता है या संचय होता है, वह पुण्य संचय का कारणभूत चितिकर्म कहलाता है।

**पूजा कर्म :** जिस अक्षर आदिकों के द्वारा अरिहंत देव आदि पूजे जाते हैं- अर्चे जाते हैं ऐसा बहुवचन से उच्चारणकर के उनको जो पुष्पमाला, चन्दन आदि चढ़ाये जाते हैं वह पूजा कर्म कहलाता है।

**विनय कर्म** जिसके द्वारा कर्मों का निराकरण किया जाता है अर्थात् कर्म संक्रमण, उदय, उदीरणा आदि भाव से प्राप्त करा दिये जाते हैं वह विनय कर्म है।

वह वन्दना क्रिया नामक आवश्यक कर्म किसे करना चाहिये? किसको करना चाहिए? किस विधान से करना चाहिए? किस अवस्था विशेष में करना चाहिए? और कितनी बार करना चाहिए? इस आवश्यक के विषय में ऐसे प्रश्नमाला होती हैं।

मूला चार भाग 1 पृ. 428

“अच्छिदुण य अर्चयित्वाच गन्धपुष्पधुपादिभिः

प्रासुकैरानीतैर्दिव्यरूपेश्च दिव्यैर्निराकृतमलपटलसुगन्धै -  
श्चतुर्विंशतितीर्थकरपदयुगलानामर्चनं कृत्वा”-।

ऐसी श्री वसुनन्दि आचार्य ने “अच्छिदूण य” इस पद की टीका की है अर्थात् लाये हुए प्रासुक गंध, पुष्प, धूपादिकों से जिनेश्वरों के चरणों को पूजना यह चतुर्विंशति जिनस्तवन है।

गृहस्थ भी सामायिकादिक षड्कर्मों का पालन करे ऐसा अमितगत्यादि आचार्यों का उपदेश है। इस अभिप्राय को धारण कर वसुनन्दि आचार्य ने उपर्युक्त पंक्ति लिखी होगी। पं. आशाधर जी ने सागार धर्माभूत में कहा है -

यत्प्रागुक्तं मुनीन्द्राणां वृत्तं तदपि सेव्यतां।

सम्यङ् निरूप्य पदवीं शक्तिं च स्वामुपासकैः॥

इस श्लोक में :-

श्रावक भी मुनियों के आचारों को, नियमों को अपनी शक्ति और पदवी के अनुसार पाले ऐसा लिखा है। अनगारधर्माभूत के अन्तिम अध्याय के अन्तिम श्लोक में भी ऐसा उल्लेख है।

नित्या नैमित्तिकीश्चेत्यवितथकृतिकर्मागवाह्यश्रुतोक्ता।

भक्त्या युक्त्ये क्रियायो यतिरथ परमः श्रावकोऽन्योऽथशक्त्या॥

उत्कृष्ट श्रावक, मध्यम और जघन्य श्रावक भी अंगबाह्यश्रुतज्ञान में कहे हुए वन्दनादिक कर्तव्य मुनि के समान अपने पद व सामर्थ्यानुसार पालन करे ऐसा कहा है।

**विचारणीय :-** इस सन्दर्भ में जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि कि आरम्भ परिग्रह से रहित मुनीश्वरादि चन्दनादि द्रव्य कहाँ से प्राप्त करेंगे एवं कैसे उस द्रव्य से जिनार्चना करेंगे?

इसका समाधान श्री आचार्य महावीर कीर्ति आदि आचार्यों ने इस प्रकार किया है कि प्रासुक द्रव्य जब श्रावक पूजावसर पर भगवान् को समर्पण करता है और उस समय पर यदि वहाँ कोई मुनीश्वरादि विराजमान हैं तब यदि श्रावक भक्ति से मुनीश्वरादि को पूजा द्रव्य में हाथ लगाने का अनुरोध करता है तब उसके प्रासुक-पूजा-द्रव्य में हाथ लगा देते हैं। यह है मुनीश्वरादि से चन्दनादि द्वारा जिनार्चना- किन्तु श्रावक की तरह वे स्वयं अष्ट द्रव्य से पूजा नहीं करते हैं। मात्र गृहस्थ के पूजा कार्य कि अनुमोदना करते हैं। श्रावक यदि पूजा सामग्री फल-पुष्पादि पात्र का मुनियों से स्पर्श कराना चाहे तो मुनिराज भी स्पर्श करके पूजा करते हैं।

## तिलोय पण्णत्ति में वर्णित जिनाचरुनल

आ. यतलवृषभ वलरचलत

“नन्दीश्वर स्थलत जलन-प्रतलमाओं के अलभलषेक वललेपन और पूजा आदल का कथन”-

### जलललभलषेक

“कुव्वंते अलभलसेयं, महावलभूदीहल तालण देवलंदा।  
कंचण-कलश-गदेहलं, वलउल-जलेहलं सुगंधेहलं। (104)

देवेन्द्र, महान् वलभूतल के साथ उन जलन प्रतलमाओं का सुवर्ण-कलशों में भरे हुए वलपुल सुगंधलत जल से अलभलषेक करते हैं।

### “सुगंधलत द्रव्य से वललेपन”

“कुंकुम-कप्पूरेहलं, चन्दण-कालागरूहल अण्णेहलं।  
तलणं वललेवणाई, ते कुव्वंते सुगंध-गंधेहलं” (105)

वे इन्द्र कुंकुम, कर्पूर, चन्दन, कालागरू और अन्य सुगंधलत द्रव्यों से उन प्रतलमाओं का वललेपन करते हैं।

“कुंदेदु-सुंदरेहलं, कुमल-वलमलेहलं सुरहल-गंधेहलं।  
वर-कलम-तंडुलेहलं, पूजंतल जलणलंद-पडलमाओं” (१०६)

वे देव, कुन्दपुष्प एवं चन्द्र सदृश्य सुन्दर, कुमल, नलर्मल और सुगन्धलत उत्तम कलमधान्य के तन्दुलों से जलनेन्द्र-प्रतलमाओं की पूजा करते हैं।

## “सुगन्धलत पुष्प मालाओं से पूजा”

सयवंतराय चंपय-माला पुण्णलग-णलग-पहूदीहलं।  
अचंतल तालओ देवाल, सुरहीहलं कुसुम-मालाहलं (107)

वे देव सेवन्तीराज, चम्पकमाला, पुन्नाग और नलग आदल सुगन्धलत पुष्प-मालाओं से उन प्रतलमाओं की पूजा करते हैं।

### “नैवेद्य से पूजा”

“बहुवलह-रसवंतेहलं, वर-भक्खेहल वलचलत्त-रूवेहलं।  
अमय-सरच्छेहलं सुरा, जलणलंद-पडलमाओ महयंतल”। (108)

वे देवगण, बहुत प्रकार के रसों से संयुक्त, अद्भुत रूपवाल और अमृत सदृश उत्तम भोज्य-पदार्थों से (नैवेद्य से) जलनेन्द्र प्रतलमाओं की पूजा करते हैं।

### “रत्न दीपक से पूजा”

वलप्फुरलद कलरण मंडल-मंडलद भवणेहल रयण-दीवेहलं।  
णलक्कज्जल-कलुसोहलं पूजलंतल जलणलंद-पडलमाओ॥

दैदीप्यमान कलरण समूह से जलन-भवनों कु वलभूषलत करने वाले कज्जल एवं कालुष्य रहलत ऐसे रत्न-दीपकों से इन प्रतलमाओं की पूजा करते हैं।

### “धूप से पूजा”

“वलसलद-दलयंतरेहलं, कालागरू-पमुह-वलवलध-धूवेहलं।  
परलमललद-मंदलरेहलं, महयंतल जलणलंद-बलंबाणलं”। (110)

देवगण मन्दलर एवं दलग-मण्डल कु सुगन्धलत करने वाले कालागरू आदल अनेक प्रकार के धूपों से जलनेन्द्र-बलम्बों की पूजा करते हैं।

## “फलों से पूजा”

“दक्खा-दाडिम-कदली-गारंगय-माहुलिंग-चुदेहि।  
अण्णेहि पक्केहि, फलेहि पूजंति जिणणाहं”। (111)

दाख, अनार, केला, नारंगी, मातुलिंग, आम तथा अन्य भी पके हुए फलों से वे देवगण जिननाथ की पूजा करते हैं।

## “चँदोबा से पूजा”

“णच्चंत-चमर-किंकिणी, विविह-विताणादियाहि वत्थहि।  
ओलंबिद-हारेहि, अच्चंति जिणेसरं देवा”॥ (112)

वे देव विस्तीर्ण एवं लटकते हुए हारों से संयुक्त तथा नाचते हुए चँवर एवं किंकिणियों से सहित अनेक प्रकार के चँदोबा आदि से जिनेश्वर की पूजा करते हैं।

## “विविध वाद्य वादन”

“मद्दल-मुडंग-भेरी-पडह-प्पहुदीणि विविह-वज्जणिं।  
वायंति जिणवराणं, देवा पूजासु भत्तीए”॥ (113)

देवगण पूजा के समय भक्ति से मर्दल, मृदंग, भेरी और पटहादि विविध बाजे बजाते हैं।

## “नृत्य, गान एवं नाटक आदि के द्वारा भक्ति प्रदर्शन”

“विविहाइ णच्चणाइं, वर-रयण-विभूसिदाओ दिव्वाओ।  
कुव्वंते कण्णाओ, गायंति जिणिंद-चरिदाणि”। (114)

उत्तम रत्नों से विभूषित दिव्य कन्यायें विविध नृत्य करती हैं और जिनेन्द्र के चरित्रों को गाती हैं।

“जिण-चरिय-णाडयं ते, चउ-व्विहाभिणय-भगं-सोहिल्लं।  
आणंदेणं देवा, बहु-रस-भावं पकुव्वंति”॥ (115)

अर्थ - वे चार प्रकार के देव आनन्द के साथ अभिनय के प्रकारों से शोभायमान बहुत प्रकार के रस-भाव वाले जिन-चरित्र सम्बन्धी नाटक करते हैं।

“एवं जेतियमेत्ता, जिणिंद-णिलया विचित्त-पूजाओ।  
कुव्वंति तेतिएसुं, णिब्भर-भत्तीसु सुर-संघा”॥ (116)

इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीप में जितने जिनेन्द्र-मन्दिर हैं, उस सब में गाढ़ भक्ति युक्त देवगण अद्भुत रीति से पूजाएँ करते हैं।

(तिलोयपण्णत्ती-पंचमो महाहियारो)

## “पूजा का समय”

पुव्वण्हे अवरण्हे, पुव्वणिसाए वि पच्छिम-णिसाए।  
पहराणि दोण्णि दोण्णि, णिब्भर-भत्ती पसत्त-मणा (102)

कमसो पदाहिणेणं, पुण्णिमयं जाव अट्टमीदु तदो।  
देवा विविहं पूजं, जिणिंद-पडिमाणं कुव्वंति। (103)

तिलोय पण्णत्ति अ.5

ये देव आसक्त चित्त होकर अष्टमी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त पूर्वान्ह, अपरान्ह, पूर्वरात्रि में दो-दो प्रहर तक उत्तम भक्ति से पूर्वादि प्रदक्षिणा क्रम से जिनेन्द्र-प्रतिमाओं की विविध प्रकार से पूजा करते हैं।

पद्मनन्दी-पंचविंशति का में वर्णित जिनार्चना (श्री जिनपूजाष्टकम्)

## जल की तीन धारा से पूजा

आ. पद्मनन्दी विरचित

जातिर्जरामरणमित्यनलत्रयस्य जीवाश्रितस्य बहुतापकृतो यथावत्।  
विध्यापनाय जिनपादयुगाग्रभूमौ धारात्रयं प्रवरवारिकृतं क्षिपामि। (1)

जन्म, जरा और मरण ये जीव के आश्रय से रहने वाली तीन

अग्नियां बहुत सन्ताप को करने वाली हैं, मैं उनको शान्त करने के लिए जिन भगवान् के चरणयुगल के आगे विधिपूर्वक उत्तम जल से निर्मित तीन धाराओं का क्षेपण करता हूँ।

### चन्दन से पूजा

यद्वन्द्वचो जिनपतेर्भवतापहारि नाहं सुशीतलमपीह भवामि तद्वत्।  
कर्पूरचन्दनमितीव मयार्पितं सत्त्वत्पादपंकजसमाश्रयणं करोति (2)

जिस प्रकार जिन भगवान् की वाणी संसार के सन्ताप को दूर करने वाली है उस प्रकार शीतल हो करके भी मैं उस सन्ताप को दूर नहीं कर सकता हूँ, इस प्रकार के विचार से ही मानों मेरे द्वारा भेंट किया गया कपूर मिश्रित वह चन्दन हे भगवान्! आपके चरण कमलों का आश्रय करता हूँ।

### तण्डुल से पूजा

राजत्यसौ शुचितराक्षतपुंजराजिर्दत्तधिकृत्य जिनमक्षतमक्षधूर्तः।  
वीरस्य नेतरजनस्य तु वीरपट्टोबद्धः शिरस्यतितरांश्रियमातनोति॥ (3)

इन्द्रिय रूप धूर्तों के द्वारा बाधा को नहीं प्राप्त हुए ऐसे जिन भगवान् के आश्रय से दी गई वह अतिशय पवित्र अक्षतों के पुंजों की पंक्ति सुशोभित होती है। ठीक है- पराक्रमी पुरुष के शिर पर बांधा गया वीरपट्ट जैसे अत्यन्त शोभा को विस्तृत करता है वैसे कायर पुरुष के सिर पर बाँधा गया वह उस शोभा को विस्तृत नहीं करता।

### पुष्पमाला से पूजा

साक्षादपुष्पशर एव जिनस्तदेनं संपूजयामि शुचिपुष्पशरैर्मनोज्ञैः।  
नान्यं तदाश्रयतया किल यन्न यत्र तत्तत्र रम्यमधिकां कुरुते च लक्ष्मीम्॥ (4)

यह जिनेन्द्र प्रत्यक्ष में अपुष्पशर अर्थात् पुष्पशरों (काम) से

रहित हैं, इसलिए मैं इसकी मनोहर व पवित्र पुष्पशरों (मनोज्ञैः शुचिपुष्पशरैः कुसुममालाभिः) से पूजा करता हूँ। अन्य (ब्रह्मा आदि) किसी की भी मैं उनसे पूजा नहीं करता हूँ क्योंकि वह पुष्पशर अर्थात् काम के अधीन हैं। ठीक है- जो रमणीय वस्तु जहाँ नहीं होती वह वहाँ अधिक लक्ष्मी को करती है।

### नैवेद्य से पूजा

देवाऽयमिन्द्रियवलप्रलयं करोति नैवेद्यमिन्द्रिय बलप्रदखाद्यमेतत्।  
चित्रं तथापि पुरतः स्थितमर्हतो अस्य शोभां विभर्ति जगतो नयनोत्सवाय (5)

हे भगवान्। यह इन्द्रिय बल को नष्ट करता है और यह नैवेद्य इन्द्रिय बल को देने वाला खाद्य (भक्ष्य) है। फिर भी आश्चर्य है कि इस अरंहत भगवान् के आगे स्थित यह नैवेद्य जगत् के प्राणियों के नेत्रों को आनन्द-दायक शोभा को धारण करता है।

### दीप से पूजा

आरार्तिकं तरलवह्निशिखं विभाति स्वच्छे जिनस्यवपुषि प्रतिबिम्बितं सत्।  
ध्यानानलो मृगयमाण इवावशिष्टं दग्धुं परिभ्रमतिकर्मचयं प्रचण्डः॥ (6)

चंचल अग्निशिखा से संयुक्त आरती का दीपक जिन भगवान् के स्वच्छ शरीर में प्रतिबिम्ब होकर ऐसे शोभायमान् होता है जैसे मानों वह अवशेष (अघाति) कर्मसमूह को जलाने के लिए खोजती हुई तीव्र ध्यान रूपी अग्नि ही धूम रही हो।

### धूप से पूजा

कस्तूरिकारसमयीरिव पत्रवल्लीः कुर्वन् मुखेषु चलनैरि दिग्धूनाम्।  
हर्षदिव प्रभुजिनाश्रयणेन वातप्रेङ्खाद्भवपुर्नटतिपश्यत धूपधूमः॥ (7)

देखो, वायु से कम्पायमान शरीर वाला धूप का धुआँ अपने कम्पन (चंचलता) से मानों यहाँ दिशाओं रूप स्त्रियों के मुखों में कस्तूरी के रस से निर्मित पत्रवल्ली (कपोलों पर की जाने वाली रचना) को करता हुआ जिन भगवान् के आश्रय से प्राप्त हुए हर्ष से नाच ही रहा है।

### फल से पूजा

उच्चैः फलाय परमामृतसंज्ञकाय नानाफलैर्जिनपतिं परिपूजयामि।  
तद्भक्तिरेव सकलानि फलानि दत्ते मोहेन तदपि याचत एव लोकः॥ (8)

मैं उत्कृष्ट अमृत नामक उन्नत फल (मोक्ष) को प्राप्त करने के लिए अनेक फलों से जिनेन्द्र देव की पूजा करता हूँ। यद्यपि जिनेन्द्र की भक्ति ही समस्त फलों को देती है, तो भी मनुष्य अज्ञानता से फल की याचना किया करता है।

### पुष्पांजलि

पूजाविधिं विधिवदत्र विधाय देवे, स्तोत्रं च समंदरसाश्रितचित्तवृत्तिः।  
पुष्पांजलि विमलकेवललोचनाय यच्छामि सर्वजनशान्तिकराय तस्मै॥ (9)

हर्षरूप जल से परिपूर्ण मनोव्यापार से सहित मैं यहाँ विधि पूर्वक जिन भगवान् के विषय में पूजा विधान तथा स्तुति को करके निर्मल केवलज्ञान रूप नेत्र से संयुक्त होकर सब जीवों को शान्ति प्रदान करने वाले उस जिनेन्द्र के लिए पुष्पांजलि देता हूँ।

### पूजा का फल

श्री पद्मनन्दिगुणौघ न कार्यमस्ति, पूजादिना यदपि ते कृतकृत्यतायाः।  
स्वश्रेयसे तदपि तत्कुरुते जनो अर्हन्, कार्या कृषिः फलकृते न तु भूपकृत्यै (10)  
मुनि पद्म (पद्मनन्दी) के द्वारा जिसके गुण-समूह की स्तुति

की गई है ऐसे हे अरहंत देव। यद्यपि कृतकृत्यता को प्राप्त हो जाने से तुम्हें पूजा आदि से कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा है, तो भी मनुष्य अपने कल्याण के लिए तुम्हारी पूजा करते हैं। ठीक भी है- खेती अपने ही प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए की जाती है, न की राजा के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए।

### भरतचक्रवर्ती के द्वारा भगवान् आदिनाथ की फलों से पूजा

परिणत फल भेदैराम जम्बूकपित्थैः पनसलकुचमोचैर्दाडिमैर्मातुलिंगै।  
क्रमुक रुचिरगुच्छैर्नारिकेलैश्च रम्यैः गुरुचरण सपर्यामातनोदातश्रीः।  
आदिनाथपुराण प्रथमभाग 97 सर्ग (252)

जिनकी लक्ष्मी बहुत ही विस्तृत है, ऐसे राजा भरत ने पके हुए मनोहर आम, जामुन, कैथा, कटहल, बड़हल, केला, अनार, ब्रिजौरा, सुपारियों के सुन्दर गुच्छे और नारियलों से भगवान् के चरणों की पूजा की थी।

### पूजादि क्रियाओं के उपदेशक तीर्थकर पापी नहीं

चउवीस वि तित्थयरा सावज्जा, छज्जीव-विराहणहेउसावयध-  
म्मोवएसकारितादो।

तं जहा-दाणं पूजा सीलमूववासो चेदि चउव्विहो सावयधम्मो।  
एसो चउव्विहोविछज्जीवविराहओ पयण - पायणगिसंघुक्खण-  
जालाण-सूदि

सूदाणादिवावारेहिजीवविराहणाएविणादाणाणुववत्तीदो। तरुवर-  
छिदंगछिंदावणि-ट्टपादन-पादावण-

तद्दहणदहावणादिवावारेण छज्जीवविराहणहेउणा विणा जिण-  
भवणकरणकरावणणहाणुववत्तीदो। ण्हवणोवलेवण  
संमज्जणछुहावण-फुल्लारोवण धूपदहणादिया-वारेहिं  
जीववहाविणाभावीहि विणा पूजकरणाणुववत्तीदो च।

जय ध.1.पृ.91

छह काय के जीवों की विराधना के कारणभूत श्रावकधर्म का उपदेश करने वाले होने से चौबीसों ही तीर्थकर सावद्य अर्थात् सदोष है। आगे इसी विषय का स्पष्टीकरण करते हैं-दान, पूजा, शील और उपवास ये चार श्रावकों के धर्म हैं। यह चारों ही प्रकार का श्रावकधर्म छह काय के जीवों की विराधना का कारण है क्योंकि भोजन का पकाना, दूसरे से पकवाना, अग्नि का सुलगाना, अग्नि का जलाना, अग्नि का खूतना और खूतवाना आदि व्यापारों से होने वाली जीवविराधना के बिना दान नहीं बन सकता है। उसी प्रकार वृक्ष का काटना और कटवाना ईंटों का गिराना और गिरवाना तथा उनको पकाना और पकवाना आदि छह काय के जीवों की विराधना के कारणभूत व्यापार के बिना, जिन भवन का निर्माण करना अथवा करवाना नहीं बन सकता है। तथा प्रक्षाल करना, अवलेपन करना, संमार्जना करना, चन्दन लगाना, फूल चढ़ाना और धूप का जलाना आदि जीववध के अविनाभावी व्यापारों के बिना पूजा करना नहीं बन सकता है।

प्रतिशंका :- कथं सीलरक्खणं सावज्जं ?

शील का रक्षण करना सावद्य कैसे है ?

शंकाकार :- ण; सदारपीडाए विणा सीलपरिवालाणुवत्तीदो।  
नहीं, क्योंकि अपनी स्त्री को पीड़ा दिए बिना  
शील का परिपालन नहीं हो सकता, इसलिए  
शील की रक्षा करना भी सावद्य है।

प्रतिशंका :- कथमुववासो सावज्जो ?

उपवास सावद्य कैसे है ?

शंकाकार :- ण; सपोट्टत्थपाणिपीडाए विणा उववासाणुवत्तीदो।  
नहीं, क्योंकि अपने पेट में प्राणियों को पीड़ा

दिए बिना उपवास नहीं बन सकता है, इसलिए  
उपवास करना भी सावद्य है।

थावरजीवे मोत्तूण तसजीवे चेव मा मारेहु त्ति  
सावियाणमुवदेसदाणदो वाणजिणा गिरवज्जा । अणसणोमोदरिय  
उत्तिपरिसंखाण-रसपरिघाय विवित्त-सयणासण-  
रुक्खमूलादावणभोवासुक्कुडासण-पलियं क द्वपलियं क ठाण-  
गोण-वीरासण-विणय बेज्जावच्च सज्जाय ज्ञाणादिकिलिसेसु  
जीवे पयिसारिय खलियारणादो वा ण जिणा गिरवज्जा तम्हा ते ण  
वंदणिज्जाल्ति ?

“स्थायर जीवों को छोड़कर केवल त्रसजीवों को ही मत  
मारो” श्रावकों को इस प्रकार का उपदेश देने से जिनदेव  
निरवद्य नहीं हो सकते हैं ?

अथवा अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान,  
रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, वृक्ष के मूल में सूर्य के आतप में  
खुले, हुए स्थान में निवास करना, उकुक्कटासन, पल्यंकासन  
अर्धपल्यंकासन, खड्गासन, गवासन, वीरासन, विनय,  
वैयावृय स्वाध्याय और ध्यान आदि के निमित्त से होने वाले  
क्लेशों में जीवों को डालकर उन्हें ठगने के कारण भी जिन  
निरवद्य नहीं है और इसलिए वे वन्दनीय नहीं है ?

एत्थ परिहारो उच्चदे । तं जहा-जइ वि एवमुवादेसंति  
तित्थयरा तो वि ण तेसिं कम्मबंधो अत्थि, तत्थ मिच्छत्तासंजम  
कसायपच्चयाभावेण वेयणीयवज्जासेस कम्माणं बंधाभावादो।  
वेयणीयस्स वि ण द्विदि अणुभाग बंधा अत्थि, तत्थ कसाया  
पच्चयाभावादो। जोगो अत्थि त्ति ण तत्थ पयडिपदेसबंधाण  
मत्थित्तं वोत्तुं सक्किज्जदे ? ट्ठिदि बंधेण विणा उदय सरुवेण  
आगच्छमाणं पदेसाणमुवयारेण बंधववएसुवदेसादो । ण च

जिणेसु देस-सयलधम्मोवदेसेण अज्जियकम्मसंचओ वि अत्थि,  
उदयसरुव कम्मागमादो असखेज्जगुणाए सेद्धीए पुव्वसंचिय कम्म  
णिज्जरं पडिसमयं करतेसु कम्मसंचयाणुववत्तीदो । ण च तित्थयर  
मण-वयण-कायवुत्तीओ इच्छा पुव्वियायो जेण तेसिं बंधो होज्ज  
किन्तु दिणयर-कप्परुक्खाणं पउत्तिओव्व वयिससियाओ ।

**समाधान :-** यहाँ पर पूर्वोक्त शंका का परिहार करते हैं। वह इस प्रकार है- यद्यपि तीर्थंकर पूर्वोक्त प्रकार उपदेश देते हैं तो भी उनके कर्म बन्ध नहीं होता है, क्योंकि जिनदेव के तेरहवें गुण-स्थान में कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यात्व, असंयम और कषाय का अभाव हो जाने से वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष समस्त कर्मों का बंध नहीं होता है। वेदनीय कर्म का बंध होते हुए भी उसमें स्थिति बंध और अनुभाग बंध नहीं होता है क्योंकि वहाँ पर स्थिति बंध और अनुभाग बंध के कारणभूत कषाय का अभाव है। तेरहवें गुणस्थान में योग है, इसलिये वहाँ पर प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध के अस्तित्व का भी कथन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि स्थिति बंध के बिना उदय रूप से आने वाले निषेकों में उपचार से बंध के व्यवहार का कथन किया गया है। जिनदेव देशव्रती श्रावकों के और सकलव्रती मुनियों के धर्म का उपदेश करते हैं, इसलिये उनके अर्जित कर्मों का संचय बना रहता है, सो भी बात नहीं है, क्योंकि उनके जिन नवीन कर्मों का बंध होता है जो कि उदय रूप ही है उनसे भी असंख्यात गुणी श्रेणी रूपसे वे प्रति समय पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा करते हैं, इसलिये उनके कर्मों का संचय नहीं बन सकता है और तीर्थंकर के मन, वचन तथा काय की प्रवृत्तियाँ इच्छापूर्वक नहीं होती हैं, जिससे उनके नवीन कर्मों का बंध हो। जिस प्रकार सूर्य और कल्पवृक्षों

की प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक होती हैं उसी प्रकार उनके भी मन, वचन और काय की प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक अर्थात् बिना इच्छा के समझना चाहिए।

**कायवाड् मनसां प्रवृत्तयो नाभवंस्तव मुनेश्चकीर्षया।  
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो धीर तावकमचिन्तमीहितम् (40)**

“हे मुने, मैं कुछ करूँ इस इच्छा से आपके मन, वचन और काय की प्रवृत्तियाँ हुई हों यह बात नहीं है और वे प्रवृत्तियाँ आपके बिना जाने हुई हैं यह भी नहीं है। पर होती अवश्य है, इसलिये हे धीर! आपकी चेष्टाएँ अचिन्त्य हैं अर्थात् संसार में जितनी भी प्रवृत्तियाँ होती हैं वे इच्छापूर्वक होती हैं और जो प्रवृत्तियाँ बिना विचारों होती हैं वे ग्राह्य नहीं मानी जाती। पर यही आश्चर्य है कि आपकी प्रवृत्तियाँ इच्छापूर्वक न होकर भी भव्य जीवों के लिये उपादेय है।

**रत्तो वा दुट्ठो वा मूढो वा जं पउंजइ पओआं।  
हिंसा वि तत्थ जायइ तम्हा सो हिंसओ होइ॥ (41)**

रागी - द्वेषी अथवा मोही पुरुष जो भी क्रिया करता है उसमें हिंसा अवश्य होती है इसलिये वह पुरुष हिंसक होता है। तात्पर्य यह है कि रागादि भाव ही हिंसा के प्रयोजक हैं, उनके बिना केवल प्राणों का वियोग होने मात्र से हिंसा नहीं होती है।

**रागादीणमणुप्पा अहिंसकत्तं त्ति देसियं समए ।  
तेसिं चे उत्पत्ति हिंसेत्ति जिणेहि णिदिदट्ठा। (42)**

रागादिक का नहीं उत्पन्न होना ही अहिंसकता है ऐसा जिनागम में उपदेश दिया है तथा उन्हीं रागादिक की उत्पत्ति ही हिंसा है, ऐसा जिनदेव ने निर्देश किया है।

अत्ता चेय अहिंसा अत्ता हिंसेत्ति णिच्छयो समए।  
जो होइ अप्पमत्तो अहिंसओ हिंसओ इयरो (43)

‘समय’ अर्थात् जिनागम में ऐसा निश्चय किया गया है कि आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है। जो प्रमाद रहित आत्मा है वह अहिंसक है तथा तो इतर अर्थात् प्रमाद सहित है वह हिंसक है।

अज्झवसिएण बंधो सत्ते मारेज्ज मा व मारेज्जा।  
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छय णयस्य (44)

सत्त्व अर्थात् जीवों को मारो या मत मारो, बंध में जीवों को मारना या नहीं मारना प्रयोजक नहीं है, क्योंकि अध्यवसाय से अर्थात् रागादिरूप परिणामों से जीवों के बंध होता है। निश्चयनय की अपेक्षा यह बंध का सारभूत कथन समझना चाहिये।

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्य णिच्छिदा हिंसा।  
पयदस्य णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदीसु (45)

जीव मरो या मत मरो, तो भी यत्नाचार से रहित पुरुष के नियम से हिंसा होती है। किंतु जो पुरुष समितियों में प्रयत्नशील है, अर्थात् यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करता है उसके हिंसामात्र से अर्थात् प्रवृत्ति करते हुए किसी जीव की हिंसा हो जाने मात्र से बंध नहीं होता है।

उच्चालिदम्मि पाए इरियासमिदस्स णिग्गमट्ठाणे।  
आबाधेज्ज कुलिंगो मरेज्ज तं जोगमासेज्जा (46)  
ण हि तग्घादणिमित्तो बंधो सुहुमो वि देसिओ समए।  
मुच्छा परिग्गहो अज्झप्पपमाणदो भणिदो (47)

ईर्या समिति से युक्त साधु के अपने पैर के उठाने पर उनके चलने के स्थान में यदि कोई क्षुद्र प्राणि उनके पैर से दब जाय

और उस के निमित्त से मर जाये तो उस क्षुद्र प्राणी के घात के निमित्त से थोड़ा भी बंध आगम में नहीं कहा है, क्योंकि जैसे अध्यात्म दृष्टि से मूर्च्छा अर्थात्-ममत्व परिणाम को ही परिग्रह कहा है वैसे यहाँ भी रागादि परिणाम को ही हिंसा कहा गया है।

ण य हिंसामेत्तेण य सावज्जेणा वि हिंसओ होइ।  
सुद्धस्स य संपत्ती अफला उत्ता जिणवरेहिं (48)

जीव केवल हिंसा मात्र से हिंसक नहीं होता है किंतु सावद्य अर्थात् राग-द्वेष आदि रूप से परिणामों से ही हिंसक होता है अतः रोग द्वेषादि से रहित शुद्ध परिणाम वाले जीव के जो कर्मों का आस्रव होता है वह फलरहित है ऐसा जिनवर ने कहा है।

णाणी कम्मस्य क्खटवयत्थमुट्ठिदो णोत्थिदो य हिंसाए।  
जदइ असदं अहिंसत्थमप्पमत्तो अबहओ सो॥ (49)

ज्ञानी पुरुष कर्म के क्षय के लिये प्रस्तुत रहता है, हिंसा के लिये नहीं और वह प्रमाद रहित होता हुआ सरल भाव से अहिंसा के लिए प्रयत्न करता है, इसलिये वह अबंधक अर्थात् अहिंसक है।

सक्कं परिहरियव्वं असक्कणिज्जम्मि णिम्ममा समणा।  
तम्हा हिंसायदणे अपरिहरंते कथमहिंसा (50)

साधु जन, जो त्याग करने के लिये शक्य होता है उसके त्याग करने का प्रयत्न करते हैं और जो त्याग करने के लिए अशक्य होता है उसमें निर्मम होकर रहते हैं, इसलिये त्याग करने के लिये शक्य भी हिंसायतन के परिहार नहीं करने पर अहिंसा कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती?

वत्थुं पडुच्च तं पुण अज्झवसाणं ति भणइ ववहारो।  
ण य वत्थुदो हु बंधो बंधो अज्झप्पजोएणा (51)

वस्तु को निमित्तकर अध्यवसान अर्थात् विविध विकल्प होते हैं, ऐसा व्यवहार प्रतिपादन करता है, परंतु वस्तु के निमित्त से बंध नहीं होता है, बंध तो अध्यवसान के संबंध से होता है।

**पुण्णस्सासवभूदा अणुकंपा सुद्धओ व उवजोओ।  
विवरीओ पावस्स हु आसव हेउं वियाणाहि (52)**

अनुकंपा, शुद्ध योग और शुद्ध उपयोग ये पुण्यास्रवस्वरूप या पुण्यास्रव के कारण हैं। तथा इनसे विपरीत अर्थात् अदया, अशुभयोग और अशुभ उपयोग ये पापास्रव के कारण हैं। इस प्रकार आस्रव के हेतु समझना चाहिये।

**णव कोडि कम्मसुद्धो परदो पच्छा य संपदिय काले।  
पर सुह दुःख णिमित्तं जइ बंधइ णत्थि णिव्वाणं (53)**

जो पुरुष कर्म की नौ कोटि अर्थात् मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से शुद्ध है, उसे भूत, भविष्यत और वर्तमान काल में यदि दूसरे के सुख और दुःख के निमित्त से बंध होने लगे तो किसी को भी निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकेगा।

**तित्थयरस्स विहारो लोअसुहो णेव तत्थ पुण्णफलो।  
वयणं च दाण पूजारंभयरं तं ण लेवेइ॥ (54)**

तीर्थकर का विहार संसार के लिये सुखकर है परन्तु उससे तीर्थकर को पुण्य रूप फल प्राप्त होता है ऐसा नहीं है तथा दान और पूजा आदि आरंभ के करने वाले वचन, उन्हें कर्म बंध से लिप्त नहीं करते हैं अर्थात् वे दान पूजादि आरंभ का जो उपदेश देते हैं उससे भी उन्हें कर्म बंध नहीं होता है।

**संजद धम्म कहा वि य उवासयाणं सदारसंतोसो।  
तसवहविरईसिक्खाथावरघादो त्ति णाणुमदो (55)**

संयतों के धर्म की अर्थात् संयम धर्म की जो कथा है उससे

श्रावकों के स्वदार-संतोष की और त्रसवध से-विरति होने का उपदेश जो आगम में दिया गया है उस का यह अभिप्राय नहीं है कि स्थावर घात की अनुमति दी गई है अथवा संयमी जनों की धर्मकथा भी उपासकों के स्वदार-संतोष और त्रसवध-विरति की शिक्षारूप होती है, अतः उसका यह अभिप्राय नहीं है कि स्थावर घात की अनुमति दी गई है। तात्पर्य यह है कि संयम रूप किसी भी उपदेश से निवृत्ति ही इष्ट रहती है, उससे फलित होने वाली प्रवृत्ति इष्ट नहीं।

**जदि सुद्धस्य वि बंधो होहिदि बाहिरयवत्थुजोएण।  
णत्थि हु अहिंसओ णाम कोइ वाआदिवहहेऊ (56)**

यदि बाह्य वस्तु के संयोग से शुद्ध जीव के भी कर्मों का बंध होने लगे तो कोई भी जीव अहिंसक नहीं हो सकता, क्योंकि श्वास आदि के द्वारा सभी से वायुकायिक आदि जीवों का वध होता है।

**पावागमदाराइं अणाइ रूवट्ठयाइं जीवम्मि।  
तत्थ सुहासवदारं उग्घादेते कउ सदोसो ॥ (57)**

जीव में पापास्रव के द्वार अनादि काल से स्थित हैं, उनके रहते हुए जो जीव शुभास्रव के द्वार का उद्घाटन करता है अर्थात् शुभास्रव के कारणभूत कार्यों को करता है वह सदोष कैसे हो सकता है ?

**सम्मत्तुपत्ती वि य सावय विरये अणंतकम्मसे।  
दंसणमोक्खवए कसायउवसामए य उवसंते (58)**

**खवये व खीणमोहे जिणे य णियमा हवे असंखेज्जा।  
तत्त्विवरीओ कालो संखेज्जगुणाए सेढीए (59)**

तीन करणों के अंतिम समय में वर्तमान विशुद्ध मिथ्यादृष्टि

जीव के जो गुणश्रेणी निर्जरा का द्रव्य है उससे प्रथमोपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति होने पर असंयत सम्यग्दृष्टि के प्रति समय होने वाली निर्जरा का द्रव्य प्रमाण असंख्यात गुणा है। उससे देशव्रती के गुण श्रेणी निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे सकल संयमी के गुणश्रेणि निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे अनन्तानुबंधी कर्म की विसंयोजना करने वाले के गुणश्रेणि निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे दर्शन मोह की क्षपणा करने वाले जीव के गुणश्रेणि निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामक जीव के गुणश्रेणि निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है।

उससे उपशान्त कषाय जीव के गुणश्रेणि निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव के गुणश्रेणि निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे क्षीण मोह जीव के गुण श्रेणि निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे स्वस्थान केवली जिनके गुणश्रेणि निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे समुद्घात केवली जिन के गुण श्रेणि निर्जरा का द्रव्य असंख्यात गुणा है। परंतु गुणश्रेणि आयाम का काल इससे विपरीत है अर्थात् समुद्घातगत केवली से लेकर विशुद्ध मिथ्यादृष्टि तक काल क्रम से संख्यात गुणा है।

घडियाजलं व कम्मे अणुसमयमसंखगुणियसेडीए ।  
णिज्जरमाणे संते वि महव्वईणं कुदो पावां॥ (60)

जब महाव्रतियों के प्रति समय घटिका यंत्र के जल के समान असंख्यात गुणित श्रेणि रूप से कर्मों की निर्जरा होती रहती है तब उनके पाप कैसे संभव है?

परमरहस्स मिसीणं समत्तगणिपिडयझरिदसाराणां ।  
परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंबमाणानां॥ (61)

समग्र द्वादशांग का प्रधान रूप से अवलम्बन न करने वाले निश्चय नयावलम्बी ऋषियों के संबंध में यह एक मूल तत्व है कि वे अपनी शुद्धाशुद्ध चित्रावृत्ति को ही प्रमाण मानते हैं।

वियोजयदि चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते,  
शिवं च न परोपघातपरुषस्मृतेर्विद्यते।  
वधोपनयमभ्युपैति च पराननिघ्नन्नपि,  
त्वयाऽयमितदुर्गमः प्रशमहेतुरुद्योतितः। (62)

कोई प्राणी दूसरों को प्राणों से वियुक्त करता है फिर भी वह वध से संयुक्त नहीं होता है। तथा परोपघात से जिसकी स्मृति कठोर हो गई है अर्थात् जो परोपघात में उपयुक्त है उसका कल्याण नहीं होता है तथा कोई दूसरे जीवों को नहीं मारता हुआ भी हिंसकपने को प्राप्त होता है। इस प्रकार हे जिन! तुमने यह अति गहन प्रशम का हेतु प्रकाशित किया है अर्थात् शांति का मार्ग बतलाया है।

तम्हा चउवीसं पि तित्थयरा णिरवज्जा तेण वे वंदणिज्जा विबुहजणेण।

इसलिये चौबीसों तीर्थकर निरवद्य है और इसलिये वे विबुधजनों से वंदनीय हैं। (जयधवल पुस्तक, गाथा की टीका पृष्ठ 91 से 98 तक)

**विशेषार्थ :** यहाँ शंकाकार का कहना है कि तीर्थकर, श्रावकों को दान, पूजा, शील और त्रस वध विरति आदि का उपदेश देते हैं तथा मुनियों को अनशन आदि बारह प्रकार के तपों के पालन करने का उपदेश देते हैं, इसलिये वे निर्दोष नहीं हो सकते क्योंकि इस क्रियाओं में जीव-विराधना देखी जाती है। दान के लिए भोजन का पकाना-पकवाना, अग्नि का जलाना-जलवाना, बुझाना-बुझवाना, हवा का करना-करवाना आदि

आरंभ करना पड़ता है। पूजन के लिये मंदिर या मूर्ति का बनाना-बनवाना, प्रक्षालन आदि का करना-करवाना आदि आरंभ करना पड़ता है। तथा त्रसवध से विरति के उपदेश में स्थावरघात की सम्मति प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार जब साधु अनशन आदि को करते हैं तब एक तो उनके पेट में स्थित जीवों की विराधना होती है। दूसरे साधुओं को भी अनशनादि के करने में कष्ट होता है, अतः तीर्थकर का उपदेश सावध होने से वे निर्दोष नहीं कहे जा सकते हैं और इसलिये उनकी स्तुति नहीं करनी चाहिये। वीरसेन स्वामी ने इस शंका का समाधान दो प्रकार से किया है। प्रथम तो यह बतलाया है कि मिथ्यात्वादि पांच बंध के कारण हैं। इनमें से प्रारंभ के चार प्रत्यय तीर्थकर जिन के नहीं पाये जाते हैं। यद्यपि उनके योग के निमित्त से सातारूप कर्मों का आस्रव होता है पर वह उदयरूप ही होता है, अतः नवीन कर्मों में स्थिति और अनुभाग नहीं पड़ता है और स्थिति तथा अनुभाग के बिना कर्मबन्ध का कहना औपचारिक है तथा पूर्वसंचित कर्मों की निर्जरा भी उत्तरोत्तर असंख्यात गुणी होती रहती है, अतः तीर्थकर जिन, इनकी अपेक्षा तो सावध कहे नहीं जा सकते हैं। योग के विद्यमान रहने से यद्यपि उनके प्रवृत्तियाँ पाई अवश्य जाती हैं, पर क्षायोपशमिक ज्ञान और कषाय के नहीं रहने से वे सब प्रवृत्तियाँ निरीच्छ होती हैं, इसलिये वे प्रवृत्तियाँ भी सावध नहीं कही जा सकती हैं। यद्यपि एक पर्याय से दूसरी पर्याय के प्रति जीव बिना इच्छा के ही गमन करता है तथा सुप्तादि अवस्थाओं में भी बिना इच्छा के व्यापार देखा जाता है तो भी यहाँ कषायादि अन्तरग कारणों के विद्यमान रहने से वे सावध ही है निरवद्य नहीं किंतु तीर्थकर जिन क्षीणकषायी हैं, अतः उनकी प्रवृत्तियाँ पापास्रव की कारण नहीं हैं, अतः तीर्थकर जिन

निरवद्य है। दूसरे सभी संसारी जीवों की प्रवृत्तियाँ सराग पाई जाती हैं, अतः तीर्थकर जिन अपने उपदेश द्वारा उनके त्याग की ओर संसारी जीवों को लगाते हैं जो पूरी तरह से उनका त्याग करने में असमर्थ हैं उन्हें आंशिक त्याग का उपदेश देते हैं और जो उनका पूरा त्याग कर सकते हैं उन्हें पूरे त्याग का उपदेश देते हैं। एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा तथा आरंभ करना श्रावकों का कर्तव्य है यह उनके उपदेश का सार नहीं है किंतु उनके उपदेश का सार यह है कि यदि श्रावक आरंभादि का त्याग करने में असमर्थ है तो भी उन्हें यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करनी चाहिये। त्रस हिंसा तो कभी भी नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार मुनियों के बाह्य वस्तु में जो राग और द्वेष रूप प्रवृत्ति पाई जाती है उसके त्याग के लिए ही मुनियों को अनशन आदि का उपदेश दिया जाता है। उसका उद्देश्य दूसरे जीवों का वध करना नहीं है, अतः तीर्थकर जिन श्रावक धर्म और मुनिधर्म का उपदेश देते हुए भी सावधी नहीं कहे जा सकते हैं और इसीलिये वे विबुधजनों से वंदनीय है यह सिद्ध होता है।

(यह विशेषार्थ जयधवला के टीकाकार पं. फूलचन्द,  
पं. महेन्द्र कुमार काशी, पं. कैलाशचन्द काशी जी है।)

पूज्यपाद-श्रावकाचार में वर्णित जिनाचरणा

(आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी विरचित)

स्वर्णचन्दनपाषाणैश्चतुरंगुलमानकम्।

कारयित्वा जिनं भक्त्या प्रत्यहं पूजयन्ति ये (74)

येनाकारेण शुकतात्मा लध्यानप्रभावतः।

तेनायं श्रीजिनो देवो बिम्बाकारेण पूज्यते॥ (75)

जो मनुष्य स्वर्ण, चन्दन और पाषाण से चार अंगुल प्रमाण भी जिनबिम्ब का निर्माण कराकर भक्ति के साथ प्रतिदिन पूजा करते

हैं, वे उसके फल से श्री जिनदेव होकर (उसी) प्रतिबिम्ब के आकार द्वारा लोगों से पूजे जाते हैं। जिस प्रकार कि शुक्ल ध्यान के प्रभाव से जीव जिस आकार से मुक्तात्मा होता है, वह सिद्ध लोक में उसी आकार से अवस्थित रहता है।

आप्तास्यासन्निधानेऽपि पुण्यायाकृतिपूजनम्।  
ताक्ष्यमुद्रा न किं कुर्याद् विषसामर्थ्यसूदनम् (76)

साक्षात् जिनदेव के समीप न होने पर भी उनकी आकृति का पूजन पुण्य प्राप्ति के लिए होता है। साक्षात् गरुड़ के अभाव में गरुड़ की मुद्रा क्या विष की सामर्थ्य का विनाश नहीं करती है? करती ही है।

परलोकसुखं भुक्त्वा पश्चान्मन्दरपर्वते।  
सुरपूजां ततो लब्ध्वा निवृत्तिं यान्ति ते नराः (77)

नामादिभिश्चतुर्भेदैर्जिनसंहिताया पुनः।  
यन्त्रमन्त्रक्रमेणैव स्थापयित्वा जिनाकृतिम्॥ (78)

नाम आदि चार निक्षेपों के द्वारा जिनसंहिता की विधि से और यन्त्र-मन्त्र के क्रम से ही जिनेन्द्र की आकृति की स्थापना करके जो जिन पूजन करते हैं, वे परलोक में सुख भोगकर, तत्पश्चात् सुमेरु पर्वत पर देवों के द्वारा जन्माभिषेक-पूजा को प्राप्त कर पुनः मुक्ति को जाते हैं।

**व्रतोद्योतेन-श्रावकाचार में वर्णित जिनार्चना**

श्री अभ्रदेव-विरचित

अमलसलिलैः सुश्रीखण्डैः शुचिकलमाक्षतैः,  
सुरभिकुसुमैः सन्नेवेद्यैः प्रकाशकदीपकैः।  
कृतपरिमलैर्धूपैः पक्कैः फलैः कुसुमांजलीन्,  
जिनश्रुतगुरुभ्यो यच्छन्तः प्रयान्ति जनाः शिवम्। (180)

जो भव्य निर्मल जल से, उत्तम श्री खण्ड से, पवित्र शालितन्दुलों से, सुगन्धित पुष्पों से, उत्तम नैवेद्यों से, प्रकाश वाले दीपकों से,

परिमल धूप से पके हुए फलों से जिनदेव, शास्त्र और गुरु को पुष्पाजलि अर्पण करते हुए पूजा करते हैं, वे मोक्ष को जाते हैं।

शास्त्राभ्यासेन दानेन पूजया जीवरक्षया।  
यस्य गच्छत्यहोरात्रं तस्य जन्मैव सार्थकम्॥ (187)

जिस मनुष्य के दिन-रात, शास्त्रों के अभ्यास करने से, दान देने से, पूजा करने से और जीवों की रक्षा करने से व्यतीत होते हैं उसका ही जन्म सार्थक है।

सुधौततन्दुलैः पूजां यो विधत्ते जिनग्रतः।  
मन्दिरे स्वर्गपालस्य जायते स भवान्तरे (193)

जो उत्तम प्रकार से धुले चावलों से जिनदेव के आगे पूजा करता है, वह दूसरे भव में स्वर्ग पालक इन्द्र के मन्दिर में उत्पन्न होता है।

अधौतपत्रपूगानि यो ददाति जिनेश्वरे।  
दासीसुतःस शून्यस्य गृहे संजायते-तराम्॥ (194)

जो जिनेश्वर के आगे बिना धूले हुए पत्र, सुपारी आदि चढ़ाता है वह दरिद्र के घर में दासी पुत्र उत्पन्न होता है।

यः पूजयति सर्वज्ञं पुष्पाणां खण्डमालया।  
सःमृत्वा निर्धने नीचे जायते म्लेच्छमन्दिरे॥ (195)

जो फूलों की खण्डित माला से सर्वज्ञ की पूजा करता है, वह मरकर निर्धन, नीच और म्लेच्छ के घर में उत्पन्न होता है।

जिनपूजाप्रभावेण भावसंग्रहणेन च।  
मालिन्यभावनिर्मुक्तास्ते जायन्ते नरेश्वराः॥ (196)

जिन पूजन के प्रभाव से और उत्तम भावों के संग्रह करने से जीव मलिन भावों से रहित होकर नरेश्वर होते हैं।

इति ज्ञात्वा जिनेन्द्राणां शुद्धद्रव्येन पूजनम्।  
क्रियते भव्यलोकेन भव्ये भव्यं मले मलम्॥ (197)

ऐसा जानकर भव्य लोगों को शुद्ध द्रव्यों से जिनेन्द्रों का पूजन करना चाहिए। क्योंकि उत्तम वस्तु, उत्तम भाव का फल उत्तम होता है और मलिन वस्तु या मलिन भाव का फल मलिन होता है।

**स्नपनं यो जिनेन्द्रस्य कुरुते भावपूर्वकम्।  
स प्राप्नोति परं सौरव्यं सिद्धिनारीनिकेतनम्। (198)**

जो पुरुष जिनेन्द्र देव का भावपूर्वक स्नपन (अभिषेक) करता है, वह सिद्धि नारी के गृह पर उत्पन्न होने वाले परम सुख को प्राप्त होता है।

### **भव्यमार्गोपदेशक उपासकाध्ययन में वर्णित जिनार्चना**

जिनदेव विरचित

**राजतं वा हि सौवर्णं शैक्तिकं स्फटिकोपलम्।  
जिनबिम्बं विनिर्माप्य प्रतिष्ठाप्य च पूजयेत्॥ (343)**

चाँदी की या सुवर्ण की या मोती की या स्फटिक पाषाण की जिनमूर्ति का निर्माण कराके और उसकी प्रतिष्ठा करके पूजन करना चाहिए।

**जिनागारे शुभे लग्ने प्रतिष्ठाप्य जिनेश्वरम्।  
पूजयन्ति नरा ये ते भवन्ति स्वर्गवासिनः। (343)**

जो मनुष्य जिन मन्दिर में शुभलग्न में जिनेश्वर देव की प्रतिष्ठा करके पूजा करते हैं वे स्वर्गवासी होते हैं।

**दन्तकाष्ठं तदा कार्यं गण्डषैः शोधयेन्मुखम्।  
तदा मौनं प्रति ग्राह्यं यावद्देव विसर्जनम्॥ (347)**

पुनः काष्ठ की दातुन करनी चाहिए और जल के कुल्लों द्वारा मुख की शुद्धि करनी चाहिए। तत्पश्चात् देव विसर्जन करने तक मौन ग्रहण करना चाहिए।

**प्रतिष्ठयाभिषेन पूजादानफलेन च।  
एहिके च परत्रे च देवै पूज्यो भवेन्नरा॥**

प्रतिष्ठा कराने से, अभिषेक से, पूजा करने से और दान के फल से

मनुष्य इस लोक में और परलोक में देवों के द्वारा पूज्य होता है।

**अंगप्रक्षालन कार्यं स्नानं वा गालितोदकात्।  
धौतं वस्त्रं ततो धार्यं शुद्धं देवार्चनोचितम्। (346)**

पूजा करने से पहले गालित जल से अंग प्रक्षालन या स्नान करना चाहिए। पुनः देव पूजन के योग्य धुला हुआ शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये।

**क्षेत्रप्रवेशनाद्यश्च मन्त्रैः क्षेत्रप्रवेशनम्।  
ततः ईर्यापथं शोध्यं पश्चात्पूजां समारंभेत्। (347)**

जिनमन्दिर में प्रवेश करने के समय यथायोग्य मन्त्रों का उच्चारण करते हुए धर्म क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए। पश्चात् ईर्यापथ की शुद्धि करके पूजा को प्रारम्भ करें।

**इन्द्रोऽहमिति संकल्पं कृत्वा आभरणभूषितम्।  
तत्र देवं ततः स्थाप्य स्थापनामन्त्रयुक्तिभिः। (348)**

“मैं इन्द्र हूँ” ऐसा संकल्प करके और आभूषणों से भूषित होकर स्थापना के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए देव की स्थापना करनी चाहिए।

**तत आहुय दिग्नाथान् मन्त्रैः सूरिगणोदितैः।  
यक्ष यक्षी ततः स्थाप्ये क्षेत्रपालसमन्विते। (350)**

पुनः आचार्यों के द्वारा कहे गए मन्त्रों से दिक्पालों का आवाहन करके क्षेत्रपालों से युक्त यक्ष-यक्षियों की स्थापना करें।

**सकलीकरणं कार्यं मन्त्रबीजाक्षरैस्तथा।  
एवं शुद्धिकृतात्मासा ततः पूजां समारंभेत्। (351)**

पुनः मन्त्र बीजाक्षरों से सकलीकरण करना चाहिए। इस प्रकार सर्व शुद्धि करके शुद्ध धर्मात्मा श्रावक जिन पूजा प्रारम्भ करें।

**आग्नेक्षुनारिकेलाद्यैः रसैः क्षीरघृतैस्तथा।  
दध्ना गन्धोदकैः स्नानं पूजा चाष्टविधा तथा। (352)**

आम, ईक्षु, नारियल आदि के रसों से, दूध से, घी से, दही से तथा सुगन्धित जल से भगवान् का अभिषेक करें तथा अष्ट द्रव्यों से पूजन करें।

नीरैश्चन्दनशालियैः पुष्पैः नानाविधैः शुभैः।  
नैवेद्यदीपधूपैश्च फलैः पूजा विधीयते॥ (353)

जल से, चन्दन से, शालि तन्दुलों से, नाना प्रकार के उत्तम पुष्पों से, नाना प्रकार के शुभ नैवेद्यों से, दीपों, धूपों और नाना प्रकार के फलों से जिनेन्द्र देव की पूजा की जाती है।

सुसिद्धचक्रं परमेष्ठिचक्रं रत्नत्रयं वा जिनपूजनं वा।  
श्रुतं सुपूज्यं वरपुण्यबुद्धया स्वर्गापवर्गार्थफलप्रदं तत्॥ (354)

पूजन करने वाले पुरुष को उत्तम पुण्योपार्जन करने की बुद्धि से स्वर्ग और मोक्ष रूप को देने वाले सिद्ध चक्र, परमेष्ठी चक्र, रत्नत्रय अथवा जिन पूजन और श्रुत पूजन को करना चाहिए।

पूजयेत्सर्वैसिद्धयर्थं जिनं सिद्ध सुखात्मकम्।  
जिनोक्तं तच्छ्रुतं पूज्यं सर्वकर्मक्षयार्थिभिः। (355)

सर्व कर्मों का क्षय करने के इच्छुकजनों को सर्व अर्थ की सिद्धि के लिए जिनदेव की सुखस्वरूप सिद्ध भगवान् की और जिनोक्त श्रुतज्ञान की पूजा करनी चाहिए।

पूर्वमाहूय देवांश्चपूजयित्वा विसर्जयेत्।  
सर्वं ते जिनभक्तानां शान्तिं कुर्वन्ति सर्वदा। (356)

पूजन प्रारम्भ करने के पूर्व देवों का आवाहन करके और पूजन करके उसका विसर्जन करें। क्योंकि ये सर्व देव, जिन देव के भक्त जनों की सदा शान्ति को करते हैं।

## जिनार्चनादि के निन्दक-मिथ्यादृष्टि

पूजाभिषेक प्रतिमासु प्राप्ते जिनालये कर्मणि देवकार्ये।  
सावद्यरूपं तु वदन्ति येऽपि जनाश्च ते दर्शनघातकाःस्युः॥ (357)

जो लोग प्रतिमाओं के पूजन में, अभिषेक में, जिनालय के निर्माण में, देव प्रतिमा के निर्माण में एवं अन्य देव सम्बन्धी कार्य में सावद्यरूप (पापयुक्त कार्य) कहते हैं, वे मनुष्य अपने और दूसरों के सम्यग्दर्शन के घातक होते हैं।

## जिनार्चना दोषप्रद नहीं

पूजा च विधिमानेन सावद्यं सिन्धुमुष्टिवत्।  
यथा न शक्यते दूष्यं तथा पुण्यं न दूष्यते। (358)

जिस प्रकार मुट्ठी भर दूषित विष अपार सिन्धु के जलों को दूषित नहीं कर सकता है उसी प्रकार पूजन विधान से प्राप्त होने वाले अपार पुण्य को अल्प सावद्य भी दूषित नहीं कर सकता है।

जिनाभिषेकस्य जिनार्चनस्य जिनप्रतिष्ठाजिनकीर्तितस्य।  
तत्पुण्यसन्दोहभरं तु नूनं किं वर्णयामि जडमानसोऽहम्॥ (359)

जिनाभिषेक का जिन-पूजन का, जिन प्रतिष्ठा का, जिन गुण कीर्तन करने का जो महान् पुण्य समुदाय का भार प्राप्त होता है, उसे मैं जड़ बुद्धिवाला मनुष्य क्या वर्णन कर सकता हूँ।

पुरुषार्थानुशासन-गत श्रावकाचार में वर्णित जिनार्चना

पं. गोविन्द विरचित

यदा यदा मनः साम्यलीनं दुर्ध्यानवर्जितम्।  
सामायिकं भवेत्पुसां सर्वकाले तदा तदा॥ (81)

जब-जब मनुष्यों का मन साम्यभाव में लीन होता है और आर्त-रौद्र रूप दुर्ध्यानों से रहित होता है तब-तब सर्वकाल उनके सामायिक होती है।

इत्यत्रैवाहर्दर्चा च कैश्चित्पौरस्त्यसूरिभिः।  
गृहस्थानामनुष्ठाने नित्ये मुख्यतयोदिता॥ (82)

इसी शिक्षाव्रत में कितने ही प्राचीन आचार्यों ने अर्हन्त देव की पूजा को भी गृहस्थों के नित्य कर्तव्यों में मुख्य रूप से कहा है।

देवानपूज्य यो भुङ्क्ते पात्रायान्धोऽप्रदाय च।  
आरम्भोत्थेन पापेन स गृही मुच्यते कथम्। (83)

जो मनुष्य अपने पूज्य देवों की पूजा न करके और पात्रों को आहार न देकर के भोजन करता है वह गृहस्थ आरम्भ जनित पाप से कैसे छूटेगा? अर्थात् नहीं छूट सकेगा।

यस्तु वक्त्यत्यर्चनेऽप्येनः स्यात्पुष्पावचयादिभिः।  
न ततस्तदनुष्ठेयं स इत्थं प्रतिबोध्यते॥ (84)

जो यह कहते हैं कि पुष्पों को वृक्षों से तोड़ने आदि से पूजन करने में पाप होता है, इसलिए फूलों से पूजन नहीं करना चाहिए, उसे इस प्रकार से प्रतिबोधित करते हैं।

भक्त्या कृता जिनार्चनं हन्ति भूति चिरार्जितम्।  
या सा किं तन्न हन्तीभं यः सिंहः स न किं मृगम्। (85)

भक्ति से की गई जो जिन पूजा चिरकाल के उपार्जित भारी पापों का विनाश करती हैं, वह क्या पुष्प पूजा आदि से उत्पन्न हुए अल्प पाप का भी विनाश नहीं करेगी? अर्थात् अवश्य ही करेगी। जो सिंह, हाथी को मारता है, वह क्या मृग को नहीं मार सकता है?

मत्वेति गृहिणा कार्यमर्चनं नित्यमर्हताम्।  
तेषां प्रत्यक्षमप्राप्तौ पूज्यास्तत्प्रतिमा बुधैः॥ (86)

ऐसा जानकर गृहस्थ को नित्य ही अरहन्तों का पूजन करना चाहिए। उनकी प्रत्यक्ष प्राप्ति के अभाव में विद्वानों को उनकी प्रतिमाएँ पूजनी चाहिए।

प्रतिमाऽचेतना सूते किं पुण्यं नेति मन्यते।  
भक्तिरेव यतो दत्ते नराणां विपुलं फलम्॥ (87)

जो ऐसा मानते हैं कि प्रतिमा तो अचेतन है, वह क्या पुण्य देगी? उसे ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि भक्ति ही मनुष्यों को विशाल फल देती है।

स्त्री शस्त्रादिविनिर्मुक्ताः प्रतिमाश्च जिनेशिनाम्।  
रागद्वेषविहीनत्वं सूचयन्ति नृणामहो॥ (88)

अहो। स्त्री, शस्त्र आदि से रहित जिनेश्वरों की प्रतिमाएँ मनुष्य को राग, द्वेष के अभाव को सूचित करती हैं। (88)

शान्ताः शुद्धासनाः सौम्यदृशः सर्वोपधिच्युताः।  
सन्मतिं जनयन्त्यर्हत्प्रतिमाश्चेक्षिताः सताम्। (89)

जिनेश्वर की प्रतिमाएँ शान्त स्वरूप हैं, शुद्ध आसनवाली हैं, सौम्य दृष्टि की धारक हैं, सर्व परिग्रह उपाधि से रहित हैं। ऐसी जिन प्रतिमाओं के दर्शन किये जाने पर सन्त जनों का सन्मति उत्पन्न करती है।

प्रतिमातिशयोपेता पूर्वा भंगापि पूज्यते।

भंगाअन्या शिरसा सापि क्षिप्याब्धिस्वापगादिषु॥ (90)

अतिशय वाली प्राचीन खंडित हुई प्रतिमा भी पूजन के योग्य होती है। जो प्रतिमायें शिर से खंडित हो, उसे समुद्र, नदी आदि में क्षेपण कर देना चाहिए।

अब्रह्मारम्भवाणिज्यादिकर्मनिरतो गृही।  
स्नात्वैव पूजयेद्देवान् परिधायच्छवाससी॥ (91)

अब्रह्म, आरम्भ, वाणिज्य आदि कार्यों में संलग्न गृहस्थ को स्नान करके और शुद्ध स्वच्छ वस्त्र धारण करके ही देव पूजा करनी चाहिए।

किं कृतप्राणिघातेन स्नानेनेतीह वक्तिः यः।  
स स्वेदाद्यपनोदाय स्नानं कुर्वन्न लज्जते॥ (92)

जो मनुष्य यह कहता है कि पूजन के लिए प्राणिघात करने वाले

स्नान से क्या प्रयोजन है? वह मनुष्य पसीना आदि को दूर करने के लिए स्नान करता हुआ क्यों लज्जित नहीं होता?

मत्वेति निर्जन्तुक स्थाने सलिलैर्वस्त्रगालितैः।

पूजार्थमाचरेत्स्नानं सन्मन्त्रेणामृतीकृतैः। (93)

ऐसा जानकर जीव रहित स्थान में वस्त्र से छाने हुए और उत्तम मन्त्र द्वारा अमृत रूप किये हुए जल से पूजन के लिए स्नान करना चाहिए।

सरित्यनयत्र चागाधपयः पर्णे जलाशये।

वातातापपरिस्पृष्टे प्रविशच्च स्नानमाचरेत्॥ (94)

पवन और सूर्य किरणों से परिस्पृष्ट (प्रासुक) नदी, सरोवर या किसी अगाध जल से भरे स्थान में प्रवेश करके स्नान करें।

वाताहतं घटीयन्त्रावाद्यास्फलितं जलम्।

सूर्याशुभियश्च संस्पृष्ट प्रासुकं यतयो जगुः। (95)

पवन से आन्दोलित, अरहत से और पाषाण आदि से टकराये हुए तथा सूर्य की किरणों से तपे हुए जल को यतियों ने प्रासुक कहा है।

इत्थं मन्त्रजलस्नातः सकलीकरणादिवित्।

त्रिशुद्धया पूजयेद् देवान् शुद्धद्रव्यैर्जलादिभिः॥ (96)

इस प्रकार मन्त्रित जल से स्नान किया हुआ, सकलीकरणादि विधि का वेत्ता, गृहस्थ त्रियोग की शुद्धिपूर्वक जलादि शुद्ध द्रव्यों से अरहन्त देवों की पूजा करें।

जिनेन्द्रसंहिताभ्यो ग्रन्थेभ्योऽर्चाविधिः स्फुटम्।

ज्ञात्वा भव्यैरनुष्ठेयः स व्यासो भवभीरुभिः। (97)

भव भीरु - भव्य पुरुषों को जिन संहिता, इन्द्रनन्दिसंहिता आदि ग्रन्थों से विस्तार सहित पूजन की विधि जानकर नित्य पूजन करना चाहिए।

जिनं पद्मेन भेकोऽपि पथ्यगच्छत्समर्चितुम्।

गजपादाहतो मृत्वा देवोऽभूद्भुतोदयः। (98)

देखो-कमल से भगवान् का पूजन करने के लिए मार्ग में जाता हुआ मेंढक श्रेणिक के हाथी के पैर से दब करके मरकर अद्भुत समृद्धि वाला देव हुआ।

इत्यादिफलमालोच्य रतैर्भाव्यं जिनार्चने।

आवश्यकेषु चावश्यं भव्यैः सामायिकादिषु॥ (99)

पूजन के उत्तम फल का विचारकर भव्य पुरुष को जिन पूजन में और सामायिक आदि आवश्यकों में अवश्य ही संलग्न रहना चाहिए।

केवलं प्राप चक्रयाद्यो लोचानन्तरमेव यत्।

ज्ञेय सामायिकस्यैव माहात्म्यं तत्कृताद्भुतम्॥ (100)

केशलोच के अनन्तर ही आदि चक्रवर्ती भरत जो आश्चर्यकारक केवल ज्ञान को प्राप्त हुए, वह सामायिक का ही माहात्म्य जानना चाहिए।

वरांगचरित्र वर्णित पूजा पद्धति

आ. जटासिंह नन्दी त्रयोविंश सर्ग

मूर्ति प्रतिष्ठा

अथ प्रशस्ते तिथिलग्नयोगे मुहूर्तनक्षत्रगुणोपपत्तौ।

क्षपाकरे च प्रति पूर्यमाणे ग्रहेषु सर्वेषु समस्थितेषु। (1)

संहेवपयन्ती स्वरूपा वितानैर्दिवाकरांशून्प्रतिमा जिनस्या।

संस्थापिता चैत्यगृहे विशाले नृपाज्ञया स्थापनकर्मदक्षैः। (2)

तदा प्रभृत्येव मुदा प्रतीतो धर्मप्रियो भूपतिशासनेन।

क्रिया विधिज्ञः पृथुधीरमात्यः प्रवर्तयां तन्महिमानमासा। (3)

सम्राट की आज्ञा पाते ही आर्य विबुध ने शुभ तिथि तथा लग्न को ज्योतिषियों से पूछा था। उन्होंने भी उत्तम मुहूर्त, श्रेष्ठ नक्षत्र तथा समस्त ग्रहों के सर्वोत्तम योग का क्षण निकाला था। उस समय सब ग्रह ऐसे स्थान पर थे कि कोई किसी का प्रतिघात नहीं करता था तथा (रात्रि नाथ) चन्द्र भी पूर्ण अवस्था को प्राप्त था। ऐसे शुभ लग्न में ही स्थापना विधि के विशेषज्ञों ने विशाल जिनालय इन्द्रकूट में राजा की

अनुमतिपूर्वक श्री एक हजार आठ कर्म जेता जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा को स्थापित किया था। यह जिनबिम्ब अपनी कान्ति तथा तेज के प्रसार से (दिननाथ) रवि की प्रखर किरणों को भी अनायास ही लज्जित कर देती थी। आर्य विबुध स्वभाव से ही धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य थे, धार्मिक क्रियाओं, विधि-विधानों के विशेषज्ञ थे तथा उनके सर्वतोमुख ज्ञान का तो कहना ही क्या था। इन सब स्वाभाविक गुणों के अतिरिक्त धर्म महोत्सव करने के लिए राजा की आज्ञा होने के कारण उनके हर्ष की सीमा न थी। उससे प्रेरित होकर उन्होंने जिनबिम्ब स्थापना के क्षण से ही जिनमह को पूरे वैभव के साथ प्रारंभ करा दिया था।

### प्रतिष्ठा संरम्भ

अनेक युद्ध प्रतिलब्ध कीर्तिः सर्वज्ञ वक्रोद्गत पुण्यमूर्तिः।  
जगत्प्रजानन्दकरः प्रदोषे नान्दीमुखं प्रतिमुखश्चकार॥ (7)  
दीपावलीभिर्ज्वलित प्रभाभिरपूर्ववर्गेश्च चरुप्रकारैः।  
गन्धैश्च पुष्पैर्बलिभिः सुधूपैर्निवेदयां रात्रिवंलिं बभूवा॥ (8)  
जिनेन्द्र चक्रायुधकेशवानां महर्षिविद्याधरचारणानाम्।  
हलेशवागीश पूरन्दराणां बद्धानि नाना चरितानि यानि। (9)  
गन्धर्वगीतश्रुतितालवंशमृदंगवीणापणवादिमिश्रैः।  
लास्यप्रयोगेष्वथ ताण्डवेषु स्वायोज्य चित्रं ननृतुस्तरुण्यः॥ (10)

सम्राट वरांग ने एक, दो नहीं अनेक दारुण युद्धों में विजय प्राप्त करके विमल यश कमाया था, सर्वज्ञ प्रभु के द्वारा उपदिष्ट धर्म का पालन करके उनके अभ्यन्तर तथा बाह्य दोनों ही परम पवित्र हो गये थे तथा अपनी प्रजा को तो सब दृष्टियों से वह सुख देते ही थे तो भी उन्होंने प्रगाढ़ भक्ति और प्रीतिपूर्वक रात्रि के अंतिम प्रहार में उठकर कर्मजेता प्रभु की आराधना करने के लिए नन्दीमुख (प्रतिष्ठा की मंगलाचरण विधि) विधिपूर्वक किया था। भांति-भांति स्वादिष्ट तथा सुन्दर नैवेद्य बनाये गये थे। उनमें कितने ही ऐसे थे जो उसके पहिले कभी बने ही न थे। दीपों की पंक्तियाँ प्रज्वलित की गयी थीं, जिनके

प्रकाश से सारा वातावरण ही आलोकित हो उठा था, मधुर तथा प्रखर सुगन्धयुक्त पुष्प संचित किये गये। उत्तम धूप तथा अन्य अर्घ्यसामग्री भी प्रस्तुत थी। इन सबको लेकर सम्राट ने जिन चरणों में रात्रि की बलि (पूजा) समर्पित की थी। श्री एक हजार आठ तीर्थकरों, सर्वज्ञ के ज्ञान को धारण करने वाले वागीशों (गणधरों), चक्रवर्तियों, नारायणों, तपोधन, मुनियों, अलौकिक विद्याओं के स्वामी विद्याधरों, चारण ऋद्धिधारी साधुओं, हलधरों (बलभद्रों) तथा इन्द्रों के जिन उदार चरित्रों का पुराणों में वर्णन किया जाता है, उन सबको गन्धर्वों के गीतों, श्रुति, ताल बांसुरी, मृदंग, वीणा, पणव आदि बाजों के द्वारा गा बजाकर तथा अभिनय पूर्वक हाव भावों का प्रदर्शन करती हुई सुन्दरी तरुणियाँ भांति-भांति के ताण्डवों (शारीरिक चेष्टाओं द्वारा कथानक का अभिनय कर देना) में घटाकर ऐसा नृत्य करती थी जिसे देखकर मन मुग्ध हो जाता था।

### बहुमुखी भक्ति

कुर्वद्भिरन्येश्च कथोपदेशान् स्तोत्रैश्च देवान् परै स्तुवद्भिः।  
प्रदीपभासा वरधर्मपुस्तान्स्वाचयद्भिश्च सकुण्ठरागैः। (11)  
कुदृष्टिपक्षं क्षपयद्भिरन्यैरुद्भासयद्भिः समयंस्त्वमन्यैः।  
तपस्विवर्यैर्वरधर्मकार्यैर्नीता त्रियामा निरपेतनिद्रैः। (12)  
प्रदीप चन्द्रग्रहतारकाणां प्रभासु पाण्डुत्व-मुपागतासु।  
भेर्यः सशंखाश्च समर्दलाश्च प्रणेदुरम्भोनिधिमन्द्र घोषाः। (13)  
एवं प्रकारेण कथान्तरेण तस्यां रजन्यामपविद्वुतायाम्।  
अथोदयो भानुहिरण्यकुम्भान्भक्त्या जिने विभ्रदिवाभ्यराजत्। (14)

कुछ लोगों ने दूसरे जिज्ञासुओं को धर्मोपदेश देकर दूसरों ने भाव तथा भक्ति के पूरसे आप्लावित श्रुति सुखद स्तोत्रों के द्वारा सच्चे देवों की स्तुति करके अन्य लोगों ने जगमगाते हुए विमल दीपों के प्रकाश में बैठकर मधुर कण्ठ से शास्त्रों का पाठ करते हुए ऐसे भी सज्जन थे जिन्होंने मिथ्यादृष्टि को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करते हुए, दूसरों का

यही प्रयत्न चलता रहा था कि किसी प्रकार संयम अमल तथा दृढ़ हो तथा जिन लोगों का तप योग लगाने का अभ्यास था उन्होंने भी उत्तम समाधि को लगाते हुए ही सारी रात्रि व्यतीत कर दी। उस दिन - रात भर किसी ने पलक भी न झपकने दिया था। रात्रि में जिनकी निर्मल कान्ति तथा प्रकाश अंधकार को नष्ट कर रहे थे, उन्हीं चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारका तथा प्रज्वलित दीपकों की प्रभा के लिए जलधरों की गर्जना के सदृश मन्द ध्वनि करते हुए भेरियों, शंखों तथा मर्दलों के साथ अनेक बाजे बजने लगे थे। उक्त प्रकार के धार्मिक व्यासंग तथा अन्य इसी प्रकार की कथाओं को करते हुए ही उत्सव की वह प्रथम रात्रि न जाने कब बीत गयी थी।

### प्रातः कालीन पूजा

चूर्णैश्च पुष्पैरपि ताण्डुलैश्च दशार्धवर्णैर्बलिकर्मयोग्यैः।  
नानाकृतीस्तत्र बलीन्विधिज्ञा भूमिप्रदेशे रचयांबभूवुः। (15)

उषाकाल में जब लाल वर्ण सूर्य बिम्ब उदयाचल पर उठ आया था तो ऐसा प्रतीत होता था कि जिनेन्द्र प्रभु की प्रगाढ़ भक्ति से प्रेरित होकर ही सूर्य स्वर्ण का कलश लेकर सेवा में उपस्थित हुए हैं। जो लोग चौक पूरने तथा प्रातः कालीन पूजा की विधि के विशेषज्ञ थे उन्होंने भांति-भांति के शुद्ध सुगन्धित चूर्णों, पुष्पों, अक्षतों तथा चौक पूरने आदि में सर्वथा उपयुक्त (दश के आधे) पाँच प्रकार शुद्ध रंगों को लेकर मंदिर की भूमि पर भी नाना प्रकार तथा आकार के चौक पूर कर प्रातः कालीन अर्घ्य चढ़ाये थे।

### जिनालय वास

उपर्युपर्युच्छ्रितचित्रकूटं मणिप्रभालङ्कृतसत्कवाटम्।  
प्रयत्नसंवर्धितवृक्षवाटं रराज भूयो नरराजवेश्म। (16)  
तस्मिन्पृथुश्रीमति राजगेहे पुरोहितेनातिहितेन राज्ञः।  
द्रव्यं जिनानां स्नपनक्रियार्थं संभारयां बुद्धिमता प्रचक्रे। (17)

आपःपयः पुष्पफलानि गन्धा यवाज्यसिद्धार्थ कतन्दुलाश्च।  
लाजाक्षतः कृष्णतिलाः सदर्भाअर्घ्याणिदघ्ना रचितानि तत्र। (18)

पूजा के दिनों में मंदिर में रहना आवश्यक था अतएव बढ़े यत्न और परिश्रम के द्वारा लगाये गये सुंदर वृक्षों की कतारों के मध्य में मनुष्यों के अधिपति का एक गृह था, जिसके समस्त शिखर ऊपर, ऊपर ही उठाये गये थे। उसके सुंदर दृढ़ कपाटों पर अनेक भांति के मणि लगे हुए थे, उनसे छिटकती हुई प्रभा के कारण कपाटों की शोभा अत्यन्त मोहक हो गई थी। सब प्रकार की सम्पत्ति से परिपूर्ण तथा विशाल शोभा के भंडार उस राजगृह में सम्राट के पुरोहित पूजा कार्यों में ही लगे रहते थे अतएव उनके द्वारा ही जिनेन्द्र देव की पूजा के लिये आवश्यक अष्ट द्रव्य तथा अभिषेक में उपयोगी समस्त साज समारम्भ महाराज के लिए बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ तैयार कराया गया था। जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, फल, गौ, सरसों, तण्डुल, कृष्ण तिल, तावा, दूध, दही, घी, सुन्दर दूब, कुश, सुगन्धित द्रव्य आदि अर्घ्य और अभिषेक में आवश्यक सब सामग्री तथा उपकरण वहाँ पर सजे रखे थे।

### द्रव्यों का विशेष फल

आपो हि शान्त्यर्थमुदाहरन्ति आप्यायनार्थं हिपयो वदन्ति।  
कार्यस्य सिद्धिं प्रवदन्ति दघ्ना दुग्धात्पवित्रं परमित्युशन्ति॥ (19)  
दीर्घायुराप्नोति च तण्डुलेन सिद्धार्थका विघ्नविनाशकार्थाः।  
तिलैर्विवृद्धिं प्रवदन्ति नृणामारोग्यतां याति तथाक्षतेस्वु॥ (20)  
यवैः शुभं वर्णवर्षुर्घृतेन फलैस्तु लोकद्वयभोगसिद्धिः।  
गन्धास्तु सौभाग्यकरा नराणां लाजैश्च पुष्पैरपि सौमनस्यम्॥ (21)

जन्म जरा मृत्यु आदि की शांति के लिए जल चढ़ाते हैं, विषय वासनाओं को सर्वथा मिटाने के लिये पय (दूध) से पूजा करते हैं, दधि के द्वारा पूजा करने से कार्य सिद्धि होती है, दूध से पूजा करने से परम पवित्र धाम (मोक्ष) में निवास प्राप्त होता है, शुद्ध तण्डुलों से जिनेन्द्र देव के चरणों की उपासना करने का फल दीर्घ आयु होती है,

सिद्धसार्थक (पीले सरसों) की बलि (पूजा) प्रभु के समक्ष समर्पित करने का अवश्यभावी परिणाम यही होता है कि इष्टिष्ट कार्यों में किसी भी रूप में विघ्नबाधा नहीं आती है। जो पुरुष तिलों की बलि का भक्ति भाव से उपहार करते हैं वे संसार में सब ही दृष्टियों से वृद्धि को प्राप्त करते हैं। शुद्ध तथा अखण्डित अक्षतों की पूजा का परिपाक होने से मनुष्य नीरोग होता है। यव के उपहार का अटल फल सब दृष्टियों से कल्याण है, घृत के उपहार का परिणाम स्वरूप स्वस्थ शरीर होता है, भक्तिपूर्वक फलों के चढ़ाने से इस लोक में ही नहीं अपितु परलोक में भी इच्छानुसार परिपूर्ण भोग प्राप्त होते हैं। सुगन्धमय पदार्थों की अंजलि करने से प्राणी अपने तथा परायों का स्नेह भाजन होता है उसे देखकर ही लोग आह्लादित होते हैं। लावा तथा फूलों के उपहार का परिणाम जब उदय में आता है तो प्राणी का हृदय तथा बुद्धि निर्मल और स्थिर होते हैं।

### दिक्पाल पूजा

सौवर्णरोप्यामलताम्रकॉस्या-दिन्द्रादिदिक्षु प्रणिधानयोग्यान्।  
विभागवित्तं तु यथानुसंख्यं पात्र प्रकारन्त्रचयां बभूवुः। (22)

दूसरे प्रतिष्ठाचार्य जिन्हें दिशाओं के अधिपतियों (दिक्पालों) तथा उनके प्रिय अतएव योग्य पात्रों की धातु आदि के विवरण का विशेष ज्ञान था उन लोगों ने ही इन्द्रकूट जिनालय के पूजा मंडप में शुद्ध सोने, चाँदी, निर्मल ताम्बें, काँसे आदि के पात्र बनवाकर इन्द्र आदि के पद का ध्यान रखते हुए संख्या और क्रम के पूरे विचार के अनुकूल स्थापित करवाये थे।

### अभिषेक सज्जा

सनादकाकाचनका घटाश्च भृङ्गारिकापालिकवर्तकानि।  
शंखादिनानाकृतिभाजनानि प्रापूय यन्त्राणि हरिन्मयानि॥ (23)

नदीजलंप्रश्रयणोदकं च कौप्यं च वाप्युद्भवसारसं चा  
तडागतीर्थोदिभवपुण्यतोयं पुरोधसा संजगृहे यथावत्॥ (24)  
पयोदधि क्षीरघृतादिपूर्णा फलाग्रपुष्पस्तबकापिधाना।  
घटावली दामनिवद्धकण्ठा सुवर्णकारैर्लिखिता रराजा॥ (25)  
अष्टोत्तराः शीतजलैः प्रपूर्णाः सहस्रमात्रा कलशा विशालाः।  
पद्मोत्पलोत्फुल्लापिधानवक्रा जिनेन्द्रबिम्बरनपनैककार्याः॥ (26)  
चतुः प्रकारा ह्युपमानि काख्या हारिद्रगन्धोदनसत्कृताश्च।  
निवर्तितास्रा परिधाप्यसूत्रं दूर्वाङ्कुराग्रै रचिताः शिरस्सु॥ (27)  
सुदर्शनीयाः फलजातयश्च क्षीरद्रुमाणां च कषायवर्गाः।  
मनः शिलाहिङ्गुलकुङ्कुमाद्या वर्णप्रकारश्च सुसंगृहीताः॥ (28)  
गोशीर्षसंज्ञं वरचन्दनं च गन्धान्सुगन्धीन्विविधप्रकारन्।  
पृथग्विधान् धूपवरानथान्यान्पूजाविधिज्ञो विदधौ पुरोधाम्॥ (29)  
विचित्रवर्णांवरवास चूर्णान्दशार्धवर्णांश्च चरुननेकान्।  
माल्यं च संघातिमकादिरम्यं विपञ्चयाः पंचविधा बभूवुः॥ (30)

अभिषेक मण्डप में बड़ी-बड़ी नादें, सोने के शंख आदि के सदृश अनेक आकार और प्रकारों में बने हुए कलश, झारियाँ, पालिकाएँ (थाली में गोल घड़े) आवर्तक (घुमावदार पात्र) आदि पात्र तथा सोने से ही बने अनेक यंत्र रखे हुए थे। इनमें नदियों के पवित्र जल झरनों के धातुओं के रसमय जल, कूपों के नीर, बावडियों से भरा हुआ जल, जलाशयों के नीर, तालाबों का जल तथा तीर्थ स्थानों के परम पवित्र जल को पुरोहित ने विधिपूर्वक लाकर भर दिया था। सोने चाँदी आदि के कितने ही कलश मुख पर रखे हुए श्री फल आदि फलों, फलों के गुच्छों तथा पत्तों से ढके हुए थे। प्रत्येक कलश के गले में मालाएँ लटक रही थीं। इन सब शोभाओं के अतिरिक्त सुवर्णकारों के द्वारा इन पर खोदी गई चित्रकारी की शोभा का तो वर्णन करना ही कठिन था। (आठ अधिक एक हजार) अर्थात् एक हजार आठ बड़े-बड़े कलश शीतल जल से भर कर रखे गये थे। उनके मुख विकसित कमलों नील-कमलों आदि से ढके हुए थे। श्री जिनेन्द्र देव के महाभिषेक के समय ही यह कलश काम

में लाये जाते थे। चार प्रकार की उपमा निकायों (मिट्टी के घड़े जो कि पूजा आदि धार्मिक काम में आते हैं) को हल्दी, सुगन्धित द्रव्य तथा ओदन आदि से संस्कृत किया था। उन पर मालाएँ भी बांधी गयी थी। तथा दूर्वा को रखकर कच्चे तागे से बांधकर उनको तैयार करके किनारों पर रख दिया था। सब जाति के शिष्टफल एकत्रित किये गये थे जिन्हें देखकर आँखें तृप्त हो जाती थी। दूधयुक्त वृक्षों के फल पनस आदि भी लाये गये थे तथा आंवला आदि कसैले फलों की भी कमी न थी। मनःसिला (मैनेसिल एक प्रकार की गेरु) ईगु (हिंगूल) कुंकुम आदि रंगों की सब जातियाँ वहाँ पर संचित की गयी थी। सुगन्धित द्रव्य जिनमें उत्तम चंदन, गोरुचन आदि अग्रगण्य थे इन सब सुगन्धित पदार्थों तथा भांति-भांति के अन्य गंध द्रव्यों को, अनेक प्रकार के एक से एक बढकर धूपों को तथा अन्य पूजा की सामग्री को पूजा की विधि के विशेषज्ञ पुरोहित ने प्रचुर मात्रा में संकलित किया था। भांति-भांति के सुगन्धित चूर्णों का भी संचय किया गया था, इनके रंग भी बड़े विचित्र थे। विविध प्रकार के नैवेद्य अनेक रंगों और आकारों से युक्त करके बनाये गये थे। संघातिम (विशेष रंग-बिरंगी माला) आदि सुन्दर मालाओं के ढेर लगे हुए थे तथा पाँचों प्रकार की विपन्जिका (हवन सामग्री) भी प्रचुर मात्रा में तैयार थी।

### पुजारी राजा

द्विषत्स्वसूर्या प्रमदास्वनङ्ग धनानि दीनेषु मुदं निजेषु।  
ददन्कटान्तभ्रमरप्रतानं राजाधिरूढः करिणः जगाम॥ (55)  
पौरांडगनाभिः कृतभूषणाभिर्वद्धैर्नरैः पोष्यजनेः परीताः।  
नरेन्द्र पत्नी शिविकाः प्रयाता गन्तुं प्रवृत्ता इव सौधमालाः। (56)  
एवं प्रभृत्या नरदेवपत्न्यो नृपेण संप्राप्य जिनेन्द्रगेहम्।  
प्रदक्षिणीकृत्य बलिं प्रविश्य परीत्य तस्थुर्ह्यभिषेकशालाम्। (57)

सम्राट के चढने के लिए गये हाथी के गण्डस्थल से मदजल बह रहा

था अतएव उन्हें (गण्डस्थलों की) भौरों के झुंड ने घेर रखा था ऐसे हाथी पर जब श्री वरांग राजा जिनालय के लिए निकले थे तब उनके आन्तरिक हर्ष की सीमा न थी। उस समय उन्होंने दीनों को धन लुटाया था, अपने सौंदर्य के कारण यौवन मद से उन्मत्त नायिकाओं में उत्तेजना उत्पन्न की थी तथा युद्धवीर आदि रूपों के साथ अपने धर्मवीर के रूप को भी प्रकट करके शत्रुओं के मन में असूया का संचार किया था। धर्म महोत्सव के अनुकूल वेश भूषा से सुसज्जित शोभायात्रा निकलना प्रारम्भ हुई थी। जिन्हें देखकर चलते-फिरते गृहों की पंक्ति का भ्रम हो जाता था इन पालकियों के आगे पीछे तथा दोनों पक्षों में वृद्ध पुरुष तथा अन्तःपुर में पले पुषे अन्य परिचालकों के झुंड चले जा रहे थे। पूर्वोक्त साज-सज्जा तथा वैभव के साथ राज-पत्नियाँ सम्राट की पीछे-पीछे ही इन्द्रकूट जिनालय में जा पहुँची थी। वहाँ पहुँचते ही उतर कर उन सबने पहले तीन प्रदक्षिणाएँ की थीं, फिर प्रवेश करके अर्घ्य आदि सामग्री चढ़ाकर वे अभिषेक शाला की ओर चली गयी थीं जहाँ पर वेदी के चारों ओर वृत्ताकार बनाकर वें बैठ गयी थीं।

### अभिषेक

सुगन्धिगन्धोदकधौतपाणिस्तुरूष्कसंधूपितधूपपाणिः।  
पुष्पाक्षतक्षेपणदक्षपाणिः स स्नापको दर्भ पवित्र पाणिः॥ (58)  
मृदं गगम्भीरनिनादनादं लसत्ताकोरुतरं गरं गम्।  
व्यालोलसच्चामरफेनमालं पूजासरस्तच्छनकैर्जगाहे॥ (59)  
आनीय लोकत्रयनाथबिम्बमास्थाय मौनव्रतमासमाप्तम्।  
आस्थाप्यरत्नांचितपीठिकायां पूजाविधौ यत्नपरो बभूव॥ (60)  
प्रणम्यपूर्वं सुसमाहितात्मा भृंगारवर्यं परिगृह्य दोर्भ्याम्।  
पादाभिषेक प्रथमं विकृत्य तत्याज निर्माल्यकमुत्तरेण॥ (61)  
प्रमार्ज्य हस्ताम्बुरुहद्वयेन अर्घ्यं च वामाग्रकरे निधाय।  
अंगुष्ठमार्गेण निपात्य तोयं स्वाहा जिनादिभ्य इति प्रमन्त्र्या (62)

समयविधायार्घ्यमथोत्तमांगे मन्त्राक्षराण्यप्युपजाप्य धीमान्।  
उच्चैः पठस्तोत्रवरं जिनस्य मूर्धाभिषेकं मुदितः प्रचक्रे। (63)

संधौतहस्तः कुसुमाक्षतानि निक्षिप्य पदाम्बुरुहे जिनस्या।  
तैर्वर्णपूरैरुपमानिकाभिर्निपातयं स्तोयघटैः सहैवा। (64)

स्वच्छाम्बुपूर्णेर्वरहेमकुम्भैस्तैर्मृन्मयैः सत्कुसुमावकीर्णः।  
घटैरनेकैरभिषिच्य नाथं तं गन्धपंकेन विलिम्पति स्मा। (65)

सुगन्धिसच्चन्दनतोयसिक्ताः स्वकेशख्याततचूर्ण-चाम्नाः।  
पर्यन्तमत्तप्रचलद्विरेफा आरोपयामास सुपुष्पमालाः। (66)

सुवर्णपुष्पैर्विविधप्रकारै रत्नावलीभिस्तडिदुज्ज्वलाभिः।  
विभूषणानि प्रतिभूषयन्ती विभूषायामास तदा जिनार्चाम्। (67)

प्रदीप्य दीपांश्च हविर्निवेद्य निवेदयामास महाबलिं च।  
स्थानं विदित्वा गृहदेवतायां दिशाबली नार्द्रकरः प्रचक्रे। (68)

अद्भिः पवित्रीकृतहस्तपद्मः प्रदर्शयामास स दर्पणादीन्।  
विमुच्य मौनं ह्यभिषेचनान्ते स स्वस्तिकां त्रिर्निरूवा वाचम्। (69)

अभिषेक शाला में स्नपनाचार्य पहिले से ही सुगन्धित चन्दन मिश्रित जल से हाथ धोये हुए उचित मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहे थे। तुखार (तुरुष्क) देश से लायी गयी धूप को वैश्वानर में जलाया जा रहा था। उससे निकलते हुए धुएँ में डालकर उन्होंने अपने हाथों को सुखा लिया था। उनके हाथ पुष्प आदि सामग्री को विधिपूर्वक यथास्थान डालने में अत्यन्त अभ्यस्त थे तथा पवित्र कुशा को हाथ में लिये ही वे खड़े थे। अभिषेक का समय निकट होने के कारण मृदंग आदि बाजे लगातार बज रहे थे, जिनसे मन्द और गंभीर नाद हो रहा था, लहराती हुई ऊँची पताकाएँ लहरों के सदृश मनोहर थीं तथा हर दिशा में द्रुते हुए चमर स्वच्छ सुन्दर फेन पुंज के समान दिखते थे अतएव अभिषेक गृह पूजासर (तालाब) के समान लगता था। सम्राट के पहुँचते ही स्नपकाचार्य धीरे से इस तालाब में उतर गये थे अर्थात् उन्होंने कार्य प्रारंभ कर दिया था। वह तुरत ही जाकर तीनों लोकों के नाथ जिनेन्द्र प्रभु की मूर्ति को ले

आये थे। उसकों रत्नों से जड़े गये महार्घ आसन पर विराजमान करके उन्होंने उपक्रम की समाप्ति पर्यन्त मौन व्रत धारण कर लिया था तथा मन, वचन, काय तीनों को लगाकर प्रयत्न पूर्वक पूजा प्रारम्भ कर दी थी। अपने आत्मा तथा अन्य इन्द्रियों को एकाग्र करके स्नपकाचार्य ने सबसे पहले साष्टांग प्रणाम किया था, तब दोनों भुजाओं से सावधानी के साथ बड़ी झारी को उठाया था और सबसे पहिले श्री एक हजार आठ जिनेन्द्र देव के चरणों का अभिषेक प्रारम्भ करते हुए उत्तरदिशा की ओर पूजा की सामग्री का अर्घ समर्पित किया था। दोनों हाथों रूपी कमलों के द्वारा भगवान् की मूर्ति को भली-भाँति पोँछा था फिर बायें हाथ की हथेली पर अर्घ लेकर "जिनादिभ्यः स्वाहा" स्पष्ट रूप से मुख द्वारा उच्चारण करते हुए हाथ के अंगूठे के सहारे वे थोड़े से पानी की पतली धार गिराते जाते थे। इतनी विधि पूर्ण कर लेने के पश्चात् उन्होंने बीजाक्षर (ओम ह्रां हीं आदि) परिपूर्ण मंत्रों का विशुद्ध उच्चारण करते हुए श्री जिनेन्द्र बिम्ब के उत्तमांग (मस्तक) पर यथाविधि अर्घ्य चढ़ाया था। फिर ऊँचे स्वर में स्तोत्रों का पाठ करते हुए परम प्रसन्न विवेकी स्नपकाचार्य ने जिन बिम्ब का मस्तकाभिषेक किया था। इतना कार्य समाप्त करके उन्होंने फिर अपने हाथों को धोया था। तब पुष्प और अक्षत उठाकर जिनेन्द्र देव के चरणों में चढ़ाये थे। इसके बाद रंग - बिरंगे जलों से परिपूर्ण उपमालिकाओं के जल की धारा के साथ-साथ अन्य कलशों के पवित्र जल की धारा देना भी प्रारम्भ किया था। निर्मल पवित्र जल से भरे सोने के एक हजार आठ कलशों से अभिषेक करने के पश्चात् विकसित पुष्पों से ढके मिट्टी के घड़ों की धाराएँ जिनेन्द्र देव के मस्तक पर छोड़ी थी तथा और भी अनेक प्रकार के रसों से परिपूर्ण कलशों से अभिषेक करने के पश्चात् आचार्य ने चन्दन के उबटन से भगवान् का लेप किया था। इसके उपरान्त आचार्य ने जिनबिम्ब के गले में सुन्दर, सुगन्धित तथा आम्लान पुष्पमाला पहना दी थी। वह माला

चन्दन के जल से आर्द्र की गई थी। अपने किंजल्कों (जीरों) से झरें परागरूपी धूल के कारण उनका रंग धूमिल हो गया था तथा उसकी सुगन्ध से उन्मत्त भौरें चारों तरफ गुंजार कर रहे थे। उस समय अनेक आकार और प्रकार के सोने के पुष्पों, बिजली के उद्योत के समान प्रखर प्रभामय रत्नों की मालाओं तथा विभिन्न आभूषणों के समर्पण द्वारा अर्घ्य चढाकर पुजारियों और दर्शकों ने जिन पूजा (रूप नायिका) का ही श्रृंगार कर डाला था। चारों ओर दीपावलियाँ प्रज्ज्वलित कर दी गई थी, सब प्रकार की हवन सामग्री का होम करने के पश्चात् पूर्ण आहुति दी गई थी। इसके उपरान्त आचार्य ने बिना हाथ सुखाये ही अर्थात् तुरन्त ही जिनालय के क्षेत्रपाल देवताओं के स्थान को निमित्त आदि ज्ञान से जानकर उसी दिशा को सलक्ष्य करके उन्हें तथा समस्त दिक्पालों को अर्घ्य चढाये थे।

### अष्टमंगल द्रव्यार्पण

मंगल्यगीतस्तुतिमन्त्रयुक्तः कृतांजलिः साधुगणो हि तत्र।  
परीत्य सर्वोऽतिविशुद्धभावः सर्वज्ञबिम्बं प्रणनाम भक्त्या॥ (70)

धर्मोऽर्हतां सर्वजगद्धिताय प्रवर्धतामित्यभिघोषयन्सः।  
साशीर्वचस्तूर्यमृदंगनादैः प्रवेशयां तां प्रतिमां बभूवा। (71)

इस क्रम से अभिषेक विधान को पूर्ण करके स्नपकाचार्य ने जल से अपने हाथ धोये थे और दर्पण चमर आदि मंगल द्रव्यों को जिनबिम्ब के सामने रखकर प्रदर्शित किया था, तब उन्होंने अपने मौन को खोलकर तीन बार स्वस्ति यज्ञ का वाचन किया था। स्वस्ति वाचन के बाद ही वहाँ उपस्थित साधु, सज्जन हाथ जोड़े हुए मंगल, विनती, स्तोत्र तथा मन्त्रों का उच्चारण करते हुए श्री जिनेन्द्र देव की मूर्ति के सामने आये थे। उनके मन तथा भाव अत्यन्त शुभ और शुद्ध थे अतएव उन्होंने भक्ति से गद्गद होकर प्रभु के चरणों में प्रणाम किया था। इसके तुरन्त बाद ही स्नपकाचार्य ने धीर गम्भीर स्वर से घोषणा की थी "संसार भर

प्राणियों का कल्याण करने के लिए अर्हन्त केवली के द्वारा उपदिष्ट जिनधर्म की जय हो।" तदनन्तर आशीर्वचन करते हुए मृदंग, तूर्य आदि बाजों के नाद के बीच ही उन्होंने बिम्ब को वेदिका पर विराजमान कर दिया था।

### मूर्ति स्थापन तथा पंचामृत अभिषेक का फल

गन्धार्चनैश्चम्पकनागगन्धान्मूर्त्या स्वगन्धैरतिशेरते तान्।  
धूप प्रदानैः कुलकेतवः स्युस्तेजस्विनः स्युर्वरदीप दानैः। (78)

जिनालयों में जो केवल श्री जिनबिम्ब की स्थापना ही कराते हैं वे भी मनुष्य तथा देवगति के सुखों और अभ्युदयों को प्राप्त करते हैं तथा जो पुरुष दूध, दहि, इक्षुरस आदि के द्वारा जिनेन्द्र देव का पंचामृत अभिषेक कराते हैं वे स्वयं राज्याभिषेक आदि के अधिकारी होते हैं।

### द्रव्य पूजा फल

माल्यप्रदानैः विरतेश्चरेभ्यो भवन्ति हेमांगाद भूषितांगाः।  
भवन्ति भास्वन्मुकुट प्रदानात्स्फुरत्किरीटोत्तमपट्टचिन्हः॥ (79)

शुद्धिं लभन्ते वरदर्पणेन भृंगारतः स्युर्कमनीय रूपाः।  
शान्तिं भजन्ते कलशप्रदानात् स्थालाद्धनेनाढवतमा भवन्ति॥ (80)

जो मनुष्य सुगन्धित द्रव्यों द्वारा वीतराग प्रभु की पूजा करते हैं उनके शरीर, श्वास, परसीना आदि ऐसे सुगन्धित होते हैं कि उसके आगे चम्पक, नाग, केशर आदि प्रखर, गन्धमय पुष्पों की सुगन्ध भी मन्द पड़ जाती है। धूप की अंजलि समर्पित करने से मनुष्य अपने कुलों में प्रधान व्यक्ति होते हैं तथा दीपक से अर्चना करने का परिणाम होता है तेज युक्त भाव और देहा मालाओं के उपहार जिन चरणों में देने से केवल विषयों में ही विरक्ति नहीं होती है अपितु स्वर्णमय अंगद आदि आभूषणों से देह अलंकृत रहती है। मुक्ताओं और रत्नों से जगमगाते मुकुट समर्पित करने से जीव स्वयं ही अगले भव में प्रकाशमान मुकुट और राजचिन्ह पट्ट आदि को प्राप्त करते हैं।

## अष्ट मंगल दान-फल

चक्रप्रदानाद्धिनतारि पक्षास्तूर्यैस्त्रिलोक प्रथितप्रणादाः।  
विद्याधरत्वं हि वितानदानाच्छत्रप्रदानाद्धिपुलं हि राज्यम्॥ (81)

घण्टाप्रदानान्मधुरः स्वरः स्याद्धजैर्विचित्रैरभिवारिताज्ञः।  
सर्वैः प्रवन्द्यो जिनवन्दनेन सर्वर्तुसर्वर्द्धिसुखैकभागी॥ (82)

इत्येवमुक्त्वा तदनुग्रहार्थं पूजाफलं दानफलेन सार्धम्।  
ज्ञेयार्णवस्यान्तमितो महात्मा धर्मोपदेशाद्विर राम साधुः। (83)

स्वच्छ सुन्दर दर्पण भेंट करने से पापमल शुद्ध होता है, मंगल चिन्ह झारी को चढ़ाकर जीव सुभग तथा कमनीय रूप के अधिकारी बनते हैं, कलश चढ़ाने से कषाय आदि दोषों की शान्ति होती है तथा स्थाली चढ़ाकर जीव सबसे बड़े धनाढ्य होते हैं। धर्म चक्र मंगल द्रव्य को चढ़ाने के प्रताप से जीव समस्त शत्रुओं का विजेता होता है, तूर्य भेंट करने के परिणाम स्वरूप सम्यक्दृष्टि पुजारी की कीर्ति तीनों लोकों में गायी जाती है, चन्दोबा चढ़ाने के ही कारण लोग अलौकिक विद्या के ज्ञान से विभूषित विद्याधर होते हैं तथा छत्र समर्पित करने से उत्पन्न पुण्य के उदय होने पर पुजारी के राज्य का विपुल विस्तार होता है। घण्टा समर्पित करने का परिपाक यही होता है कि श्रावक को सुस्वर प्राप्त होता है। रंग बिरंगी ध्वजाएँ समर्पित करने वाले श्रावकों का शासन अलंघ्य होता है तथा जो नियम से जिनेन्द्र देव की वन्दना करते हैं वे सबके द्वारा पूजे ही नहीं जाते हैं अपितु उन्हें सब ऋतुओं तथा ऋद्धियों के फलों की एक साथ ही प्राप्ति होती है। उक्त क्रम से उदार आशय ऋषिराज ने सम्राट् तथा समस्त दर्शकों का कल्याण करने की इच्छा से प्रेरित होकर दान के फल के साथ-साथ पूजा के परिणाम को समझाया था। अन्त में यह कहकर कि श्रावकों के द्वारा ज्ञेय तत्वों का वर्णन एक ऐसा समुद्र है जिसका कभी अन्त नहीं हो सकता है अतएव उन्होंने अपने धर्मोपदेश समाप्त कर दिया था।

## सावय धम्मदोहा में वर्णित जिनार्चना

आ. योगीन्द्रदेव विरचित

### घृतपय प्रक्षाल--

जो जिण ण्हावइ घयपयहिं सुरहिं ण्हविज्जइ सोइ।  
सो पावइ जो जं करइ एहु पसिद्धउ लोइ॥ (181)

जो जिन भगवान् को घृत और पय से स्नान कराता है, उसे सुर नहलाते हैं। "जो जैसा करता है तैसा पाता है" यह लोक में प्रसिद्ध ही है।

जिणु ण्हावइ उत्तमरसहिं सक्करअम्मभवेहिं।  
सो नरु जम्मोवहि तरहि इत्थु म भंति करेहि॥

जो जिन भगवान् को शक्कर और आम्र के उत्तम रसों से नहलाता है, वह नर जन्मोदधि को तरता है, इसमें भ्रान्ति मत करो।

जो घियकंचनवण्णडइ जिणु ण्हावइ धरि भाउ।  
सो दुग्गइइअवहरइ जम्मि न दुक्कइ पाउ॥

जो कंचनवर्ण-घृत से जिन भगवान् को भाव से धारण कर नहलाता है, वह दुर्गति को दूर करता है और जन्म भर उसे पाप नहीं लगता।

दुद्धं जिणवरु जो ण्हवइ मुत्ताहलधवलेण।  
सो संसारि ण संभवइ मुच्चइ पावमलेण॥

जो मुक्ताफल के समान धवल दूध से जिनवर को स्नान कराता है, वह संसार में उत्पन्न नहीं होता और पापमल से मुक्त हो जाता है।

दुद्धझडाडडि उत्तरइ दडवड दहिउ पंडति। (तुं)  
भवियहं मुच्चइ कलिमलहं जिणादिट्टउ विहसतुं॥

दूध की धारा के पश्चात् शीघ्र दधि पड़ता हुआ तथा जिन भगवान् को देखकर प्रसन्न होता हुआ भव्यों को कलिमल से मुक्त कर देता है।

सव्वोसहि जिण्णहाहियइं कलिमलरोय गलंति।  
मणवंछियसय संभवहिं मुणिगण एम भणंति॥

सर्वोषधि से जिन-भगवान् को नहलाने से कलिमल के रोग दूर हो जाते हैं और सैंकड़ों मनोवाञ्छित कार्यसिद्ध होते हैं ऐसा मुनीगण कहते हैं।

### गंधोदक प्रक्षालः--

गंधोष्ण जि जिणवरहं ण्हाविय पुण्णु बहुत्तु।  
तेलह बिंदु वि विमलजलि को वारइ पसरंतु। (182)

जिनवर के गंधोदक स्नान से बहुत पुण्य होता है, विमल-जल में पड़े हुये तेल के बिन्दु को फैलने से कौन रोक सकता है?

### जल प्रक्षाल फलः

जलधारा जिणपयगयऊ रयहं पणासइ णामु।  
ससहरकिरणकरालियहं तिमिरहु कित्तिऊ थामु॥ (183)

जिन देव के चरणों पर की जलधारा रज का नाम तक नष्ट कर देती है। चन्द्रकिरणों से करालित तिमिर का कितना सामर्थ्य है?

### चन्दन पूजा फलः

जो चच्चइ जिणु चंदणइ होइ सुरहि तसु देहु।  
तिल्लें जह दीवहं गयइ उज्जोइज्जइ गेहु॥ (184)

जो जिन भगवान् की चन्दन से पूजा करता है, उसका शरीर सुगन्धित होता है, जैसे कि दीप में डाले तेल से घर में उजाला किया जाता है।

### अक्षत पूजा

### श्रुत पंचमी फलः--

जिणु अच्चइ जो अक्खयहिं तसु वरवंसपसूइ।  
अह विहियइ सुयपंचमिहि होइ वि चक्किविहूइ (185)

जो अक्षतों से जिनदेव को पूजता है, उसका उत्तम वंश में जन्म होता है और श्रुतपंचमी के विधान से चक्रवर्ती की विभूति होती है।

### पुष्प पूजा फलः

खुट्टइ भोउ ण तसु महइ जो कुसुमहिं जिणणाहु।  
अह सखरि णइसारिणइ पाणिउ होइ अगाहु। (186)

जो पुष्पों से जिनदेव को पूजता है, उसका कभी भोग नहीं छुटता। सरोवर में नदी की नहर मिला देने से पानी अगाध हो जाता है।

### नैवेद्य पूजा फलः

णेवज्जइ दिण्णइ जिणहु जिय दालिददहु णासु।  
दुरिउ ण दुक्कइ तहु णरहु लच्छिहि होइ ण णासु॥ (187)

जिनदेव को नैवेद्य चढ़ाने से हे जीव, दरिद्र का नाश होता है, उस मनुष्य को पाप नहीं लगता और लक्ष्मी का विनाश नहीं होता है।

### दीप पूजा

### रोहिणी उपवास फलः--

दीवइ दिण्णइ जिणवरहं मोहहु होइ ण ठाउ।  
अह उववासहिं रोहिणिहिं सोउ विपलयहु जाइ। (188)

जिनवर! को दीप चढ़ाने से मोह को स्थान नहीं मिलता, और रोहिणी के उपवास से शोक भी प्रलय को पहुँच जाता है।

### धूप पूजा फलः

धूवउ खेवइ जिणवरहं तसु पसरइ सोहग्गु।  
इत्थु म कायउ भंति करि ते पडिबद्धउ सग्गु। (189)

जो जिनवर को धूप खेता है, उसका सौभाग्य फैलता है। इसमें कुछ भी भ्रांति मत कर कि उसने स्वर्ग बाँध लिया।

### फल पूजा का फलः--

देइ जिणिंदहं जो फलइं तसु इच्छियइं फलंति।  
भोयधरहं गय रुक्खडा सयल मणोरह दिंति। (190)

जो जिनेन्द्र! को फल चढ़ाता है, उसको यथेष्ट फल प्राप्त होता है। भोगभूमि के वृक्ष उसके सब मनोरथों को पूरा करते हैं।

### कुसुमांजलि फल--

जिणपयगयकुसुमंजलिहिं उत्तमसियसंजोउ  
सरगयरविकिरणावलिए णलिणिहिं लच्छिम होइ॥ (191)

जिनदेव के पद पर चढ़ायी कुसुमांजलि से उत्तम श्री का संयोग होता है। सरोवर में पड़ी रवि की किरणावलि से कमलों में लक्ष्मी आती है।

### जिन प्रतिमा स्थापित कराने का फल:--

जिणपडिमइं कारावियइं संसारहं उत्तारू  
गमणडियहं तरंडउ वि अह व ण पावइ पारू॥ (192)

जिन प्रतिमा स्थापित कराने से संसार से उतार होता है। गमन के लिए उद्यत पुरुष को तरंड (डोंगा) ही पार लगाता है।

### जिन मंदिर निर्माण फल:--

जिणभवणइं कारावियइं लब्भइं सग्गि विमाणु  
अह टिककइं आराहणहं होइ समाहिहि ठाणु॥ (193)

जिन मन्दिर बनवाने से स्वर्ग में विमान मिलता है। और आराधना की टीका कराने से समाधि में स्थिति होती है।

### जिन मंदिर की सफेदी कराने का फल:--

जो धवलावइ जिणभवणु तस जसु कहिं मि ण माइ  
ससिकरणियरू सरयमिलिउ जगु धवलणहं वसाइ॥ (194)

जो जिनमंदिर को धवल करवाता है, (सफेदी करवाता है) उसका यश कहीं नहीं जाता। शरत्काल से मिलकर चन्द्रकिरणों का समूह जगत भर को धवल बना देता है।

### जिन प्रतिष्ठा फल:--

जो पइठवइ जिणवरहं तसु पसरइ जगि कित्ति  
उवहिवेल छणससिगुणइं को वारइ पसरंति॥ (195)

जो जिनवर की प्रतिष्ठा करता है, उसकी जगत् में कीर्ति फैलती है। पूर्णचन्द्र के गुणों से प्रसार करती हुई उदधि की बेला (तरंग) को कौन रोक सकता है?

### आरती करने का फल:--

आरत्तिउ दिण्णउ जिणहं उज्जोयइ सम्मत्तु  
भुवणुब्भासइ सुरगिरिहिं सुरु पयाहि ण दित्तु॥ (196)

जिनदेव को दी हुई आरती, सम्यक्त्व का उद्योत करती है। सुरगिरि पर पदार्पण करते ही सूर्य भुवन को उद्भासित करता है।

### चंदेवा चढ़ाने की शोभा:--

चंदोवइं दिण्णइं जिणहं मणिमंडविय विसाला  
अह संबंधा ससहरहं गहतारायणमाला॥ (197)

जन भगवान् को चढ़ाये हुये मणि-मंडित और विशाल चंदेबा ऐसे-शोभायमान होते हैं। जैसे ग्रह और ताराग्रहों की माला चन्द्र से सम्बद्ध हुई हो।

### जिनगृह में घंटे की महिमा:--

भव्वुच्छाहणिं पावहरि जिणहरि घंट रसंति  
कुमुयाणंदणि तमहरणि छणजामिणि ण हु भंति। (199)

जिनगृह में बजता हुआ घंटा भव्यों का उत्साह और पापहारी होता है। पूर्णिमा की रात्रि कुमुदानन्ददायिनी और अन्धकारहारिणी होती है, इसमें भ्रांति नहीं।

### ध्वजा चमर छत्र चढ़ाने का फल:--

धिंधचमरछत्तइं जिणहं दिण्णइं लब्भइ रज्जु  
अह पारोहहिं णिगयहिं वडु वित्थरइ ण चोज्जु॥ (200)

जिन भगवान् को ध्वजा, चमर, छत्र चढ़ाने से राज्य मिलता है, प्ररोहों के निकलने से वट का विस्तार बढ़े तो क्या आश्चर्य है?

### मांडना लिखने का फल:--

जिणहरि लिहियइं मंडियइं लच्छि समीहिय होइ  
पुण्णु महंतउ तासु फलु कहिवि ण सक्कइ कोइ॥ (201)

जिनगृह में मांडना लिखने से यथेष्ट लक्ष्मी प्राप्त होती है और

महापुण्य होता है, जिसका फल कोई कह नहीं सकता।

**जम्बूद्वीपादि लिखाने का फल:--**

जंबूदीउ समोसरणु गंदीसर लोयाणि।

जिणवरभवणि लिहावियइं सयलहं दुक्खहं हाणि॥ (202)

जम्बूद्वीप, समोसरण, नन्दीश्वर व लोकों को जिनमंदिर में लिखवाने से सकल दुःखों की हानि होती है।

**अभिषेक में दोष नहीं:--**

सारंभइं ण्हवणाइयहं जे सावज्ज भणंति।

दंसणु तेहिं विणासियउ इत्थु ण कायउ भंति॥ (204)

जो अभिषेकादि के समारम्भों को सावध (दोषपूर्ण) कहते हैं उन्होंने दर्शन का नाश कर दिया, इसमें कोई भ्रांति नहीं।

**पुण्यराशि में पापबिन्दु:--**

पुण्णरासिण्हवणाइयइं पाउ लहु वि किउ तेणा।

विसकणियइं बहु उवहिजलु णउ दूसिज्जइ जेणा॥ (207)

अभिषेकादि की पुण्यराशि में यदि किसी ने लघु पाप भी कर लिया, तो विष के एक कण से समुद्र भर का जल दूषित नहीं हो सकता।

**भोगों की इच्छा से धर्म:--**

दाणच्चणविहि जो करइ इच्छिय भोयणिबंधु।

विककइ सुमणि वराडियइं सो जाणहु जाच्चंधु॥ (209)

जो भोगबंध की इच्छा से दानार्चन विधि करता है, वह जन्म का अंधा जानों, उत्तम मणि को कौड़ी मोल बेचता है।

**वांछनीय फल:--**

ते कम्मक्खउ मग्गि जिय णिम्मल बोहिसमाहि।

ण्हवणदानपूजाइयइं जे सासयपइ जाहि॥ (210)

इसलिए, हे जीव, अभिषेक, दान पूजादि से कर्मों के क्षय और निर्मल बोधि समाधि की माँग कर, जिससे शाश्वत पद पा जावें।

**जिन प्रतिमा की भावना का फल:--**

हियकमलिणि ससहरधवल सुद्ध फलिहंसकास।

भाइय पडिम जिणेसरहं तोडइ चउगइपास॥

हृदय में भाई हुई चन्द्रधवल, स्फटिक के समान शुद्ध जिनेश्वर की प्रतिमा चतुर्गति के पाश (बन्धन) को तोड़ती है।

**स्वभावानुसार फल:--**

जिणु गुणु देह अचेयणु वि वंदिउ णिंदिउ दोसु।

इउ णियभावहं तणउ फलु जिणह ण रोसु ण तोसु॥ (218)

अचेतन भी जिन (प्रतिमा) वन्दने से गुण और निन्दा करने से दोष देती है। यह अपने भावों का ही फल है। जिन भगवान् को न रोष है न तोष।

(सावय धम्मदोहा. आ. योगीन्द्रदेव)

**सुगंधदशमी कथा में वर्णित जिनार्चना**

**सुगंधदशमी-कथा**

(रचना काल-1150)

ले. उदयचन्द्र (मुनि उदयचंद) ज्ञानपीठ प्र. (8 फर.) 1944

पढमो सन्धी पृ. 95

भद्दवि सियपंचमि उवसिज्जइ पंचदिवसि कुसुजंलि दिज्जइ।  
णाणा फलहि फणस विज्जउरहि, फोफल कुंभडहिं णालियरहिं ॥  
कुसुमहि पंच पयार सुअंधहिं महमंहत-वरधुवहि दीवहिं ।  
पुणु दहमीहिं सुअंधउ किज्जइ, तदिदणि आहारु विणियमिज्जइ ॥  
अहवा पोसहु णउ सक्केज्जइ, एयभत्त तो णियमइं किज्जइ।  
रयणिहि जिण चउवीसण्ह विज्जइ, दहवारं दह पुज्जउ किज्जइ॥  
दहमुह-कलस करेवि थविज्जइ, पुणु दहंगु तहे धूउ दहिज्जइ।  
कंकुमाइ दहदव्वइं जुत्तउ, किज्जइ जिण समलहणु पवित्तउ।  
पुणुदहभत्तिहि अवखय जुत्तउ, लिहियइं मंडल अंसु विचित्तउ।  
तहिदहदीवय उवरिधरिज्जइ, दह फल मणहर अग्गइं दिज्जइ॥

दह पयार पेविज्जइं किज्जइं, दह वारइं जिणणाहु धुणिज्जइ।  
इह विहिए किज्जइ दह वरिसइं, दह पाणइं परिवड्ठिय-हरिसइ।।

धत्ता: इह विहाणु णिसुणित्ठिणिवइ पुणु णिसुणाहि उज्जुमणउ।  
(तैं तुह) आहासमि कमिण पयासमि होइ जेम जं करणउ। (11)

सुगन्ध दशमी व्रत का पालन इस प्रकार किया जाता है-भाद्रपद शुक्ल पंचमी के दिन उपवास करना चाहिए और उस दिन से प्रारंभकर पांच दिन अर्थात् भाद्रपद शुक्ल नवमी तक कुसुमांजली चढ़ाना चाहिए। कुसुमांजली में फनस (बीजपुर, फोफल, कुष्माण्डू, नारियल आदि नाना फलों तथा पंचरंगी और सुगंधी फूलों तथा महकते हुए उत्तम दीप, धूप आदि से खूब महोत्सव के साथ भगवान् का पूजन किया जाता है। इस प्रकार पांच दिन नवमी तक पुष्पांजली देकर फिर दशमी के दिन जिन मन्दिर में सुगन्धित द्रव्यों द्वारा सुगंध करना चाहिए और उस दिन आहार का भी नियम करना चाहिए। उस दिन या तो प्रोषध करे और यदि सर्व प्रकार के आहार का परित्याग रूप पूर्ण उपवास न किया जा सके तो एक बार मात्र भोजन का नियम तो अवश्य पालें। रात्री को चौबीस जिन भगवान् का अभिषेक करके 10 बार 10 पूजन करना चाहिए। एक दशमुख कलश की स्थापना करके उसमें दशांगी धूप खेना चाहिए। कुंकुम आदि दश द्रव्यों सहित जिन भगवान् की पवित्र पूजा स्तुति करना चाहिए। पुनः अक्षतों द्वारा दश भागों में नाना रंगों से विचित्र सूर्य मण्डल बनाना चाहिए। उस मण्डल के दश भागों में दश दीप स्थापित करके उनमें दश मनोहर फल और दश प्रकार के नैवेद्य चढ़ाते हुए दश बार जिन भगवान की स्तुति बंदना करना चाहिए। इस प्रकार की विधि हर्ष पूर्वक मन वचन काय से पांचो इंद्रियों की एकाग्रता सहित प्रतिवर्ष करते हुए दशवर्ष तक करना चाहिए।

मुनि महाराज कहते हैं- हे राजन्। सुगंध दशमी व्रत के विधान को तुमने सुनो। अब आगे इस व्रत की जो उद्यापन विधि है, उसमें जो कार्य

जिस प्रकार करना चाहिए, उसे यथाक्रम बतलाता हूँ।

दहवसिसइं पूरिहिं उज्जुमणउ, किज्जइ जिणवर-देवहं ण्हवणउ।  
पुणु मणहरु फुल्लहरउ किज्जइ, अंगणि चंदोवउ ताडिज्जइ।।

दह-धएहिं उब्भिज्जइ जिणहरु, तारइय हु लंबिज्जइं मणहरु।  
दिज्जइ घंट चमर जुअलुल्लउ, धूवडहणु आरत्तिउ भल्लऊ।।

दह पोत्थय वत्थइं धलिज्जइं, दह पुणु ओसह-दावइं दिज्जइं।  
दह साडय दिज्जइं बय धारिहिं, दह अच्छाणय तह बंभारिहि।।

पुणदह मुणिहि रसहिं छहि जुत्तइं, दिज्जइं आहारोवि पवित्तइं।  
दह कंचुल्ल खीर, घय जुतउ, दिज्जइं सावय-घरिसु पवित्तइं।।

एत्तिउं उज्जवणं पि णरेसर, कहिउ असेसु वि मइं तुह सिरिहर।  
अहवा एत्तिउ ज इवि ण पुज्जइ, तो णिय सत्तिए थोवउ दिज्जइ।।

थोवइं हीणु पुणु उप्पज्जइ, एउ ण चित्ति कयाविधरिज्जइ  
अहियहु तउ णिय-सत्तिए दिण्णउ, थोवइं अहिउ पुणु पडिवण्णउ।

सग्गहु पिंडु कहाणिय जारिसु, होइ अणंतु पुणु इह तारिसु।।

धत्ता: इयविहिय-विहाणइंसहु उज्जमणउ जो करेइ तिय पुरिसु लहु।  
सो कम्मइं खंडिवि भवदुहु छंडिवि पुणु पावइ सियपयडु सुहु।।

जब सुगन्ध दशमी व्रत का विधि पूर्वक पालन करते हुए 10 वर्ष पूर्ण हो जाये तब उस व्रत का उद्यापन करना चाहिए। मंदिरजी में जिन भगवान् का अभिषेक पूजन करना चाहिए। समस्त जिन मंदिर को पहले मनोहर पुष्पों से खूब सजाना चाहिए। आँगन में चंदोवा तानना चाहिए। मंदिर जी को घंटा चमरों की एक जोड़ी अच्छी धूपदानी और आरती चढ़ाना चाहिए। तारे भी लटकाना चाहिए। दस पुस्तकें और 10 वस्त्र भी चढ़ाना चाहिए। तथा दस व्यक्तियों को औषधि दान देना चाहिए। जो व्रतधारी ब्रह्मचारी आदि श्रावक हों उन्हें दस धर्मोपदेश और दस अच्छानक (दुपट्टा) का दान देना चाहिए। फिर दस मुनियों को षड्रस युक्त पवित्र आहार देना चाहिए। हे श्रीमान नरेश यह सुगन्ध दशमी व्रत

का विधान है जो मैंने तुम्हे समस्त रूप से बतला दिया। यदि इतना विधान करना व दान देना अपनी शक्ति से बाहर हो तो शक्ति के अनुसार थोड़ा ही दान करना चाहिए। दान थोड़ा देने से हीन पुण्य उत्पन्न होता है ऐसा विचार चित्त में कदापि न लाना चाहिए। बहुदान की अपेक्षा जो भी शक्ति अनुसार दिया जाता है उससे अधिक पुण्य उत्पन्न होता है, नाना स्वर्गों की प्राप्ति की जो नाना कहानियां कही जाती हैं उनके ही समान इस सुगन्ध दशमी व्रत के पालन से अत्यन्त पुण्य की भी प्राप्ति होती है।

ऊपर बतलाई हुई विधि विधानानुसार जो स्त्री-पुरुष सुगन्ध दशमी व्रत का पालन-उद्यापन करता है वह अपने कर्मों का खण्डन करके संसार के दुःखों को छोड़कर उत्तम स्वर्गादि पदों के सुख का अनुभव करता है।

### द्वितीय संधि - 1 पृ 17

दह मीहे वउ किज्जइ मणि अणुराए।  
कलिमलु अवहरइ पुव्वविकय मुच्चइ पावें॥  
इह कहिउ मुणिदइं जाम अत्थु, तिहिं दिणि तहिं हुइ दहमि तत्थु।  
किउ वउ ता सयलंते उरेण, किउ राएं सह परिवारएण॥  
किउ णयरिहिं लोयहिं सयलएहिं, किउ तेण दुगंधइं अवरएहिं।  
ता दिण्णउ चंदणु केण ताहे, केण वि कुसुमकखय दिणयाहे।  
केण वि तह अप्पिउ णहवणु अमलु केण वि चरु दीवउ धूउ-सहलु।  
तेण वि किउ गुरु अणुराएण, णहवणचवणु सहं उववासएण॥  
मुणिणाहहो आउसु मुणिउ ताहे, अज्जिय हे समप्पिय सुव्वयाहे।  
ता छट्ठोवासइं कजियाइं, एवकंत-राय-रस वज्जियाइं॥  
अवराइं मि बहु भेयाइं जाइं गुरुकाए किलेसइं कियइं ताइं।  
अवसाण यालि जिणु संभरेवि, मुअ चउविहु सण्णासणु करेवि।।  
उप्पण्णिय सुणि सेणिय-णरिदं, जहिं वयहं पहावइं अरि-मइंदा।

सुगंध दशमी व्रत का पालन, मन में अनुराग सहित करना चाहिए इससे कलिकाल के मल का अपहरण होता है और जीव पूर्व में किये पापों से मुक्त होता है। जिस दिन मुनिराज ने यह सुगंध दशमी व्रत के विधान का उपदेश दिया उसी दिन भाग्य से वहाँ दशमी का दिन था। अतः यह व्रत राजा ने और उनके समस्त अंतःपुर तथा परिवार के लोगों ने धारण किया। नगर निवासी सभी लोगों ने भी व्रत किया और सबके साथ उस दुर्गन्धा ने भी व्रत धारण किया। उस दिन बालिका को किसी ने चन्दन दे दिया और किसी ने फूल व अक्षत दे दिये, किसी ने निर्मल अभिषेक की सामग्री दे दी तथा किसी ने नैवेद्य, दीप, धूप फल प्रदान किया। इस सामग्री को पाकर दुर्गन्धा ने बड़ी भक्ति से उपवास धारण किया और भगवान् की अभिषेक-पूजा भी की। मुनि महाराज ने अपने अवधि ज्ञान से आयु अल्प (शेष) रही जान उसे सुव्रता नामक आर्यिका को सौंप दिया। दुर्गन्धा ने आर्यिका के पास रहते हुए षष्ठोपवास अर्थात् लगातार दो-दो दिन के उपवास किये तथा राग और रस से वर्जित आहार लिया और भी जो उपवासों के अनेक भेद हैं, काय क्लेश रूप व्रत है उन्हें दुर्गन्धा ने विधि पूर्वक पाला। आयु का अन्त आने पर उसने जिन भगवान् का स्मरण करते हुए खाद्य, स्वाद्य, लेय, पेय इन चारों प्रकार के आहार का संन्यास अर्थात् सर्वथा परित्याग करके मरण किया।

### वसुनन्दि-श्रावकाचार में वर्णित जिनार्चना

आ. वसुनन्दि विरचित

### विविध पूजायें

जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा के अवसर पर पूजा का वर्णन-  
एवं काऊण तओ खुहियसमुद्वोव्व गज्जमाणेहिं।  
वरभेरि-करड-काहल-जय-घंटा-संख-णिवहेहिं॥ (411)

गुलुगुलुगुलंत तविलेहि कंसतालेहि झमझमंतेहि।  
धुम्मंतं पडह-मद्दल-हुडुक्कमुक्खेहि विविहेहि॥ (412)

गिज्जंत संधिबधाइएहिं गेएहिं बहुपयारेहिं।  
वीणावंसेहिं तहा आणयसद्देहिं रम्मेहिं॥ (413)

बहुहाव-भाव-विब्भम-विलास-कर-चरण-तणुवियारेहिं।  
णच्चंत णवरसुब्भिण्ण-णाडएहिं विविहेहिं॥ (414)

थोव्वेहि मंगलेहि य उच्चाहसएहि महुरवयणस्स।  
धम्माणुरायरत्तस्स चाउव्वण्णस्स संघस्स॥ (415)

भत्तीए पिच्छमाणस्स तओ उच्चाइऊण जिणपडिमां।  
उस्सिय सियायवत्तं सियचामरधुव्वमाण सव्वंगं॥ (416)

आरोविऊण सीसे काऊण पयाहिणं जिणगेहस्स।  
विहिणा ठविज्ज पुव्वुत्तवेइयामज्झपीठम्मि॥ (417)

चिट्ठेज्ज जिणगुणारोवणं कुणंतो जिणिंदपडिबिंवे।  
इड्डविलग्गस्सुदए चंदणतिलयं तओ दिज्जा॥ (418)

सव्वावयवेसु पुणो मंतण्णासं कुणिज्ज पडिमाए।  
विविहच्चणं च कुज्जा कुसुमेहिं बहुप्पयारेहिं॥ (419)

दाऊण मुहपडं धवलवत्थजुयलेण मयणफलसहियं।  
अक्खय-चरु-दीवेहिं य धूवेहिं फलेहिं विविहेहिं॥ (420)

बलिवत्तिएहिं जावारएहि य सिद्धत्थपण्णरुस्खेहिं।  
पुव्वुत्तुवयरणेहि य रएज्ज पुज्जं सविहवेणा॥ (421)

इस प्रकार आकरशुद्धि करके पुनः क्षोभित हुये समुद्र के समान गर्जना करते हुये उत्तमोत्तम भेरी, करड़, काहल, जयजयकार शब्द, घंटा और शंखों के समूहों से गुल-गुल शब्द करते हुये तबलों से झमझम शब्द करते हुये, कंसतालों से घूम-घूम शब्द करते हुये, नाना प्रकार के ढोल, मृदंग, हुडुक्क आदि मुख्य-मुख्य बाजों से, सुर-आलाप करते हुये संधिबंधादिकों से अर्थात् सारंगी आदि से और नाना प्रकार के गीतों से सुरम्य वीणा, बाँसुरी से तथा सुन्दर आणक अर्थात् वाद्यविशेष के शब्दों से नाना प्रकार के हाव-भाव विभ्रम, विलास तथा हाथ-पैर और

शरीर से विकारों से अर्थात् विविध नृत्यों से नाचते हुये नौ रसों को प्रकट करने वाले नाना नाटकों से, स्तोत्रों से, मांगलिक शब्दों से तथा उत्साहशतों से अर्थात् परम उत्साह के साथ मधुरभाषी, धर्मानुराग-रत और भक्ति से उत्सव का देखने वाले चातुर्वर्ण संघ के सामने, जिसके ऊपर श्वेत आतपत्र (छत्र) तना है और श्वेत चामरों के ढोरने से व्याप्त है सर्व अंग जिसका, ऐसी जिन प्रतिमा को वह प्रतिष्ठाचार्य अपने मस्तक पर रखकर और जिनेन्द्रगृह की प्रदक्षिणा करके, पूर्वोक्त वेदिका के मध्यस्थित सिंहासन पर विधिपूर्वक प्रतिमा को स्थापित कर जिनेन्द्र प्रतिबिम्ब में अर्थात् जिन-प्रतिमा में जिन भगवान् के गुणों का आरोपण करता हुआ, पुनः इष्ट लगन के उदय में अर्थात् शुभ मुहूर्त में प्रतिमा के चन्दन का तिलक लगावें। पुनः प्रतिमा के सर्व आंगोपांगों में मंत्र न्यास करें और विविध प्रकार के पुष्पों से नाना पूजनों को करें। तत्पश्चात् मदनफल (मैनफल या मैनार) सहित धवल-वस्त्र-युगल से प्रतिमा के मुखपट देकर अर्थात् वस्त्र से मुख को आवृत कर, अक्षत, चरु, दीप से विविध धूप और फलों से, बलि-वर्तियों से अर्थात् पूजार्थ निर्मित अगरबत्तियों से जावारकों से सिद्धार्थ (सरसों) और पर्ण वृक्षों से तथा पूर्वोक्त उपकरणों से पूर्ण वैभव के साथ या अपनी शक्ति के अनुसार पूजा रचे।

### जल की तीन धाराएँ

गहिऊण सिसिरकर-किरण-णियर-धवलयर-रययभिंजारं।  
मोत्तिय-पवाल-मरगय-सुवण्ण-मणि खचिय वरकंठं॥ (425)

सयवत्त-कुसुम कुवलय-रजपिंजर-सुरहि-विमल-जलभरियं।  
जिणचरण-कमलपुरओ खिविज्जि ओ तिण्णि धाराओ॥ (426)

मोती, प्रवाल, मरकत, सुवर्ण और मणियों से खचित श्रेष्ठ कण्ठवाले, शतपत्र (रक्तकमल) कुसुम और कुवलय (नीलकमल) के पराग से पिंजरित एवं सुरभित विमल जल से भरे हुये शिशिरकर

(चन्द्रमा) की किरणों के समूह से भी अति धवल रजत (चांदी) के भृंगार (झारी) को लेकर जिन भगवान् के चरणकमलों के सामने तीन धाराएँ छोड़ना चाहिए।

### चंदन रस से पूजा

कप्पूर-कुंकुमायरु -तुरुक्कमीसेण चन्दनरसेण।  
वरवहलपरिमलामोयवासियासासमूहेण॥ (427)

वासाणुमग्गसंपत्तमुइयमत्तालिरावमुहलेण।  
सुरमउडधिडुचलणं भत्तीए समलहिज्ज जिणं॥ (428)

कपूर, कुंकुम, अगर, तगर से मिश्रित, सर्वश्रेष्ठ विपुल परिमल (सुगन्ध) के आमोद से आशासमूह अर्थात् दशों दिशाओं को आवासित करने वाले और सुगन्धित के मार्ग के अनुकरण से आये हुये प्रमुदित एवं मत्त भ्रमरों के शब्दों से मुखरित, चंदनरस के द्वारा (निरन्तर-नमस्कार किये जाने के कारण) सुरों के मुकुटों से जिनके चरण घिस गये हैं, ऐसे श्री जिनेन्द्र को भक्ति से विलेपन करें।

### तन्दुलसमूह से पूजा

ससिकंतखंडविमलेहिं विमलजलसित अइसुयंधेहिं।  
जिणपडिमपइडुयज्जियविसुद्धपुण्णंकुरेहिं वा॥ (429)

वर कलम-सालितंडुलचएहिं सुछंडिय दोहसयलेहिं।  
मणुय-सुरासुरमहियं पुज्जिज्ज जिणिंदपयजुयलं॥ (430)

चन्द्रकांतमणि के खंड समान निर्मल तथा विमल (स्वच्छ) जल से धोये हुये और अतिसुगन्धित, मानों जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा से उपार्जन किये गये, विशुद्ध पुण्य के अंकुर ही हो, ऐसे अखंड और लम्बे उत्तम कलमी और शलिधान्य से उत्पन्न तंदुलों से, मनुष्य सुर और असुरों के द्वारा पूजित श्री जिनेन्द्र के चरणयुगल को पूजें।

### पुष्प पूजा

मालइ-कयंब-कणयारि-चंपयासोय-बउल-तिलएहिं।  
मंदार-णायचंपय-पउमुप्पल-सिंदुवारेहिं॥ (431)

कणवीर-मल्लियाहिं कचणार-मचकुंद-किंकराएहिं।  
सूरवणज जुहिया-पारिजातय-जासवण-टगरेहिं॥ (432)

सोवणण रुप्पि मेहिय मुक्तादामेहिं बहुवियप्पेहिं।  
जिणपय-पंकयजुयलं पुज्जिज्ज सुरिंदसयमहियं॥ (433)

मालती, कदम्ब, कर्णकार (कनैर) चंपक, अशोक, बकुल, तिलक, मन्दार, नागचम्पक, पद्म (लालकमल) उत्पल (नीलकमल), सिंदुवार (वृक्षविशेष या निर्गुण्डी) कर्णवीर (कर्नेर) मल्लिका, कचनार, मचकुन्द, किंकरात (अशोक वृक्ष) देवों के नन्दन वन में उत्पन्न होने वाले कल्पवृक्ष, जुही, पारिजातक, जपाकुसुम और तगर (आदि उत्तम वृक्षों से उत्पन्न) पुष्पों से तथा सुवर्ण, चांदी से निर्मित फूलों से और नाना प्रकार के मुक्ताफलों की मालाओं के द्वारा, सौ जाति के इन्द्रों से पूजित जिनेन्द्र के पद-पंकज-युगल को पूजें।

### नाना पकवानों से पूजा

दहि-दुद्ध-सप्पिमिस्सेहिं कलमभत्तेहिं बहुप्पयारेहिं।  
तेवडि-विंजणेहिं य बहुविहपक्कणभेएहिं॥ (434)

रुप्पय-सुवण्ण-कंसाइथालिणिहिंएहिं विविहभक्खेहिं।  
पुज्जं वित्थारिज्जो भत्तीए जिणिंदपयपुरओ॥ (435)

चांदी, सोना और कांसे आदि की थालियों में रखे हुये दही, दूध और घी से मिले हुये, नाना प्रकार के चावलों के भात से, तिरेसठ प्रकार के व्यंजनों से तथा नाना प्रकार की जातिवाले पकवानों से और विविध भव्य पदार्थों से भक्ति के साथ जिनेन्द्र-चरणों के सामने पूजा को विस्तारे अर्थात् नैवेद्य से पूजा करें।

## दीपक से पूजा

दीवेहिं णियपहोहोमियक्क ते एहि धूमरहिएहिं।  
मंदं चलमंदाणिलवसेण णच्चंत अच्छीहिं॥ (436)

घणपडलकम्मणिवहव्व दूर मवसारियंघयारेहिं।  
जिनचरणकमलपुरओ कुणिज्ज रयणं सुभत्तीए॥ (437)

अपने प्रभासमूह से अमित (अगणित) सूर्यों के समान तेजवाले अथवा अपने प्रभापुंज से सूर्य के तेज को भी तिरस्कृत या निराकृत करने वाले धूमरहित, तथा धीरे-धीरे चलती हुई मन्द वायु के वश से नाचती हुई शिखाओं वाले और मेघपटल रूप कर्म-समूह के समान दूर भगाया है अंधकार को जिन्होंने, ऐसे दीपकों से परमभक्ति के साथ जिन चरण कमलों के आगे पूजन की रचना करें, अर्थात् दीप से पूजा करें।

## धूप पूजा

कालायरु - णह-चंदह-कप्पूर-सिल्हारसाइदव्वेहिं।  
णिप्पणं धूमक्कीहिं परिमलाय त्तियालीहिं॥ (438)

उगसिहादेसियसग-मोक्खमग्गेहि बहलधूमेहिं।  
धूविज्ज जिणिंदपयारविंदयुजलं सुरिंदणुयं॥ (439)

कालागुरु, अम्बर, चन्द्रक, कर्पूर, शिलारस, (शिलाजीत) आदि सुगन्धित द्रव्यों से बनी हुए जिसकी सुगन्ध से लुब्ध होकर भ्रमर आ रहे हैं तथा जिसकी ऊँची शिखा मानों स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग ही दिखा रही हैं और जिसमें से बहुत सा धुआँ निकल रहा है, ऐसी धूप की बत्तियों से देवेन्द्रों से पूजित श्री जिनेन्द्र के पादारविंद-युगल को धूपित करें। अर्थात् उक्त प्रकार की धूप से पूजन करें।

## फल पूजा

जंबीर-मोच-दाडिम-कवित्थ पणस-णालिएरेहिं।  
हिंताल-ताल-खज्जूर-णीबू-नारंग-चारेहिं॥ (440)

पूईफल-तिंदु-आमलय-जंबु-विल्लाइसुरहिमिड्डेहिं।  
जिणपयपुरओ रयणं फलेहि कुज्जा सुपक्केहिं॥ (441)

जंबीर (नीबू विशेष), मोच (केला) दाडिम (अनार) कवित्थ कवीट या कैथा पनस, नारियल, हिंताल, ताल, खजूर, नींबू, नारंगी, अचार (चिरोंजी) पूगीफल (सुपारी) तेन्दु, आँवला, जामुन, विल्वफल आदि अनेक प्रकार के सुगन्धित मिष्ठ और सुपक फलों से जिन-चरणों के आगे अर्चना करें अर्थात् पूजन करें।

## पूजन के लिए विविध द्रव्य प्रदान

अट्टविहमंगलाणि य बहुविहपूजोवयरणदव्वाणि।  
धूवदहणाइ तहा जिणपूयत्थं वितीरिज्जा॥ (442)

आठ प्रकार के मंगल-द्रव्य और अनेक प्रकार के पूजा के उपकरणद्रव्य तथा धूपदान (धूपायान) आदि जिन पूजन के लिए वितरण करें।

एवं चलपडिमाए ठवणा भणिया थिराए एमेया।  
णवरिविसेसो आगरसुद्धिं कुज्जा सुठाणम्मि॥ (443)

चित्तपडिलेवपडिमाए दप्पणं दाविऊण पडिबिंबे।  
तिलयं दाऊण तओ मुहवत्थं दिज्ज पडिमाए॥ (444)

आगरसुद्धिं च करेज्ज दप्पणे अह व अण्णपडिमाए।  
एत्तियमेत्तविसेसो सेसविही जाण पुव्वं वा॥ (445)

इस प्रकार चलप्रतिमा की स्थापना कही गई है, स्थिर या अचल प्रतिमा की स्थापना भी इस प्रकार की जाती है। केवल इतनी विशेषता है कि आकरशुद्धि स्वस्थान में ही करें। (भित्ति या विशाल-पाषाण और पर्वत आदि पर) चित्रित अर्थात् उकेरी गई, प्रतिलोपित अर्थात् रंग आदि से बनाई या छापी गई प्रतिमा का दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखाकर और मस्तक पर तिलक देकर तत्पश्चात् प्रतिमा के मुखवस्त्र देवों आकारशुद्धि दर्पण में करें, अथवा अन्य प्रतिमा में करें। इतना मात्र ही भेद है, अन्य नहीं। शेषविधि पूर्व के समान ही जानना चाहिए।

(वसुनन्दी श्रावकाचार - आ. वसुनन्दी)

## द्रव्य पूजा

द्वेण य दव्वस्स य जा पूजा जाण दव्वपूजा सा।  
द्वेण गंध सलिलाइपुव्वभणिण कायव्वा।। (448)

जलादि द्रव्य से प्रतिमादि द्रव्य की जो पूजा की जाती है, उसे द्रव्य पूजा जानना चाहिए। वह द्रव्य से अर्थात् जल, गंध आदि पूर्व में कहे गए पदार्थ समूह से (पूजन-सामग्री से) करना चाहिए।

## पूजा के भेद

तिविहा दव्वे पूजा सच्चित्ताचित्तमिस्सभेएणा।  
पच्चक्खजिणाईणं सचित्तपूजा जहाजोगं।। (449)  
तेसिं च सरीराणं दव्वदुस्स वि अचित्तपूजा सा।  
जा पुण दोण्हं कीरइ णायव्वा मिस्सपूजा सा।। (450)

द्रव्य-पूजा, सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से तीन प्रकार की हैं। प्रत्यक्ष उपस्थित जिनेन्द्र भगवान् और गुरुआदि का यथायोग्य पूजन करना सो सचित्तपूजा है। उनके अर्थात् जिन तीर्थकर आदि के शरीर की और द्रव्य श्रुत अर्थात् कागज आदि पर लिपिबद्ध शास्त्र की जो पूजा आदि की जाती है, वह अचित्त पूजा है और जो दोनों का पूजन किया जाता है वह मिश्र पूजा जानना चाहिए।

## भाव पूजा

कारुणाणंतचउड्डयाइगुणकित्तणं जिणाइणं।  
जं वंदणं तियालं कीरइ भावच्चणं तं खु।। (456)  
पंचणमोक्कारपएहिं अहवा जावं कुणिञ्ज सत्तीए।  
अहवा जिणिंदथोत्तं वियाण भावच्चणं तं पि।। (457)  
पिंडत्थं च पयत्थं रुवत्थं रुवविज्जयं अहवा।  
जं झाइज्जइ झाणं भावमहं तं विणिद्धिइं।। (458)

परम भक्ति के साथ जिनेन्द्र भगवान के अनन्तचतुष्टय आदि गुणों का कीर्तन करके जो त्रिकाल वन्दना की जाती है, उसे निश्चय से भाव-पूजा जानना चाहिए। अथवा पंच णमोकार पदों के द्वारा अपनी शक्ति के

अनुसार जाप करें अथवा जिनेन्द्र के स्तोत्र अर्थात् गुणगान करने को भावपूजन जानना चाहिए। अथवा पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत रूप जो चार प्रकार का ध्यान किया जाता है, उसे भी भाव पूजा कहा गया है।

## पूजा करने के लिए प्रेरणा एवं पूजा फल

एसा छव्विहपूजा णिच्चं धम्माणुरायरत्तेहिं।  
जहजोगं कायव्वा सव्वेहिं पि देसविरएहिं।। (478)

इस प्रकार यह छह प्रकार की पूजा धर्मानुरागरक्त सर्व देशव्रती श्रावकों को यथायोग्य नित्य ही करनी चाहिए।

एयारसंगधारी जीहसहस्सेण सुरवरिदो वि।  
पूजाफलं ण सक्कइ णिस्सेसं वणिणउं जम्हा।। (479)

तम्हा हं णियसत्तीए थोयवयणेण किं पि वोच्छामि।  
धम्माणुरायरत्तो भवियजणो होइ जं सव्वो।। (480)

जब कि ग्यारह अंग का धारक, देवों में सर्वश्रेष्ठ इन्द्र भी सहस्र जिहवाओं से पूजा के समस्त फलों का वर्णन करने के लिए समर्थ नहीं है, तब में अपनी शक्ति के अनुसार थोड़े से वचन द्वारा कुछ कहूँगा, जिससे कि सर्व भव्य जन धर्मानुराग में अनुरक्त हो जावें।

## जिन प्रतिमा स्थापना का फल

कुत्थुं भरिदलभेत्ते जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिमं।  
सरिसवनेत्तं पि लहेइ सो णरो तित्थयरपुण्णं।। (481)  
जो पुण जिणिंदभवणं समुण्णयं परिहि-तोरणसमगं।  
णिम्मावइ तस्स फलं को सक्कइ वणिणउं संयलं।। (482)

जो मनुष्य कुंथुमारी (धनिया) के दलमात्र अर्थात् पत्र बराबर जिन भवन बनवाकर उसमें सरसों के बराबर भी जिन प्रतिमा को स्थापन करता है, वह तीर्थकर पद पाने के योग्य पुण्य को प्राप्त करता है, तब जो कोई अति उन्नत और परिधि, तोरण आदि से संयुक्त जिनेन्द्र भवन

बनवाता है, उसका समस्त फल वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है?

### जलधारा का फल

जलधारणिकखेवेण पावमलसोहणं हवे नियमं।  
चन्दणलेवेण णरो जावइ सोहग्गसपण्णो॥ (483)

पूजन के समय नियम से जिन भगवान् के आगे जलधारा के छोड़ने से पाप रूपी मैल का संशोधन होता है। चन्दन रस के लेप से मनुष्य सौभाग्य से सम्पन्न होता है।

### अक्षत पूजा का फल

जायइ अक्खयणिहि-रयणसामिओ अक्खएहि अक्खोहो।  
अक्खीणलद्धिजुत्तो अक्खयसोक्खं च पावेइ॥ (484)

अक्षतों से पूजा करने वाला मनुष्य अक्षय नौ निधि और चौदह रत्नों का स्वामी चक्रवर्ती होता है, सदा अक्षोभ अर्थात् राग-शोक-रहित निर्भय रहता है, अक्षीण लब्धि से सम्पन्न होता है और अन्त में अक्षय मोक्ष सुख को पाता है।

### पुष्प पूजा का फल

कुसुमेहिं कुसेसयवयणु तरुणी जणणयण कुसुमवरमाला।  
वलएणघिय देहो जयइ कुसुमाउहो चेवा॥ (485)

पुष्पों से पूजा करने वाला मनुष्य कमल के समान सुन्दर मुखवाला, तरुणजनों के नयनों से और पुष्पों की उत्तम मालाओं के समूह से समर्चित देहवाला कामदेव होता है।

### नैवेद्य पूजा का फल

जायइ णिविज्जदाणेण सत्तिगो कंति तेय संपण्णो।  
लावण्णजलहिवेलातरंगसंपावियसरीरो॥

नैवेद्य के चढ़ाने से मनुष्य शक्तिवान, कान्ति और तेज से सम्पन्न और सौन्दर्यरूपी समुद्र की बेला (तट) वर्ती तरंगों से सप्लावित शरीर वाला अर्थात् अति सुन्दर होता है।

### दीप पूजा का फल

दीवेहिं दीवियासेसजीवदव्वाइतच्चासब्भावो।  
सब्भावजणियकेवलपईवतेएण होइ णरो॥ (487)

दीपों से पूजा करने वाला मनुष्य, सद्भावों के योग से उत्पन्न हुए केवल ज्ञान रूपी प्रदीप के तेज से समस्त जीवद्रव्यादि तत्वों के रहस्यों को प्रकाशित करने वाला अर्थात् केवल ज्ञानी होता है।

### धूप पूजा का फल

धूवेण सिसिरयर धवलकित्ति धवलियजयत्तओ पुरिसो।  
जायइ फलेहि संपत्तपरमणिव्वाणसोक्खफलो॥ (488)

धूप से पूजा करने वाला मनुष्य चन्द्रमा के समान धवल कीर्ति से जगत्त्रय को धवल करने वाला अर्थात् त्रैलोक्यव्यापी यशवाला होता है। फलों से पूजा करने वाला मनुष्य परम निर्वाण का सुखरूप फल पाने वाला होता है।

### घंटादान का फल

घंटाहि घंटसद्दाउलेसु पवरच्छराणमज्झम्मि।  
संकीडइ सुरसंघायसेविओ वरविमाणेसु ॥

जिन मंदिर में घण्टा समर्पण करने वाला पुरुष घंटाओं के शब्दों से आकुल अर्थात् व्याप्त श्रेष्ठ विमानों में सुर समुह से सेवित होकर प्रवर अप्सराओं के मध्य में क्रीड़ा करता है।

### छत्रदान का फल

छत्तेहिं एयजत्तं भुंजइ पुहवी सवत्तपरीहणो।  
चामरदाणेण तहा विज्जिज्जइ चमरणिवहेहिं ॥ (490)

छत्र प्रदान करने से मनुष्य, शत्रु रहित होकर पृथ्वी को एक छत्र भोगता है तथा चमरों के दान से चमरों के समूह द्वारा परिवीजित किया जाता है, अर्थात् उसके ऊपर चमर ढोरे जाते हैं।

## अभिषेक का फल

अहिसेयफलेण णरो अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरि ।  
खीरोयजलेण सुरिदप्पमुहदेवेहि भतीए ॥ (491)

## पताका दान का फल

विजयपडाएहि णरो संगाममुहेसु विजइओ होइ।  
छक्खंडविजयणाहो णिप्पडिवक्खो जससी य ॥ (492)

जिन मंदिर में विजय पताकाओं को देने से मनुष्य संग्राम के अन्दर विजयी होता है तथा षट्खण्डरूप भारतवर्ष का निष्प्रतिपक्षीस्वामी और यशस्वी होता है ।

किं जंपिएण बहुणा तीसु वि लोएसु किं पि जं सोक्खं ।  
पूजाफलेण सव्वं पाविज्जइ णत्थि संदेहो ॥ (493)

अधिक कहने से क्या लाभ है, तीनों ही लोकों में जो कुछ भी सुख है, वह सब पूजा के फल से प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

## भावसंग्रह में वर्णित जिनार्चना

आ०देवसेन - विरचित

पुण्णस्स कारणं फुडु पढमं ता हवइ देवपूजा य ।  
कायव्वा भत्तीए सावयवगेण परमाय ॥ (425)

अर्थ : पुण्य के कारणों में सबसे प्रथम भगवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा करना है, अतः सर्व श्रावकों को परमभक्ति से जिनेन्द्र की पूजा करना चाहिये ।

## पूजा की विधि

फासुय जलेण ण्हाइय णिवसियं वत्थाई गंपि तं ठाण ।  
इरियावहं च सोहिय उवविसयं पडिमआसेण ॥ (426)

अर्थ : पूजा करने वाले गृहस्थ को सबसे पहले प्रासुक जल से स्नान करना चाहिये, शुद्ध वस्त्र पहनना चाहिये फिर पूजा करने के स्थान पर जाना चाहिये तथा जाते समय ईर्यापथ शुद्धि से जाना चाहिये और वहाँ

जाकर पद्मासन से बैठना चाहिये ।

पूज्जा ऊवयरणाइ य पासे सण्णिहिय मंतपुव्वेणा  
ण्हाणेणं ण्हाइत्ता आचमणं कुणउ मंतेणा ॥ (427)

अर्थ : तदनंतर पूजा के समस्त उपकरण अपने पास रखना चाहिये फिर मंत्र स्नान करना चाहिये और फिर मंत्र पूर्वक आचमन करना चाहिये ।

आसणठाणं किच्चा सम्मत्तपुव्व तु झाइए अप्पा ।  
सिखि मंडल मज्झत्थं जालासयजलियणियदेहं ॥ (428)

अर्थ : अग्नि मंडल के मध्य में अपना आसन लगाकर बैठे और फिर सम्यक् रीति से परमात्मा का ध्यान करें । उस ध्यान में अग्नि मंडल से निकलती हुई सौ ज्वालाओं से अपना शरीर जल रहा है ऐसा चिंतवन करना चाहिये ।

पावेण सह संदेह ज्ञाणो डज्झंतयं खु चिंततो ।  
बंधउ संतीमुद्दा पंच परमेद्विठणामाय ॥ (429)

अर्थ : उस ध्यान में "मेरा शरीर मेरे पापों के साथ जल रहा है" ऐसा चिंतवन करना चाहिये और फिर पंच परमेष्ठियों की वाचक ऐसी शांति मुद्रा बनानी चाहिये ।

अमयक्खरे णिवेसउ पंचसु ठाणेसु सिरसि धरिऊण ।  
सा मुदधा पुणु चिंतउ धाराहिं सवदयं अमयं ॥ (430)

अर्थ : उस गुरु मुद्रा को मस्तक पर रखकर पाँचों स्थानों में अमृताक्षरों का निवेश करो । जिसकी धारा से अमृत झर रहा है इस प्रकार उस गुरु मुद्रा का फिर चिंतवन करो ।

पावेण सह सरीरं दड्ढ जं आसि ज्ञाण जलणेण ।  
तं जायं जं छारं पक्खलाउ तेण मंतेण ॥ (431)

अर्थ : उस ध्यान की ज्वाला से पापों के साथ शरीर जल गया था और उससे जो क्षार व राख उत्पन्न हुई थी उसको उसी मंत्र से धो डालो ।

पडिदिवसं जं पावं पुरिसो आसवइ तिविह जोएण ।  
तं गिद्दहइं गिरुत्तं तेण ज्झाणेण संजुत्तो ॥ (432)

यह पुरुष अपने मन, वचन, काय तीनों योगो से जो प्रतिदिन पाप कर्मों का आस्रव करता है उस आस्रव से आने वाले समस्त पाप कर्मों को वह पुरुष ऊपर लिखे अनुसार ध्यान धारण कर शीघ्र ही नाश कर देता है ।

जं सुद्धो तं अप्पा सकायरहिओ य कुणइ णहु किं पि ।  
तेण पुणो गियदेहं पुण्णाण्णवं चिंतए झाणी ॥ (433)

इस प्रकार जो अपना आत्मा अपने शरीर से रहित होकर अत्यंत शुद्ध हो चुका है वह कुछ भी कार्य नहीं कर सकता इसीलिए उस ध्यान करने वाले पुरुष को अपना शरीर एक पुण्य के समुद्र रूप चिंतवन करना चाहिये ।

उट्ठाविऊण देहं संपुण्ण कोडि चंद संकासं ।  
पच्छा सयली करणं कुणओ परमेड्डिमंतेण ॥ (434)

तदनंतर करोड़ों चन्द्रमाओं के समान निर्मल और दैदीप्यमान अपने शरीर का चिंतवन करता हुआ तथा शरीर को पूर्णरूप से चिंतवन करता हुआ उस ध्यान से उठ बैठना चाहिये और पंच परमेष्ठी वाचक मंत्रों से उस पुरुष को सकलीकरण करना चाहिये ।

अहवा खिप्पउ साहा गिस्सेउ करंगुलीहिं वामेहिं ।  
पाए णाही हियए मुहे य सीसे य ठविऊणं ॥ (435)

अथवा दशों दिशाओं में सरसों स्थापन करना चाहिये तथा बांये हाथ की अंगुलियों से करन्यास करना चाहिये अर्थात् पैरों में, नाभि में हृदय में, मुख में और मस्तक पर बाये हाथ की अंगुलियों को रखकर पांचों स्थानों में पंच परमेष्ठी की स्थापना करना चाहिये । यदि 'साहा' के स्थान में 'सेहा' पाठ है तो सरसों के स्थान में शेषाक्षत लेना चाहिये ।

अंगेणासं किच्चाइंदोहं कप्पिऊण गियकाए ।  
कंकण सेहर मुद्दो कुणओ जण्णोपवीयं च ॥ (436)

तदनंतर अंगन्यास करना चाहिये । फिर अपने शरीर में "मैं इन्द्र हूँ" ऐसी कल्पना करनी चाहिये और कंकण, मुकुट, मुद्रिका और यज्ञोपवीत पहनना चाहिये ।

पीढं मेरु कप्पिय तस्सोवरि ठाविऊण जिणपडिमा ।  
पच्चक्खं अरहंत चित्ते भावेउ भावेण ॥ (437)

तदनंतर स्थापना किये हुए सिंहासन में मेरु पर्वत की कल्पना करना चाहिए, उस सिंहासन पर भगवान् जिनेन्द्र देव की प्रतिमा विराजमान करना चाहिये और फिर अपने चित्त में अपने निर्मल भावों से ये साक्षात् भगवान् अरंहत देव हैं ऐसी भावना करनी चाहिए ।

#### पंचामृताभिषेक-कलश स्थापना

कलस चउक्कं ठाविय चउस वि कोणेषु णीरपरिपुण्णं ।  
घय दुद्ध दहिय भरियं णवं सयदलछण्णमुहकमलं ॥ (438)

तदनंतर चारों कोनों में जल से भरे हुए चार कलश रखना चाहिए तथा मध्य में पूर्ण कलश स्थापना करना चाहिए । इनके सिवाय घी, दूध, दही इनसे भरे कलश भी स्थापना करने चाहिए । इन सब कलशों के ऊपर नवीन सौ दल वाले कमल रखना चाहिए ।

#### दिक्पालों का वर्णन :

आवाहिऊण देवे सुरवइ सिहिकाल गेरिए वरुणे ।  
पवणे जखे ससूली सपियसवाहणे ससत्थे य ॥ (439)

तदनंतर इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत्य, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान, धरणेन्द्र और चन्द्र इन दश दिक्पालों की स्थापना कर अर्घ्य चढ़ाना चाहिये । इन दशों दिक्पालों को उनकी पत्नी वाहन और शस्त्रों सहित स्थापना करनी चाहिए ।

## दिक्पालों का सम्मान

वाङ्मण पुञ्जदव्य बलि चरुयं तह य जण्णभायं च ।  
सत्वेसिं मंते हि य वीयक्खर णाम जुत्तेहिं ॥ (440)

इन सब दिक्पालों को पूजा द्रव्य, बलि, नैवेद्य यज्ञभाग देना चाहिए।  
सबका बीजाक्षर सहित अलग-अलग नाम लेकर मंत्र पूर्वक आह्वानन  
स्थापन सन्निधीकरण कर यज्ञ भाग पूजा द्रव्य और नैवेद्य देना चाहिए।  
इनके स्थापना करने आदि के मन्त्र ये हैं।

ओं ह्रीं आं क्रौं प्रशस्त वर्ण सर्व लक्षण संपूर्ण स्वायुध वाहन युवती  
सचिन्ह सहित इन्द्र देव अत्र आगच्छ आगच्छ संवौषट्, अत्र तिष्ठ-तिष्ठ  
ठः ठः अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ओं आं क्रौं-ह्रीं इन्द्र देवाय इदं  
अर्घ्यं, पाद्यं, गन्धं, पुष्पं, दीपं, धूपं, चरुं, बलिं स्वस्तिकं, अक्षतं  
यज्ञभागं च यजामहे यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा ।

यह मन्त्र पढ़कर अलग-अलग देवों की स्थापना करनी चाहिए।  
इन्द्र को पूर्व दिशा में स्थापन कर बायीं ओर से आठों दिशाओं में आठ  
देव, अधो दिशा में धरणेन्द्र, उर्ध्व दिशा में चन्द्र को स्थापना करनी  
चाहिए। शेष विधि अभिषेक पाठ में से कर देनी चाहिए।

## पंचामृत अभिषेक

उच्चारण मंते अहिसेयं कुणउ देवदेवस्स ।  
गीर घय खीर दहियं खिवउ अणुक्कमेण जिणसीसे ॥ (441)

तदनंतर देवाधिदेव भगवान् अरहंत देव का अभिषेक करना चाहिए।  
वह अभिषेक अनुक्रम से जल, घी, दूध, दही आदि पदार्थों से मन्त्रों का  
उच्चारण करते हुए भगवान् के मस्तक पर से करना चाहिए।

## अभिषेक क्रम

पहवणं काऊण पुणो अमलं गंधोदयं च वंदिता ।  
सवलहणं च जिणिंदे कुणऊ कस्सीर मलएहिं ॥ (442)

इस प्रकार अभिषेक कर निर्मल गंधोदक की वन्दना करनी चाहिए और  
फिर काश्मीर केसर तथा चन्दन आदि से भगवान् का उद्वर्तन करना  
चाहिये। अभिषेक के अनन्तर चन्दन, केसर आदि द्रव्यों की धूप  
बनाकर उससे प्रतिमा का उबटन करना चाहिए। फिर चतुष्कोण  
कलशों से तथा पूर्ण कलश से अभिषेक करना चाहिए। यह विधि  
अत्यन्त संक्षेप में कही है। इसकी पूर्ण विधि अभिषेक पाठ से जान लेना  
चाहिए।

## जलधारा

पसमइ रयं असेसं जिणपसकमलेसु दिण्ण जलधारा ।  
भिंंगारणाल णिग्गइ भंमंतभिंगेहि कब्बुरिया ॥ (470)

सबसे पहले जल की धारा देकर भगवान् की पूजा करनी चाहिए। वह  
जल की धारा भृंगार (झारी) की नाल से निकलनी चाहिए तथा वह जल  
इतना सुगन्धित होना चाहिए कि उस पर भ्रमर आ जाए और जल धारा  
के चारों ओर घूमते हुए उन भ्रमरों से वह जल की धारा अनेक रंग की  
दिखाई देने लगे, ऐसी जल की धारा भगवान् के चरण कमलों पर पड़नी  
चाहिए। इस प्रकार जल की धारा से भगवान् की पूजा करने से समस्त  
पाप नष्ट हो जाते हैं अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म शान्त हो जाते  
हैं।

## चंदन पूजा

चंदण सुगअन्ध लेओ जिणवर चरणेसु जो कुणि भविओ ।  
लहइ तणूविकिरियं सहावसुयंधयं अमलं ॥

जो भव्य पुरुष भगवान् जिनेन्द्र देव के चरण कमलों पर जिन प्रतिमा  
के चरण कमलों पर सुगन्धित चन्दन का लेप करता है उसको स्वर्ग में  
जाकर अत्यन्त निर्मल और स्वभाव से ही सुगन्धित वैक्रियिक शरीर  
प्राप्त होता है अर्थात् चन्दन से पूजा करने वाला भव्य जीव स्वर्ग में  
जाकर उत्तम देव होता है।

### अक्षत पूजा

पुण्णाण पुञ्जे हि य अक्खए पुन्जेहि देवपयपुरओ ।  
लभंति णावणिहाणे सुअक्खए चक्कवत्तिं ॥ (472)

जो भव्य जीव, भगवान् जिनेन्द्र देव के सामने पूर्ण अक्षतों के पुंज चढ़ाता है, अक्षतों से भगवान् की पूजा करता है वह पुरुष चक्रवर्ती का पद पाकर अक्षय रूप नव निधियों को प्राप्त करता है। चक्रवर्ती को जो निधियां प्राप्त होती हैं उनमें से चाहे जितना सामान निकाला जाए निकलता ही जाता है कम नहीं होता।

### पुष्प पूजा

अलि चुंविएहिं पुञ्जइ जिणपयकमलं च जाइमलीहिं ।  
सो हवइ सुखरिंदो रमेइ सुरतरुवर वणेहिं ॥ (473)

जो भव्य पुरुष, भगवान् जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की, जिन पर भ्रमर घूम रहे हैं ऐसे चमेली, मोगरा आदि उत्तम पुष्पों से पूजा करता है वह स्वर्ग में जाकर अनेक देवों का इन्द्र होता है और वह वहाँ पर चिरकाल तक स्वर्ग में होने वाले कल्प वृक्षों के वनों में, बगीचों में क्रीडा किया करता है।

### नैवेद्य पूजा

दहिखीर सप्पि संभव उत्तम चरुरगहि पुञ्जए जो हु ।  
जिणवरपाय पओरुह सो पावइ उत्तमे भोए ॥ (474)

जो भव्य पुरुष दही, दूध, घी आदि बने हुए उत्तम नैवेद्य से भगवान् जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की पूजा करता है उसे उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति होती है।

### दीपक पूजा

कप्पूर तेल पयलिय मन्द मरुपहयणडिदीवेहिं ।  
पुज्जइ जिणं पय पोमं ससि सूरवि सम तणुलहई ॥ (475)

जो दीपक, कपूर, घी, तेल आदि से प्रज्वलित हो रहा है और मन्द-मन्द वायु से नाच - सा रहा है ऐसे दीपक से जो भव्य पुरुष भगवान् जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की पूजा करता है वह पुरुष सूर्य चन्द्रमा के समान तेजस्वी शरीर को धारण करता है।

### धूप पूजा

सिल्लारस अयरु मिस्सिय णिग्गइ धूवेहिं वहलधूमेहिं ।  
धूवइ जो जिण चरणेस लहई सुहवत्तणं तिजए ॥ (476)

जिससे बहुत भारी धुआँ निकल रहा है और जो शिलारस (शिलाजीत) अगुरु चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से बनी हुई है ऐसी धूप अग्नि में खेकर भगवान् जिनेन्द्र देव के चरण कमलों को धूपित करता है वह तीनों लोकों में उत्तम पद को प्राप्त करता है। धूप को अग्नि में खेना चाहिए और उससे निकला हुआ धुआँ दाये हाथ से भगवान् की ओर करना चाहिए।

### फूल पूजा

पक्केहिं रसइड समुज्जलेहिं जिणचरणपुरओ ।  
णाणा फलेहिं पावइ पुरिसो हिय इच्छियं सुफलं ॥ (477)

जो भव्य पुरुष अत्यन्त उज्ज्वल रस से भरपूर ऐसे अनेक प्रकार के पक्के फलों से भगवान् जिनेन्द्र देव के चरण कमलों के सामने समर्पण कर पूजा करता है वह अपने हृदय अनुकूल उत्तम फलों को प्राप्त होता है।

इर्ष अट्ठभेय अघण काळं पुण जवइ मूलविज्जा य ।  
जा जत्थ जहा उत्ता सयं च अट्ठोत्तरं जावा ॥ (478)

इस प्रकार अष्ट द्रव्यों से भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिए। तदन्तर मूल मन्त्र का जाप करना चाहिए। जिस पूजा में जो मूल मन्त्र बतलाया है उसी मन्त्र को एक सौ आठ बार अपना चाहिए।

आगे किस रूप में भगवान् का ध्यान करना चाहिए सो बतलाते हैं।

किञ्चा काउस्सगं देवं झाएह समवसरणत्थं।

लद्धट्ट पाडिहेरं णवकेवल लद्धि संपुण्णं ॥ (479)

तदनन्तर कायोत्सर्ग कर भगवान् जिनेन्द्र देव का ध्यान करना चाहिए। आगे किस रूप में ध्यान करना चाहिए सो बतलाते हैं। भगवान् समवसरण में विराजमान हैं आठों प्रातिहार्यों से सुशोभित है तथा नौ केवल लब्धियों से परिपूर्ण है। अशोक वृक्ष का होना, देवों के द्वारा पुष्प वृष्टि का होना, देवों के द्वारा बाजे बजना, सिंहासन, चमर, छत्र भामण्डल का होना दिव्य ध्वनि का होना ये आठ प्रातिहार्य कहलाते हैं। अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ये नौ लब्धियां कहलाती हैं।

आगे और भी बतलाते हैं।

णट्ठ चऊ घाड् कम्मं केवल णाणेण मुणिय तियलयं।

परमेट्ठी, अरिहंतं परमत्थं परम ज्ञाणत्थं ॥ (480)

जिनके चारों घातियाँ कर्म नष्ट हो गए हैं, जो अपने केवल ज्ञान से तीनों लोकों को प्रत्यक्ष जानते हैं, जो अरहंत पद में विराजमान हैं, परम परमेष्ठी हैं, परमात्मा हैं और परम वा सर्वोत्कृष्ट ध्यान में लीन हैं ऐसे अरहन्त भगवान् देव का ध्यान करना चाहिए।

ज्ञाणं ज्ञाऊण पुणो मज्झाणिय वंदणत्थ काऊण।

उवसंहरिय विसज्जे जे पुव्वावाहिया देवा॥ (481)

इस प्रकार अरहंत भगवान का ध्यान कर मध्यान्हिक वन्दना करनी चाहिए। तदनन्तर उपसंहार कर पहले आव्धान किये हुए देवों का विसर्जन करना चाहिए। आगे कहते हैं।

एण विहाणेण फुडं पुज्जा जो कुणइ भत्ति संजुत्तो।

सो उहइ णिय पावं बंधइ पुण्णं तिजय खोहं। (482)

इस प्रकार जो भव्य पुरुष भक्ति सहित ऊपर लिखित विधि के अनुसार भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा करता है वह अपने समस्त पापों का नाश कर देता है तथा तीनों लोकों को क्षोभ उत्पन्न करने वाले पुण्य का बंध करता है।

उप्पज्जइ दिवलोए भजंइ भोए मणिच्छिए इट्ठे।

बहुकालं चविय पुणो उत्तम मणुयत्तणं लहई। (483)

तदनन्तर आयु पूर्ण होने पर वह स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है, वहाँ पर अपने मन की इच्छानुसार अनेक प्रकार के इष्ट भोगों का अनुभव करता है तथा चिरकाल तक उन भोगों का अनुभव करता रहता है। आयु पूर्ण होने पर वहाँ से च्युत होता है और मनुष्य लोक में आकर उत्तम मनुष्य का शरीर प्राप्त करता है।

होऊण चक्कवट्ठी चउदह रयणेहि णव णिहाणेहिं।

पालिय छक्खंडधरा भुंजिय भोए णिरुगरिट्ठा॥ (484)

उत्तम मनुष्य शरीर को पाकर वह चक्रवर्ती पद प्राप्त करता है चौदह रत्न और नौ निधियों को प्राप्त करता है, छहों खंड पृथ्वी का पालन करता है और उत्तमोत्तम भोगों का अनुभव करता है।

संपत्त वोहि लाहो रज्जं परिहरिय भविय णिगंथो।

लहिऊण सयलसंजम धरिऊण महव्वया पंच। (485)

तदनन्तर वह संसार शरीर और भोगों से विरक्त होकर रत्नत्रय को धारण करता है, राज्य का त्याग कर दीक्षा लेकर निर्ग्रन्थ अवस्था धारण करता है संकल संयम को धारण करता है और पंच महाव्रतों को धारण करता है।

लहिऊण सुक्कज्ञाणं उप्याइय केवल वरं णाणं।

सिज्जेइ णट्ठकम्मो अहिसेयं लहिय मेरुम्मिं। (486)

पंच महाव्रत धारण कर वह शुक्ल ध्यान को धारण करता है चारों घातियाँ कर्मों को नाश कर मोक्ष प्राप्त करता है। यदि वह फिर स्वर्ग में

उत्पन्न हुआ तो वहाँ से आकर मेरु पर्वत पर अपना अभिषेक कराता है और फिर तपश्चरण कर केवल ज्ञान प्राप्त कर अनेक जीवों को मोक्षमार्ग में लगाकर मोक्ष प्राप्त करता है।

### पद्मपुराण में वर्णित जिनार्चना

आ० रविषेण विरंजित

#### रत्नपूजा का फल

अंहिसारत्नमादाय विपुलं यो जिनाधिपम्।  
भक्त्यार्चयत्यसौ नाके परमां वृद्धिमश्नुते । (149)

जो अत्यंत श्रेष्ठ अहिंसा रूपी रत्न को लेकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र देव की अर्चना करता है। वह स्वर्ग में परम वृद्धि को प्राप्त होता है।

#### माला पूजा का फल

सत्यव्रतधरः स्रग्भिर्यः करोति जिनार्चनम्।  
भवत्यादेयवाक्योऽसौ सत्कीर्तिव्याप्तविष्टपः । (150)

जो सत्य व्रत का धारी होकर मालाओं से भगवान की अर्चना करता है उसके वचनों को सब ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्ति से वह समस्त संसार को व्याप्त करता है।

#### पूजा फल

अदत्तादाननिर्मुक्तो जिनेन्द्रान् यो नमस्यति।  
जायते रत्नपूर्णानां निधीनां स विभुर्नरः । (151)

जो अदत्तादान अर्थात् चोरी से दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है वह रत्नों से परिपूर्ण निधियों का स्वामी होता है।

यो रतिं परनारीषु न करोति जिनाश्रितः।  
सोऽयं गच्छति सौभाग्यं सर्वनेत्रमलिम्लुचः । (152)

जिनानर्चति यो भक्त्या कृतावधिपरिग्रहः।  
लभतेऽसावतिस्फीतान् लाभान् लोकस्यपूजितः । (153)

जो जिनेन्द्र भगवान की सेवा करता हुआ परस्त्रियों में प्रेम नहीं

करता वह सबके नेत्रों को हरण करने वाला परम सौभाग्य को प्राप्त होता है। जो परिग्रह की सीमा नियत कर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान की अर्चना करता है वह अतिशय विस्तृत लाभों को प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं।

वदनं यो जिनेन्द्राणां त्रिकालं कुरुते नरः।  
तस्य भावविशुद्धस्य सर्वनश्यति दुष्कृतम् । (158)

जो मनुष्य तीनों कालों में जिनेन्द्र भगवान की वन्दना करता है उसके भाव शुद्ध सदा रहते हैं तथा उसका सब पाप नष्ट हो जाता है।

#### पुष्प पूजा का फल

सामोदैर्भूजलोद्भूतैः पुष्पैर्यो जिनमर्चति।  
विमान पुष्पकं प्राप्य स क्रीडति यथोप्सितम् । (159)

जो पृथ्वी तथा जल में उत्पन्न होने वाले सुगन्धित फूलों से जिनेन्द्र भगवान की अर्चा करता है वह पुष्पक विमान को पाकर इच्छानुसार क्रीडा करता है।

भावपुष्पैर्जिनं यस्तु पूजयत्यतिनिर्मलैः।  
लोकस्य पूजनीयोऽसौ जायतेऽत्यन्तसुन्दरः । (160)

जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलों से जिनेन्द्रदेव की पूजा करता है वह लोगों के द्वारा पूजनीय तथा अत्यंत सुन्दर होता है।

#### धूप पूजा का फल

धूपं यश्चन्दनाशुभ्रागुर्वादिप्रभवं सुधीः।  
जिनानां ढौकयत्येष जायते सुरभिः सुरः । (161)

जो बुद्धिमान चन्दन तथा कालागरू आदि से उत्पन्न धूप जिनेन्द्र भगवान के लिए चढाता है वह मनोज्ञ देव होता है।

## दीप पूजा का फल

यो जिनेन्द्रालये दीपं ददाति शुभभावतः ।  
स्वयंप्रभशरीरोऽसौ जायते सुरसद्मनि । (162)

जो जिनमंदिर में शुभभाव से दीपदान करता है वह स्वर्ग में दैदीप्यमान शरीर का धारक होता है।

## छत्रादि दान का फल

छत्रचामरलम्बूषपताकादर्पणादिभिः ।  
भूषयित्वा जिनस्थानं याति विस्मयिनीं श्रियम् । (163)

जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्नूस, पताका तथा दर्पण आदि के द्वारा जिनमंदिर को विभूषित करता है वह आश्चर्यजनक लक्ष्मी को प्राप्त होता है।

## गन्ध लेपन का फल

समालभ्य जिनान् गन्धैः सौरभ्यव्याप्तदिं मुखैः ।  
सुरभिः प्रमदानन्दो जायते दयितः पुमान् ।

जो मनुष्य अपनी सुगन्धित से दिशाओं को व्याप्त करने वाली गन्ध से जिनेन्द्र भगवान का लेपन करता है वह सुगन्ध से युक्त, स्त्रियों को आनन्द देने वाला प्रिय पुरुष होता है।

## जलाभिषेक का फल

अभिषेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा सुरभिवारिणा ।  
अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ।

जो मनुष्य सुगन्धित जल से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ अभिषेक को प्राप्त होता है।

## दूधाभिषेक का फल

अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय क्षीरधारया ।  
विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युतिः । (166)

जो दूध की धारा से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करता है वह दूध के समान धवल-विमान में उत्तम कान्ति का धारक होता है।

## दही अभिषेक का फल

दधिकुम्भेर्जिनेन्द्राणां यः करोत्यभिषेचनम् ।  
दध्याभकुट्टमे स्वर्गे जायते स सुरोत्तमः ।

जो दही के कलशों से जिनेन्द्र का अभिषेक करता है वह दही के समान फर्शवाले स्वर्ग में उत्तम देव होता है।

## घृताभिषेक का फल

सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योऽभिषे चनम् ।  
कान्तिद्युतिप्रभावाद्भयो विमानेशः स जायते ।

जो घी से जिनेन्द्र देव का अभिषेक करता है वह कान्ति, द्युति और प्रभाव से युक्त विमान का स्वामी देव होता है।

## पौराणिक अभिषेक का उदाहरण :

अभिषेकप्रभावेण श्रुयन्ते बहवो बुधाः ।  
पुराणेऽनन्तवीर्याद्या द्यूभूलब्धाभिषेचनाः ।

पुराण से सुना जाता है कि अभिषेक के प्रभाव से अनन्तवीर्य आदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्ग की भूमि में अभिषेक को प्राप्त हुए हैं।

## रंगावलि चढ़ाने का फल

भक्त्या वल्युपहारं यः कुरुते जिनसद्मनि ।  
संप्राप्नोति परं भूतिमारोग्यं स सुमानसः ॥ (170)

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिन मन्दिर में रंगावलि आदि का उपहार चढ़ाता है वह उत्तम हृदय का धारक होकर परम विभूति और आरोग्य को प्राप्त होता है।

## जिन मन्दिर में उत्सव करने का फल

गीतनर्तनवादित्रैर्यः करोति महोत्सवम् ।

जिनसद्मन्यसौ स्वर्गे लभते परमोत्सवम् ॥ (171)

जो जिन मन्दिर में गीत, नृत्य तथा वादित्रों से महोत्सव करता है वह स्वर्ग में परम उत्सव को प्राप्त होता है।

## जिन मन्दिरादि बनाने का फल

भवनं यस्तु जैनेन्द्रं निर्मापयति मानवः ।

तस्य भोगोत्सवः शक्यः केन वक्तु सुचेतसः ॥ (172)

जो मनुष्य जिन मन्दिर बनवाता है उस सुचेता के भोगोत्सव का वर्णन कौन कर सकता है?

प्रतिमां यो जिनेन्द्राणां कारयत्यचिरादसौ ।

सुरासुरोत्तम सुखं प्राप्य याति परं पदम् ॥ (173)

जो मनुष्य जिन मन्दिर, भगवान् की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरों के उत्तम सुख प्राप्त कर परम पद को प्राप्त होता है।

व्रतज्ञानपोदानैर्यान्युपात्तानि देहिनः ।

सर्वेस्त्रिण्णवपि कालेषु पुण्यानि भुवनत्रये ॥ (174)

एकस्मादपि जैनेन्द्र बिम्बाद् भावेन कारितात् ।

यत्पुण्यं जायते तस्य न संमान्यतिमात्रतः ॥ (175)

तीनों कालों और तीनों लोकों में व्रत, ज्ञान, तप और दान के द्वारा मनुष्य के जो पुण्य कर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमा के बनवाने से उत्पन्न हुए पुण्य की बराबरी नहीं कर सकते।

फलं यदेतदुद्दिष्टं स्वर्गे संप्राप्य जन्तवः ।

चक्रवर्त्यादितां लब्ध्वा यन्मर्त्यत्वेऽपि भुंजते ॥ (176)

इस कहे हुए फल को जीव स्वर्ग में प्राप्त कर जब मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदि का पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं।

धर्ममेवं विधानेन यः कश्चित्प्राप्य मानवः ।

संसारार्णवमुत्तीर्य त्रिलोकाग्रेसवतिष्ठते ॥ (177)

जो कोई मनुष्य इस विधि से धर्म का सेवन करता है वह संसार सागर से पार होकर तीन लोक के शिखर पर विराजमान होता है।

## जिन प्रतिमा के दर्शन का फल

फलं ध्यानाद्यतुर्थस्य षष्ठस्योद्यानमात्रतः ।

अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु ॥ (178)

द्वादशस्यु ततः किञ्चिन्मध्ये पक्षोपवासजम् ।

फलं मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात् ॥ (179)

चेत्यां-गणं समासाद्य याति षाण्मासिकं फलम् ।

फलं वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमश्नुते ॥ (180)

फलं प्रदक्षिणी कृत्य भुङ्क्ते वर्षशतस्य तु ।

दृष्ट्वा जिनास्यमाप्नोति फलं वर्षसहस्रजम् ॥ (181)

अनन्त फलमाप्नोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः ।

नहि भक्तेर्जिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥ (182)

कर्म भक्त्या जिनेन्द्राणां क्षयं भरत गच्छति ।

क्षीण कर्मा पदं याति यस्मिन्ननुपमं सुखम् ॥ (183)

जो मनुष्य जिनप्रतिमा के दर्शन का चिंतवन करता है वह "वेला का" जो उद्यम का अभिलाषी होता है वह "तेला का" जो जाने का आरम्भ करता है वह "चौलाका" जो जाने लगता है उसे "पाँच" उपवास का, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वह "बारह" उपवास का, जो बीच में पहुँच जाता वह "पन्द्रह" उपवास का, जो मन्दिर के दर्शनकरता है वह "मासोपवास" का, जो मन्दिर के आंगन में प्रवेश करता है वह "छह" मास के उपवास का, जो द्वार में प्रवेश करता है वह "वर्षोपवास" का, जो प्रदक्षिण देता है वह "सौ वर्ष" के उपवास का, जो जिनेन्द्र देव के मुख का दर्शन करता है वह "हजार" वर्ष के उपवास का और स्वभाव से स्तुति करता है वह "अनन्त" उपवास के

फल को प्राप्त करता है। यर्थाथ में जिनभक्ति से बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है ॥ आचार्य द्युति कहते हैं कि हे भरता जिनेन्द्र देव की भक्ति से कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो जाते हैं वह अनुपम सुख से सम्पन्न परम पद को प्राप्त होता है।

(पद्मपुराण भाग 2) (रविषेणाचार्य)  
बत्तीसवाँ पर्व

## रत्नकरण्ड श्रावकाचार में वर्णित जिनाचर्या

### आ० समन्तभद्र स्वामी

टीकाकार-पं० सदासुख दास जी

### जिनेन्द्र पूजन की प्रेरणा

देवाधिदेव चरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम् ।  
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥ (119)

देव जे इन्द्रादिक तिनका अधिदेव कहिये स्वामी जो अरहन्तेदेव-ताका चरणनि के समीप जो परिचरणं कहिये पूजन सो आदरते नित्य ही करें। कैसाक है पूजन ? समस्त दुःखनि का नाश करने वाला है, मनोवांछित कु परिपूर्ण करने वाला है, अर कामकल दग्ध करने वाला है।

गृहस्थ के नित्य ही जिनेन्द्र का पूजन समान सर्वोत्तम-कार्य अन्य नाही है। तातै प्रथम ही नित्य जिनेन्द्र का पूजन करना।

### इंहा ऐसा सम्बन्ध जानना

जो किंचिन्मात्र अशुभकर्म का क्षयोपशमतै मनुष्य तिर्यचनि का ज्यो सप्तधातुमय देह जिनके नाही तथा आहारादि के आधीन क्षुधा तृषादिक वेदना का वेदना नाही, स्वयमेव कंठ में तै अमृत झरे है, तिस करि क्षुधा तृषा वेदना करि जिनके बाधा नाही अर जरा आवै नाही, रोग आवै नाही, इत्यादिक कर्मकृत किंचित् बाधा के अभाव तै च्यारगति में देवनि को उत्तम कहै हैं। अर जिनके ज्ञानावरण, वीर्यान्तरायादिक कर्म का

अधिक क्षयोपशम होने तै अन्य देवनि में नाही पाइये, ऐसी ज्ञान, वीर्यादिक शक्ति की अधिकतातै देवनि के स्वामी इन्द्र भये। ये इन्द्र समस्त असंख्यात देवनिकरि वंदय है। अर जो समस्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय आत्मा की शक्ति के घातक समस्त कर्म का नाश करि जिनेन्द्र भये ते समस्त इन्द्रादिक करि बन्दनीक भए ते देवाधिदेव है।

देवाधिदेव का चरणनि का पूजन है सो समस्त दुःख का नाश करने वाला है, अर इन्द्रियनि के विषयनि की कामना का नाश कर मोक्ष होने रूप सुख की कामना को पूर्ण करने वाला है। तातै अन्य की आराधना छांडि जिनेन्द्र का आराधन करो। बहुत काल संसारी रागी, द्वेषी, मोही जीवनि कूं आराधन सेवन करियार कर्म का बंधकरि संसार में परिभ्रमण किया। वीतराग सर्वज्ञकूं आराधन करता तो कर्म के बंध का नाश करि स्वाधीन मोक्ष-रूप आत्माकूं प्राप्त होता है। तातै संसार के समस्त दुःख का नाश करने वाले जिनेन्द्र का पूजन ही करो।

### इहां कोऊ आशंका करे

भगवान् अरहन्त तो आयु पूर्ण करि लोक के अग्र भाग में मोक्ष स्थान में विराजे हैं, धातु पाषाण के स्थापना रूप प्रतिबिम्बनि में आवें नाही तथा अपना पूजन स्तवन चाहै नाही, अपना अनंतज्ञान, अनंतसुख मे लीन तिष्ठे हैं। अपना पूजन स्तवन तो अभिमान कषाय करि संतापित अपनी बड़ाई इच्छुक अपना स्तवनकरि संतुष्ट होया ऐसा संसारी रागद्वेष सहित होय सो चाहै। भगवान् परमेष्ठी वीतराग अनंतचतुष्टयरूप में लीन तिनके पूजा की चाह नाही, धातु पाषाण का प्रतिबिंब में आवै नाही, किसी का उपकार हूँ करै नाही, किसी का अपकार हूँ करै नाही, जो पूजन स्तवनादि करै तासूं प्रीति करै नाही, निन्दा करै तामें द्वेष करै नाही किस प्रयोजनके अर्थि पूजन स्तवन करियो?

## ताकूँ उत्तर कहे हैं

जो भगवान् वीतराग तो पूजन स्तवन चाहै नाहीं, परन्तु गृहस्थ का परिणाम शुद्ध आत्मस्वरूप की भावना में तो ठहरे नाहीं, साम्यभावरूप रहे नाहीं, निरालंबित चित्त ठहरे नाहीं, यदि परमात्मभावना का अवलम्बन करि वीतराग स्वरूप के ध्यान के अर्थि शुद्धात्मा के अवलंबन के निर्मित विषयकषाय आरम्भ का अवलंबन छांडि, साक्षात् परमात्मस्वरूप का धातु पाषाणमय प्रतिबिंबनि में संकल्प करि परमात्मा का ध्यान स्तवन पूजन करै है। तिस अवसर में विषय कषायादिक संकल्प के अभाव तैं दुर्ध्यान के छूटने तैं अपने परिणाम की विशुद्धता का प्रभावतैं, अशुभ कर्मनि का रस सुख जाय, अशुभकर्मनि की स्थिति घट जाय है, अनुभाग घटि जाय, सो ही पापकर्म का अभाव है अर परिणामनि को विशुद्धता का प्रभाव करि शुभ प्रकृति में रंस बधि जाय है, तिन शुभ आयु बिना समस्त कर्मानि की प्रकृति कि स्थिति घटि जाय है, याहि तैं वीतराग का स्तवन, पूजन, ध्यान के प्रभाव तैं पापकर्म का नाश होय है, सातिशय पुण्यकर्म का उपार्जन होय है।

## और हू निश्चय करो

पुण्य पाप का बन्ध का कारण तो अपना भाव ही है। बाह्य जैसा अवलंबन मिले तैसा अपना भाव होय है। यद्यपि भगवान् अरहन्त धातु पाषाण के प्रतिबिंबनि में आवे नाहीं, अर भगवान् वीतराग किसी का उपकार, अपकार करै नाहीं, तथापि वीतराग का ध्यान पूजन नाम अपने शुभ परिणाम करने कूँ रागद्वेष के नाश करने कूँ बाह्य कारण है। तातैं परम उपकार जीव का होय।

जैसा काष्ठपाषाण चित्राम के स्त्रीनि के रूप, राग का कारण है, तथा अचेतन सुवर्ण, मणि, माणिक्य रुपा, महल, वन, गाँव, नगर, ग्राम, पाषाण, कर्दम, श्मशानादि का देखना श्रवण करना रागद्वेष उपजावै है,

तथा शुभ-अशुभ, वचन राग रुदन, संगंध दुर्गन्ध, ये समस्त अचेतन पुद्गल द्रव्य हैं इनका श्रवण अवलोकन चिंतवन अनुभव करि रागद्वेष होय है। तैसैं जिनेन्द्र की परम शांत मुद्रा ज्ञानीनि के वीतरागता होने कूँ सहकारी कारण है, प्रेरक नाहीं। अर जीवनि के वीतरागतातैं अन्य कुछ चाहना नाहीं, अर जिनेन्द्राणि के चरणनि के पूजने मे जो जल, चन्दनानि अष्ट-द्रव्य चढाइये हैं सो कुछ भगवान् भक्षण करे वा पूजन बिना अपूज्य रहेंगे वा वासना लेवै है, ऐसा अभिप्राय तैं चढाना नाहीं है। भगवान् के दर्शन का अति आनन्द तैं जलचन्दनादिकरूप अर्घ उतारण करना है। जैसे राजानि को भेट करना नजर करना, आरती उतारना निछरावलि करनी, अक्षतपुष्पादिक क्षेपना, मोतीनि के थान वार (फेर) के उतारन करै है तथा सुवर्ण की मोहर रूपयों का थाल उतार करि लुटावे है, रत्ननि के थाल भर निछरावलि करि क्षेपै है, पुष्प अक्षतादिक उतारन करै है, ते राजानि की भक्ति जर आनन्द प्रकट करना है। राजानि कूँ दान नाहीं, राजानि के अर्थि नाहीं है। निछरावलि राजानि के निकट करि हुई अर्थीजन याचकजन ग्रहण करे है। तेसैं भगवान् अरहंतनि के अग्रभाव विषै अष्टद्रव्यानि का अर्घ चढावना जानना।

अब पूजन के योग्य नव देवता है। उक्त च:-

## पूज्य 9 देव

अरिहन्तसिद्धसाहु त्रिदयं जिणधम्मवयण पडिमाहू ।

जिणणिलया इदिराए णवदेवा दिंतु मे बोहि ॥

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर इस प्रकार से नव देव है। वे मोकूँ रत्नत्रय की पूर्णता देवो। सो जहाँ अरहन्तनि का प्रतिबिम्ब है तहाँ नवरूप गर्भित जानना, जातैं आचार्य, उपाध्याय, साधु तो अरहन्त की

पूर्व अवस्था है। अर सिद्ध हैं सो पूर्व अरहंत होय करके ही सिद्धभया है। अरहंतनि की वाणी सो जिनवचन है। अर वाणी करि प्रकाश किया अर्थ सो जिनधर्म है, अर अरहन्त का स्वरूप जहाँ तिष्ठे सो जिनालय है। ऐसे नव देवता रूप भगवान अरहन्त के प्रतिबिम्ब का पूजन नित्य ही करना योग्य है।

अरिहन्त के प्रतिबिम्ब अधोलोक में भवनवासी के चमर वैरौचनादिक इन्द्र अर असंख्यात भवनवासी देवनिकरि पूजिये हैं। अर मध्यलोक में चक्रवर्ती नारायण बलभद्रादिक अनेक धर्मात्मानि करि पूजिये हैं। अर व्यन्तर लोक में व्यन्तरेन्द्रादिक देवनि करि पूजिये हैं। अर ज्योतिर्लोक में चन्द्र-सूर्यादिक असंख्यात ज्योतिषी देवनि करि पूजिये हैं, स्वर्गलोक में सौधर्म इन्द्रादिक असंख्यात कल्पवासी देवनिकरि पूजिये हैं। ऐसे त्रैलोक्य के भव्यनि करि वंघ, पूज्य अरहंत का तदाकार प्रतिबिम्ब है सो सदाकाल - भव्यजीवनिकुं पूजना योग्य है।

### पूजन के 5 अंग

बहुरि व्यवहार में पूजन के पंच अंगनि की प्रवृत्ति देखिये है। (1) आह्वानन (2) स्थापना (3) संनिधिकरण (4) पूजन (5) विसर्जना सो भावनि के जोड़वा वास्तै आह्वाननादिकनि में पुण्य क्षेपण करिये हैं। पुष्पनिकू प्रतिमा नाही जानै है। ए जो आह्वाननादिकनिका संकल्पतैं पुष्पांजलि क्षेपण है। पूजन में पाठ रच्या होय तो स्थापना कर ले। नाही होय तो नाही करै। अनेकांतानि के सर्वथा पक्ष नाही। भगवान परमात्मा तो सिद्धलोक में है, एक प्रदेश भी स्थान तै चलै नाही परन्तु तदाकार प्रतिबिम्बसुं ध्यान जोड़ने के अर्थ साक्षात् अरहंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय, साधुरूप का प्रतिमा में निश्चय करि प्रतिबिंब में ध्यान पूजन स्तवन करना। बहुरि केतेक पक्षपाती कहै हैं :- जो भगवान का प्रतिबिम्ब बिना सभा के श्रावक लोकनि में हुजूरी विनय पद तथा स्तोत्र

पाठ मत पढो। भगवान परमेष्ठी का ध्यान स्तवन तो सदाकाल परमेष्ठीकू ध्यानगोचरि करि पढ़ना स्तवन करना योग्य है। जो प्रतिमा का सम्मुख बिना स्तुति का हुजूरी (विनय) पद पढ़ने को निषेध है, तिनके पंचनमस्कार पढ़ना स्तवन पढ़ना सामायिक वन्दना का पढ़ना, प्रतिमा का सम्मुख बिना नाही संभवेगा शास्त्र का व्याख्यान में नमस्कार के श्लोक पढ़ने का निषेध हो जायेगा। तातै अज्ञानी का कहने तैं अध्यात्म में कदाचित् पराङ्मुख होना योग्य नाही।

### जिन पूजन में प्रसिद्ध

भर्हघरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत् ।

भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमैनेकेन राजगृहे ॥

राजगृह नाम नगर के विषै जिनेन्द्र के पूजने का हर्षकरि मत कहिये, अपना सामर्थ्यकू नाही जानतो जो मीढको सो अरहन्त के चरणनि की पूजा का महाप्रभाव महान पुरुषं जे भव्यजीव तिनकू प्रकट करती हुओ दिखावती हुओ।

जिनेन्द्र के पूजन का आर्चित्य प्रभाव है

यातै गृहाचार में बड़ा शरण समस्त परिणाम की विशुद्धता करने वाला एक नित्य पूजन करना ही है। जिनपूजन निर्धन हूँ करि सके, धनाढ्य हू करि सके, जेता आपका सामर्थ्य हो तिस प्रमाण पूजन सामग्री बनि सके है। बहुरि पूजन करना, करावना, करते कू भला जानना सा समस्त पूजन ही है। अर स्तवन वन्दना हू पूजन एक द्रव्यतै हू पूजन जैसे अरहन्त के गुणीन में भक्ति की उज्ज्वलता होय तैसा फल है। बहुरि जिन मन्दिर में छत्र, चमर सहित सिंहासन कलश घन्टा इत्यादिक सुवर्णमय, रूपामय, पीतलमय, कांसी, ताम्रमय अनेक सुन्दर उपकरण निकरि जेता अपना सामर्थ्य होय तिस प्रमाण जिनमन्दिर को भूषित करि वैयावृत्त्य करै। बहुरि जीर्णमन्दिर की

मरम्मत उद्धार करना तथा धनाढ्य पुरुष है, तिनको जिनबिम्बनि का प्रतिष्ठा करावना नवीन मंदिर करावना, कलश चढ़ावना ये समस्त अरहन्त की वैयावृत्य है।

### जिन मन्दिर की सम्हाल

बहुरि जिनमन्दिरनि की टहल करना कोमल पीछीसूं यत्नाचारतै भुवारना, अभिषेक पूजनादि के अर्थि जल ल्यावना, सामग्री धोय तैयार करना, पूजन प्रक्षाल के बासन उपकरण मांजना, बिछायत बिछावना, गाननृत्य वादित्रादिकनिकरि अरहन्त के गुणगावना सो समस्त अर्हद्वैयावृत्ति है। मन से, वचन से, काय से, ध्यान से, विद्या से, कला से जैसे अरहन्त के गुणनि में अनुराग बर्धै तैसे करना। धन पावने का, देह पावने का, इन्द्रियाँ पावने का, बल पावने का, ज्ञान पावने का, संकल्पना जिन मन्दिर की टहल वैयावृत्ति करके ही है। जिन मंदिर की वैयावृत्ति सम्यक्त्व की प्राप्ति करे है, तथा सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति करै है, मिथ्याज्ञान, मिथ्या श्रद्धान का अभाव करै, स्वाध्याय, संयम, तप, व्रत शीलादिगुण जिन मन्दिर का सेवनतै ही होया। नरकतिर्यचादिगतिनि में परिभ्रमण का अभाव होया जिन मन्दिर समान काउ उपकार करने वाला जगत में दूजा नाही।

जिन मन्दिर का निमित्तितै शास्त्र-श्रवण पठनकरि अनेक श्रोतानिका का उपकार होय, वक्ता का उपकार होय है। जिनमंदिर के निमित्तितै केई जीव कार्योत्सर्ग करै हैं, कोई जाप जपै हैं, कोई रात्रि में जागरण करै हैं, कोई अनेक प्रकार पूजन करि प्रभावना करै हैं। केई स्तवन करै है केई तत्त्वार्थनि की चर्चा करे हे, केई प्रोषधोपवास तथा बेला, तेला पंच उपवासादिकरि बड़ी निर्जरा करै है। केई भजन, केई नृत्य, केई गानकरि पुण्योपार्जन केई स्वाध्याय करै है केई धर्म ध्यान करै है। केई वीतराग भावना करै है केई नाना प्रकार उपकरणि कर प्रभावना करे हैं।

जिन मंदिर के निमित्ते पाप, पुण्य, देव, कुदेव, धर्म, अधर्म, गुरु, कुगुरु का जानना होय :-

भक्ष्य, अभक्ष्य कार्य-अकार्य त्यागने योग्य ग्रहण करने योग्य का ज्ञान हूँ जिनमन्दिर में प्रवृत्ति करि ही होव है। त्याग, व्रत, शील, संयम भावना का स्वरूप जानना, तथा आचरण करना समस्त जिनमंदिर के प्रभावतै होय हे। जिनमंदिर बराबर कोउ उपकारी नाही है। जिनमन्दिर अशरणनिकूं शरण है। ऐसे परोपकार करने वाला जिनमंदिर कूं जानि याका वैयावृत्त करो। ऐसे वैयावृत्त मे जिनपूजा का वैयावृत्त कह्या।

### पूजा के भेद और विधि

अब पूजा दोय प्रकार है:- एक द्रव्यपूजा दूसरी भाव पूजा।

तहाँ जो अरहंत प्रतिबिंब का वचनद्वारै स्तवन करना, नमस्कार करना, तीन प्रदक्षिणन देना, अंजुलि मस्तक चढ़ावना, जल, चंदना-दिक अष्ट द्रव्य चढ़ावना सो द्रव्यपूजा है। और अरहंत के गुणनि में एकाग्रचित्त होय अन्य समस्त विकल्पजाल छांडि गुणनि में अनुरागी होना तथा अरहंत प्रतिबिंब का ध्यान करना सो भाव पूजा है। अथवा अरहंत प्रतिबिंब का पूजन के अर्थि शुद्ध भूमि में प्रमाणिक जलते स्नान करि उज्ज्वल वस्त्र पंहरिहाविनयसंयुक्त अंजुलि जोड़ि भक्ति सहित उज्ज्वल निर्दोष जलकरि अरहंत के प्रतिबिंब का अभिषेक करना सो पूजन है।

### अभिषेक :

यद्यपि भगवान के अभिषेक का प्रयोजन नाही यथापि पूजक के ऐसे भक्ति रूप उत्साह का भाव है - जो अरहंतकूं साक्षात् स्पर्श ही करूं हूँ अभिषेक हो करूं हूँ। ऐसी भक्ति की महिमा है।

## जल पूजन :

बहुरि उत्तम जलकूं झारी में धारण करि अरहंत प्रतिबिंब का अग्रभागविषै ऐसा ध्यान करे : जो हे जन्म, जरा, मरणकूं जीतने वाले जिनेन्द्र। जन्मजरा मरण के नाश के अर्थि जल की तीन धार आपका चरणारविन्द की अग्रभूमिविषै अर्पण करूं हूँ। हे जिनेन्द्र। हे जन्मजरामरण रहित आपका चरणों का शरण ही जन्मजरामरणरहित होने कूं कारण है।

चन्दन पूजा: बहुरि हे संसारपरिभ्रमण का आतापरहिता में अपने संसार परिभ्रमण रूप आतप नष्ट करने कूं कर्पूरादिकद्रव्य कूं आपका चरणनि का अग्रभाव विषै चढ़नऊँ हूँ।

## अक्षत पूजा

हे अविनाशी पद के धारक जिनेन्द्र। मैं हूँ अक्षय-पद की प्राप्ति के अर्थि अक्षतनिकूं आपका अग्रस्थान में क्षेपण करूं हूँ।

## पुष्प पूजा

हे कामबाण के विध्वंसक जिनेन्द्र। मैं हूँ काम का विध्वंसके अर्थि पुष्पनिकूं आपका अग्रस्थान विषै स्थापन करूं हूँ।

## नेवेद्य पूजा

हे क्षुधारोगरहित जिनेन्द्र। मैं हूँ क्षुधारोग का नाश के अर्थि नेवेद्य कूं आपका अग्रस्थान विषै स्थापन करूं हूँ।

## दीपक पूजा

हे मोहअंधकाररहित जिनेन्द्र। मैं हूँ मोह अंधकार दूर करने कूं आपका अग्रस्थान विषै दीपक करूं हूँ।

## धूप पूजा

हे अष्टकर्म के दाहक जिनेन्द्र। मैं हूँ अष्टकर्म के नाश के अर्थि आपका अग्रस्थान विषै धूप स्थापना करूं हूँ।

## फल पूजा

हे मोक्षस्वरूप जिनेन्द्र। मैं हूँ मोक्षरूप फल के अर्थि आपका अग्रस्थान विषै फलनिकूं स्थापना करूं हूँ।

ऐसै अपने देश काल की योग्यता प्रमाण एकद्रव्यते हूँ पूजन, दोग्यते तथा तीन, च्यार, पांच, छह, सात अष्ट, द्रव्यनिते हूँ पूजन करि भावनिंकू परमेष्ठी के ध्यान में युक्त करें है, स्तवन पढै हैं। ते महापुण्य उपार्जन करै हैं, पाप कीनिर्जरा करें हैं।

## इंहा ऐसा विशेष और जानना

जो जिनेन्द्र के पूजक समस्त च्यार प्रकार के देव हैं तैं तां कल्पवृक्ष-नितै उपजेगन्ध, पुष्प, फलादि सामग्री करि पूजन करै हैं, अर सौधर्म इन्द्रादिक सम्यग्दृष्टि देव हैं ते तो जिनेन्द्र की भक्ति पूजन, स्तवन, करके ही अपनी देवपर्याय कूं सफल माने है। अर मनुष्यानि में चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्रादिक राजेन्द्र हैं। ते मोतिनिके अक्षत, रतिन के पुष्प फल दीपकादिक तथा अमृत पिंडादिकरि जिनेन्द्र का पूजन, स्तवन, नृत्य, गानादिक करि महापुण्य उपार्जन करे हैं। अर अन्य मनुष्यानि में हूँ जिनके पुण्य के उदयतैं सम्यक् उपदेश के ग्रहणतैं जिनेन्द्र के आराधना में भक्ति उत्पन्न होय ते समस्त जाति के कुल के धारक यथायोग्य पूजन करे हैं।

समस्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपना सामर्थ्य अपना-अपना ज्ञान, कुल, बुद्धि, सम्पदा, संगति, देशकाल के योग्य अनेक स्त्री-पुरुष, नपुंसक, धनाढ्य, निर्धन, सरोग. जिनेन्द्र की आराधना करें हैं। केई ग्राम निवासी हैं, केई नगर निवासी हैं, केई वननिवासी हैं केई अति छोटे ग्राम में बसने वाले हैं। तिनमें कोई तो अति उज्जवल अष्ट प्रकार सामग्री बनाय पूजन के पाठ पढ़िकरि पूजन करै हैं, कोई कोरा सूखा जव, गेहूँ, चना, मक्का, बाजरा, मोठ इत्यादिक धान्यकी मूठी ल्याय

जिनेन्द्र को चढ़ावे हैं कोई रोटी चढ़ावे हैं, केई रावडी चढ़ावै हैं, केई अपनी बाड़ी तै पुष्पल्याय चढ़ावे हैं, केई नाना प्रकार के हरित फल चढ़ावै हैं केई जल चढ़ावै हैं केई दाल भात अनेक व्यंजन चढ़ावै हैं केई नाना प्रकार के मेवा चढ़ावै हैं केई मोतीनिके अक्षत, मणिकनिके दीपक, सुवर्ण, रूपाणिके तथा पंच प्रकार रत्ननि करि जड़े पुष्प फलादि चढ़ावै हैं केई दुग्ध, केई दही केई घृत चढ़ावै हैं, केई नाना प्रकार के घेवर, लाडू, पेडा, बरफी, पूडी, पूवा इत्यादि चढ़ावै हैं केई वंदना मात्र ही करै हैं केई स्तवन, केई गीत, नृत्य वादित्र ही करै हैं केई अस्पृश्य शुद्रादिक मन्दिर के बाह्य ही रहि मन्दिर के शिखर की तथा शिखरनि में जिनेन्द्र के प्रतिबिम्ब का ही दर्शन वंदना करै हैं।

ऐसै जैसा ज्ञान, जैसी संगति, जैसी सामर्थ्य, जैसी धन सम्पदा, जैसी शक्ति तिस प्रमाण देशकाल के योग्य जिनेन्द्र का आराधक मनुष्य है ते वीतराग का दर्शन, स्तवन, पूजन, वन्दनाकरि, भवनिके अनुकूल उत्तम, मध्यम, जघन्य पुण्यका उपार्जन करै हैं। यो जिनेन्द्र का धर्म जाति कुलके अधीन नाहीं धनसम्पदा के अधीन नाहीं, बाह्यक्रिया के अधीन नाहीं है। अपने परिणामनि की विशुद्धता के अनुकूल फलै हैं। कोउ धानाढ्यपुरुष अभिमानी होय यशका इच्छुक होय मोतिनके अक्षत, मणिकीन के दीपक, रत्न, सुवर्णके पुष्पनिकरि पूजन करै हैं, अनेक वादित्र नृत्यगान करि बड़ी प्रभावना करै हैं, तो हू अल्प पुण्य उपार्जन करै, वा अल्प हू नाहीं करै, केवल कर्म का बन्ध ही करै है, कषायनिके अनुकूल बन्ध होय है, अर केई अपने भावनिकी विशुद्धतातै अति भक्ति रूप हुआ कोऊ एक जल फलादिक करि वा अन्नमात्र करि, वा स्तवनमात्र करि, महापुण्य उपार्जन करै हैं तथा अनेक भवनि के संचय किये पापकर्म की निर्जरा करै हैं। धनकरि पुण्य मोल नाहीं आवे है। जे निर्वाँछक है मन्दकषायी, ख्याति लाभ पूजादिककू नाहीं वाँछा

करता केवल परमेष्ठीका गुणों में अनुरागी हैं। तिनके जिनपूजन अतिशयरूप फलकू फलै हैं।

अब यहां जिनपूजन सचित्त द्रव्यनिते हूँ अर अचित्तद्रव्यनिते हूँ आगममें कहया है। जे सचित्त के दोषते भयभीत है यत्नाचारी है ते तो प्रासुक जल, गन्ध, अक्षतकू, चन्दन, कुकुमादिकतै लिप्त करि सुगन्ध रंगनि में पुष्पनिका संकल्पकरि पुष्पनितै पूजै हैं तथा आगम में कहे सुवर्ण के पुष्प रूपा के पुष्प तथा रत्न जटित सुवर्ण के पुष्प तथा लंवगादिक अनेक मनोहर पुष्पनिकरि पूजन करै हैं, अरु प्रासुक ही बहु आरम्भादिकरहित प्रमाणीक नैवेद्यकरि पूजन करै हैं। बहुरि रत्नके दीपक वा सुवर्ण रूपामय दीपकनि करि पूजन करै हैं तथा सचिक्कणद्रव्यनि के केसर के रंगादिते दीपका संकल्पकरि पूजन करै हैं, तथा चन्दन, अगरादिककू चढ़ावै हैं तथा बादाम, जायफल, पूंगीफलादिक अवधिशुद्ध प्रासुक फलनितै पूजन करै हैं। ऐसे तो अचित्त द्रव्यनिकरि पूजन करै हैं।

बहुरि जे सचित्त, द्रव्यनितै पूजन करै हैं ते जल, गन्ध, अक्षतादि उज्ज्वल द्रव्यनिकरि आरती उतारै हैं। अर सचित्त आम्रकेला दाड़िमादिक फलकरि पूजन करै हैं, धूपायनि में धूपदहन करै हैं, ऐसे सचित्त द्रव्यनिकरि हूँ पूजन करिये हैं। दोऊ प्रकार आगम की आज्ञा प्रमाण सनातनमार्ग है। अपने भावनिके अधीन पुण्यबन्ध के कारण है।

रत्नकरण्ड श्राश्वकाचार-पृष्ठ 208 से 2 ॥

सम्पादक:- मन्लाल जैन एम. काम. (सागर)

प्रस्तावना - डा. हुकमचन्द भारिल्ल एम.ए.पी.एच.डी. (जयपुर)

प्रकाशक :- श्री मध्यप्रदेश मुमुक्षु मण्डल संघ, सागर (म.प्र.)

## उमास्वामी श्रावकाचार मे वर्णित जिनार्चना

आ० उमास्वामी विरचित

### पूजक का मुख एवं उसका फल -

तथार्चकः पूर्वदिशि चोत्तरस्यां न सम्मुखः ॥  
दक्षिणस्यां दिशायां च विदिशायां च वर्जयेत् ॥ (117)

जिन प्रतिमा का मुख पूर्व दिशा की ओर हो तो पूजा करने वाले को उत्तरदिशा की ओर मुँह करके पूजा करनी चाहिए। यदि प्रतिमा का मुख उत्तरदिशा की ओर हो तो पूजा करने वाले को पूर्व दिशा की ओर मुँह करके पूजा करनी चाहिए। जिन प्रतिमा के सामने खड़े होकर पूजन कभी नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण दिशा की ओर वा विदिशा की ओर मुँह करके कभी पूजन नहीं करना चाहिए।

पश्चिमाभिमुखः कुर्यात् पूजां चेच्छ्रीजिनेशानाम् ।  
तदास्यात्संततिच्छेदो दक्षिणस्यामसन्ततिः ॥ (116)

यदि भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा पश्चिम मुख होकर की जाती है तो उससे सन्तति का नाश होता है। यदि दक्षिण दिशा की ओर मुख कर की जाती है तो सन्तति का अभाव हो जाता है।

आग्नेयां चा कृता पूजा धनहानिर्दिनेदिने ।  
वायव्यां संतति नैव नैऋत्यां तु कुलक्षयः ॥ (118)

आग्नेय दिशा की ओर मुखकर पूजा करने से प्रतिदिन धन की हानि होती है, वायव्य दिशा की ओर मुखकर पूजा करने से सन्तति नहीं होती और नैऋत दिशा की ओर मुखकर पूजा करने से कुल क्षय होता है।

ईशान्यां नैव कर्तव्या पूजा सौभाग्य हारिणी ।  
पूर्वस्यां शान्तिकत्रीस्यादुत्तरस्यां धनाप्तये ॥ (119)

ईशान मुख होकर पूजा करने से सौभाग्य नष्ट होता है, पूर्व मुख होकर पूजा करने से शांति प्राप्त होती है उत्तरमुख होकर पूजा करने से धन की वृद्धि होती है।

### पूजक का तिलकः

तिलकैस्तु विना पूजान् कार्या गृहमेधिभिः ।  
अंघ्रि जानु करांशेषु मूर्ध्नि पूजा यथाक्रमम् ॥ (120)  
भाले कण्ठे हृदम्भोजे उदरे चिन्ह कारणैः ।  
नवभिस्तिलकैः पूजा करणीया निरन्तरम् ॥ (121)

पूजा करने वाले गृहस्थ को बिना तिलक लगाये पूजा कभी नहीं करना चाहिए। तिलक स्थान नौ हैं। चरण, घोट्ट, हाथ की कुहनी, हाथ, मस्तक, ललाट, कण्ठ, हृदय और उदर। इस नौ स्थानों में चन्दन आदि का तिलक लगाकर पूजा करनी चाहिए। नित्य पूजा में पाँच तिलक भी लगाये जाते हैं। तथा केवल ललाट पर एक तिलक भी लगाया जाता है। तिलक लगाये बिना भगवान् का अभिषेक, पूजा, जप, होम व अन्य कोई भी मांगलिक कार्य नहीं करना चाहिये। बिना तिलक लगाये मांगलिक कार्य अपशकुन समझा जाता है।

मुक्तिश्रियः ललामं वा तिलकं समुदाहृतम् ।  
तेनानर्थत्वमिन्द्रस्य पूजकस्य च तैर्विना ॥ (122)

यह तिलक मुक्ति रूपी लक्ष्मी का सर्वोत्कृष्ट आभूषण माना जाता है। इसलिए बिना तिलक के पूजा करने वाले इन्द्र को इष्ट कार्य की सिद्धि नहीं होती।

### पूजक का अलंकारः

षोडशाभरणोपेतः सांगोपांगस्तु पूजकः ।  
विनयी भक्तिमान्शक्तः श्रद्धावान् लोभवर्जितः ॥ (123)  
पद्मासनसमासीनो नासाग्रन्यस्तलोचनः ।  
मौनी वस्त्रावृतास्योयं पूजां कुर्याज्जिनेशिनः ॥ (124)

पूजा करने वाला इन्द्र कहलाता है, इन्द्र को सोलह आभूषण पहनना चाहिये उसके अंग-उपांग सब परिपूर्ण होने चाहिए। वह विनयी हो, भक्ति करने वाला हो, समर्थ हो श्रद्धा रखने वाला हो और लोभ से

रहित हो। उस समय उसे पद्मासन से बैठकर पूजा करनी चाहिए। उस अपने दोनों नेत्र अपनी नासिका के अग्रभाग पर रखनी चाहिए उसे मौन धारण करना चाहिए तथा अपना मुख वस्त्र से ढक लेना चाहिए इस विधि से भगवान् की पूजा करनी चाहिये।

### चन्दन पूजा:

श्री चन्दनं विनानैव पूजां कुर्यात्कदाचन ।

प्रभाते घनसारस्य पूजा कार्या विचक्षणे: ॥ (125)

श्री जिनेन्द्र देव की पूजा बिना चन्दन से कभी नहीं करनी चाहिये। चतुर पुरुष को प्रातःकाल के समय चन्दन से पूजा अवश्य करनी चाहिए।

### श्री सन्ध्या की पूजा

मध्याह्ने कुसुमैः पूजा-संध्यायां दीपधूपयुक्त ।

वामांगे धूपदाहः स्याददीपपूजा च सन्मुखी ॥ (126)

मध्याह्नकाल में पुष्प पूजा मुख्य मानी जाती है। सुन्दर ताजे सुगन्धित पुष्पों को शुद्ध जल से धोकर शुद्धता पूर्वक भगवान् के चरण कमलों पर चढ़ाना चाहिए। पुष्प भगवान् के सामने नहीं चढ़ाये जाते किन्तु भगवान् के चरणों पर ही चढ़ाये जाते हैं। संध्याकाल के समय दीप और धूप से पूजा करनी चाहिये। दीप से भगवान् की आरती उतारी जाती है और धूप अग्नि में खेई जाती है आरती सामने उतारी जाती हैं और धूप भगवान् के बाईं और धूपदान रखकर उसमें खेई जाती है।

### दीपक पूजा

अर्हतो दक्षिणेभागे दीपस्य च निवेशनम् ।

ध्यानं च दक्षिणे भागे चैत्यानां वंदनं ततः ॥ (127)

भगवान् जिनेन्द्र देव के दाईं ओर दीपक रखना चाहिये तथा दाईं ओर ही भगवान् का ध्यान करना चाहिए और चैत्यों की वंदना भी दाईं ओर बैठकर ही करनी चाहिए।

### अष्ट द्रव्य पूजा :

गंधधूपाक्षतस्रग्भिः प्रदीपफलवारिभिः ।

प्रातः कालेप्युपचितिर्विधेया श्री जिनेशिनः ॥ (128)

प्रातःकाल के समय जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, माल, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ्य इन आठों द्रव्यों से भगवान् जिनेन्द्र की पूजा करनी चाहिए।

### पुष्प पूजा :

पद्मचंपकजात्यादि स्रग्भिः संपजूयेज्जिनान् ।

पुष्पाभावे प्रकुर्वीत पीताक्षत भवेः समेः ॥ (129)

कमल, चम्पा, चमेली आदि पुष्पों की माला बनाकर उनसे भगवान् की पूजा करनी चाहिए तथा पुष्पों के अभाव में अक्षतों को केसर से पीले कर और उन्हें पुष्प मानकर उनसे पूजा करनी चाहिए।

### खण्डित पुष्प दोष प्रदः :

नैवं पुष्पं द्विधा कुर्यात् न छिंद्यात्कलिकामपि ।

चम्पकोत्पलभेदेन यतिः हत्या समफलं ॥ (130)

पुष्प के दो टुकड़े कभी नहीं करने चाहिए तथा कली को तोड़ना भी नहीं चाहिये। कली के दो टुकड़े नहीं करने चाहिये चम्पा, कमल आदि की कली के दो टुकड़े करने में यति हत्या का समान दोष होता है। पूजा में चढ़ाने के लिए प्रकरण है।

### पूजा योग्य पुष्प :

हस्तात्प्रखलितं क्षितौ निपतितं लग्नं क्वचित्पादयोः ।

यन्मूर्द्धोर्ध्वगतं धृतं कुवसने नाभेरधो यद्भूतम् ।

स्पृष्टं दुष्टजनैर्घनै रभितं यद्दूषितम् कंटकैः ।

त्याज्यं ताकुसुम वन्दति विबुधाः भक्त्या जिनप्रीतये ॥ (131)

जो पुष्प हाथ से गिर गया है, पृथ्वीपर गिर पड़ा हो, पैर से छू गया हो, मस्तक पर धारण कर लिया गया हो, अपवित्र वस्त्र में रखा गया हो,

दुष्ट मनुष्यों का द्वारा स्पर्श किया गया हो, घन से छिन्न भिन्न किया गया हो और कांटो से दूषित हो ऐसे पुष्पों को त्याग कर देना चाहिए अर्थात् भगवान् की पूजा करने में ऐसे पुष्प नहीं चढ़ाना चाहिए ऐसा गणधरादि विद्वान् पुरुषों ने कहा है।

स्पृश्य शूद्रादिजं स्पृश्यमस्पृश्यादपसारितम् ।

पुष्पं देयं महाभक्त्या न तु दुष्ट जनैर्धृतम् ॥ (132)

स्पृश्य शूद्र के हाथ से लाये हुए पुष्प ग्राह्य हैं तथा अस्पृश्य शूद्र के हाथ से लाये पुष्प त्याज्य हैं। पुष्प भगवान् के चरणों पर बड़ी भक्ति से चढ़ाना चाहिये परन्तु दुष्ट जनों के हाथ से लाये हुए पुष्प कभी नहीं चढ़ाना चाहिये।

**पूजा नैमित्तिक कार्य :**

पयोर्थं गां जलार्थं च कूपं पुष्पसुहेतवे ।

वाटिकां संप्रकुर्वन्ना नाति दोषधरो भवेत् ॥ (133)

भगवान् जिनेन्द्र देव का अभिषेक करने के लिए सुगमता से दूध की प्राप्ति हो जाय इसके लिए गाय का रखना या जिनालय में गाय को दान देना दोषदायक नहीं है। इसी प्रकार पूजा में सुगमता से पुष्पों की प्राप्ति के लिये बाग-बगीचा बनवाने में भी दोष नहीं है। पूजा के लिए सुगमता से जल मिलता रहे इसके लिए कुआँ लगवाने में भी अत्यंत दोष नहीं होता।

शुद्धतोयेक्षुसर्पिर्भिर्दुग्धदध्याम्रजैः रसैः ।

सर्वोषधिभिरुच्चूर्णैर्भावात्संस्नापयेज्जिनम् ॥ (134)

शुद्ध जल, इक्षुरस, घी, दूध, दही, आम्ररस, सर्वोषधि, और कलक चर्ण आदि से भगवान् जिनेन्द्र देव का अभिषेक करना चाहिये और वह भी बड़ी भक्ति तथा भाव पूर्वक करना चाहिये।

**चन्दन चर्चित :**

पूज्यपूजावशेषेण गोशीर्षेण हृतालिना ।

देवाधिदेवसेवायै स्ववपुश्चर्चयेत्सदा ॥ (135)

जो भगवान् की पूजा करने के बाद बच रहा है और जिस पर भ्रमर आ रहे हैं ऐसे चन्दन से पूजा करने वाले को भगवान् की पूजा करने के लिये अपने शरीर को चर्चित करना चाहिये।

**21 प्रकार पूजा :**

स्नानैर्विलेपनविभूषणपुष्पवास, धूपंप्रदीपफलतंदुलपत्रपूगैः ।

नैवेद्यवारिवसतैश्मचरात पत्र, वादित्रगीतनटस्वास्तिककोशवृध्या ॥ (136)

इत्येकविंशतिविधाजिनराजपूजा, यद्यत्प्रियं तदिह भाववशोनयोज्यम् ।

द्रव्याणिवर्षाणितथाहि कालाः, भावा सदा नैव समा भवन्ति ॥ (137)

भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा इक्कीस प्रकार से की जाती है। आगे उन्हीं को बतलाते हैं। 1- पंचामृताभिषेक करना, चरणों पर चन्दन लगाना, 2- जिनालय को सुशोभित करना, 3-भगवान् के चरणों पर पुष्प चढ़ाना, 4-वास पूजा करना, 5-धूप से पूजा करना, 6-दीपक से पूजा करना, 7-अक्षतों से पूजा करना, 8-तांबूल पत्र से पूजा करना, 9-सुपारियों से पूजा करना, 10-नैवेद्य से पूजा करना, 11-जल से पूजा करना, 12-फलों से पूजा करना, 13-शास्त्र पूजा में वस्त्र से पूजा करना, 14-चमर ढुलाना, 15-छत्र फिराना, 16-बाजे बजाना, 17-भगवान् की स्तुति को गाकर करना, 18-भगवान् के सामने नृत्य करना, 19-साँथियों करना, 20-भण्डार में द्रव्य देना इस प्रकार इक्कीस प्रकार की विधि से भगवान् की पूजा की जाती है। अथवा जिसको जो पसन्द हो उसी से भावपूर्वक भगवान् की पूजा करनी चाहिए। जैसे किसी को सितार बजाना पसन्द है तो उसको भगवान् के सामने ही सितार बजाना चाहिए। इसका भी कारण यह है कि द्रव्य क्षेत्र-काल और भाव ये सबके सदा समान नहीं रहते इसीलिये अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार भगवान् की पूजा सदा करते रहना चाहिये। बिना पूजा के अपना कोई समय व्यतीत नहीं करना चाहिये।

## विभिन्न वर्ण की माला का फल

शान्तौ श्वेतं जये श्यामं भद्रे रक्तं भये हरित् ।  
पीतं धनादि संलाभे पंचवर्णं तु सिद्ध्यते ॥ (138)

नवग्रह आदि की शांति के लिये अथवा पाप कर्मों की शांति के लिए सफेद वस्त्रों को धारण कर सफेद माला से जप करना चाहिये, विजय चाहने के लिये श्याम रंग की माला से जप करना चाहिये, कल्याण के लिए लाल रंग की माला से जप करना चाहिए, भय दूर करने लिये हरे रंग की माला से जप करना चाहिये। धनादिक की प्राप्ति के लिये पीले रंग की माला से जप करना चाहिये। तथा अपने अभीष्ट सिद्धि के लिये पंच वर्ण की माला से जाप करना चाहिये। यदि माला के बदले उसी रंग के पुष्पों से जप किया जाय तो उस कार्य की सिद्धि बहुत शीघ्र हो जाती है। वस्त्र आसन आदि भी उस रंग के होने चाहिये।

### अयोग्य वस्त्र का फल:

खण्डिते गलिते छिन्ने मलिनेचैव वाससि ।  
दान पूजा जपो होमः स्वाध्यायो विफलं भवेत् ॥ (139)

खण्डित वस्त्र (वस्त्र का टुकड़ा) गला हुआ वस्त्र, फटा हुआ वस्त्र और मैला वस्त्र पहन कर दान, पूजा, जप होम और स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। फटे, पुराने, गले, सड़े, वस्त्र पहन कर दान पूजा आदि करने से वह दान पूजा आदि सब निष्फल हो जाता है।

### सचित द्रव्य पूजा दोषावह नहीं:

माल्यगंधप्रधूपाद्यैः सचितैः कोर्चयेज्जिनम् ।  
सावद्यसंभवं वक्ति यः स एवं प्रबोध्यते ॥ (140)  
जिनार्चानेक जन्मोत्थं किल्बिषं हंति यत्कृतम् ।  
साकिंचिद् यजनाचार भवं सावद्यमंगिनाम् ॥ (141)

कोई-कोई लोग यह कहते हैं कि पुष्प पूजा, धूप, दीप, जल, फल आदि सचित द्रव्यों से भगवान् की पूजा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि

सचित पदार्थों से पूजा करने में सावद्यजन्य पाप (सचित के आरम्भ से उत्पन्न हुआ पाप) उत्पन्न होता है। उनके लिये आचार्य समझाते हैं कि भगवान् की पूजा करने से अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं फिर क्या उसी पूजा से उसी पूजा में होने वाला आरम्भजनित वा सचित जन्य थोड़ा सा पाप नष्ट नहीं होगा? अवश्य होगा इसका भी कारण यह है कि:-

प्रेर्यन्ते यत्र वातेन दन्तिनः पर्वतोपमाः ।  
तत्राल्पशक्ति तेजस्सु का कथा मशकादिषु ॥ (142)  
भक्तं स्यात्प्राणानाशाय विषं केवलमगिनाम्  
जीवनाय मरीचादिसदौषाधिविमिश्रतम् ॥ (143)

जिस वायु से पर्वत के समान बड़े-बड़े हाथी उड़ जाते हैं उस वायु के सामने अत्यन्त अल्पशक्ति को धारण करने वाले डांस-मच्छर क्या टिक सकते हैं? कभी नहीं। उसी प्रकार जिस पूजा से जन्म जन्मान्तर के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं उसी पूजा से क्या उसी पूजा के विधि विधान में होने वाले बहुत ही थोड़ी हिंसा नष्ट नहीं हो सकती? अवश्य होती है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। विष भक्षण करने से प्राणियों के प्राण नष्ट हो जाते हैं परन्तु वही विष यदि सोंठ, मिरच पीपल आदि औषधियों के साथ मिलाकर दिया जाए तो उसी से अनेक रोग नष्ट होकर जीवन अवस्था प्राप्त होती है। इसी प्रकार सावद्य कर्म यदि विषय सेवन के लिये किये जायें तो वे पाप के कारण हैं ही? किन्तु पूजा के लिये थोड़े सावद्य कर्म पाप के कारण नहीं होते पुण्य के ही कारण होते हैं। मन्दिर बनवाना, पूजा करना, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करना, रथोत्सव करना आदि जितने पुण्य के कारण हैं उन सबमें थोड़ा बहुत सावद्य अवश्य होता है। परन्तु वह सावद्य दोष पुण्य का ही कारण होता है। इसी प्रकार सचित द्रव्य से होने वाली पूजा में होने वाला सावद्य दोष पुण्य का ही कारण होता है। भगवान् की पूजा केवल पुण्य उपार्जन करने

के लिये, आत्मा का कल्याण करने के लिये और परम्परा मोक्ष प्राप्त करने के लिये की जाती है। विषयों के सेवन करने के लिये नहीं की जाती इसीलिये उससे होने वाला सावध कर्म पाप का कारण कभी नहीं हो सकता पुण्य का ही कारण होता है।

तथा कुटुम्बभोगार्थमारम्भः पापकृद्भवेत्।  
धर्मकृद्दानपूजादौ हिंसालेशो मतः सदा॥ (144)

कुटुम्ब पोषण और भोगोपभोग के लिये किया गया आरम्भ पाप उत्पन्न करने वाला होता है। परन्तु दान, पूजा आदि धर्मकार्यों में किया गया आरम्भ या की गई लेशमात्र हिंसा सदा पुण्य को बढ़ाने वाली ही मानी गई हैं।

**गन्धोदकादि ग्रहण का फल :**

गंधोदकं च शुद्ध्यर्थं शेषां संततिवृद्धये।  
तिलकार्थं च सौगंध्यं गृहणन स्यान्नहि दोषभाक् (145)

अपने शरीर को शुद्ध करने के लिये भगवान् का गन्धोदक ले लेना चाहिये। संतति की वृद्धि के लिये शेषाक्षत ले लेना चाहिए और तिलक लगाने के लिये चन्दन ले लेना चाहिये। इन द्रव्यों के ले लेने में कोई किसी प्रकार का दोष नहीं लगता।

पूज्यो जिनपतिः पूजा पुण्यहेतुर्जिनार्चना।  
फल स्वाभ्युदयो मुक्तिर्भव्यात्मा पूजक स्मृतः॥ (146)

पूजा के 4 अंग हैं पूज्य, पूजक, पूजा और पूजा का फल भगवान् जिनेन्द्र देव पूज्य हैं। पुण्य को बढ़ाने वाली भगवान् की पूजा, पूजा कहलाती है। अभिषेक आह्वान, स्थापना, सन्निधिकरण, पूजा और विसर्जन इन छह प्रकार से भगवान् की पूजा की जाती है। अपने आत्मा का अभ्युदय प्राप्त होना अर्थात् स्वर्गों के इन्द्र, अहमिन्द्र की संपदा प्राप्त होना और अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होना पूजा का फल है। जो जीव भव्य है वही पूजक गिना जाता है।

**पूजाक्रम :**

आह्वाननं च प्रथमं ततः संस्थापनं परम्।  
सन्निधिकरणं कृत्वा पूजनं तदनन्तरम्॥ (147)  
ततो विसर्जनं कार्यं ततः क्षमापणा मता।  
पंचोपचारोपचितिः कर्त्तव्याहर्निशं जनैः॥ (148)

पूजा करने के लिये आभिषेक और चन्दनपूजा के बाद सबसे पहले आह्वान किया जाता है फिर स्थापना, सन्निधिकरण किया जाता है तदनन्तर पूजा की जाती है और फिर विसर्जन कर क्षमायाचना की जाती है। इस प्रकार प्रतिदिन पंचोपचारी पूजा करनी चाहिये।

**“पूजा की शुद्धि”**

एवं सम्यग्विचार्यात्र द्रव्यपात्रादि शुद्धभाक्।  
स्वः शुद्धोऽन्यानि संशोध्य सम्यक्कृत्वा विशोधयेत्॥ (155)  
शुद्धियुक्तो जिनान् भावान् पूजयेद् यः समाहितः।  
ईप्सितार्थस्य संसिद्धिलभते सोपि मानवः॥ (156)

इस प्रकार आगमकी आज्ञानुसार द्रव्यक्षेत्र पात्र आदि की शुद्धि का का पूर्ण विचार रखना चाहिये। द्रव्य क्षेत्र कालभाव पात्र आदि को शुद्ध कर अपने शरीर वा भावों की शुद्धि करनी चाहिये। तदनन्तर अन्य समस्त सामग्री को शुद्धि करनी चाहिये। इस प्रकार बाह्य आभ्यन्तर सब प्रकार की शुद्धियों को पूर्णकर जो पुरुष भक्ति पूर्वक भगवान् की पूजा करता है वह मनुष्य अपने अभीष्ट पदार्थों की सिद्धि को अवश्य प्राप्त करता है।

त्रिसंध्यंप्राचयेद्यस्तु जिनादीन् जितमत्सरः।  
सः सौधर्मादिषु कल्पेषु जायते सुरनायकः॥ (157)  
एकवारं सुभावेन पूजयति जिनाकृतिम्।  
ससुरत्वं समाप्नोति हत्वा दुष्कृतसंततिम्॥ (156)

जो भव्य जीव ईर्ष्या मत्सर आदि दुष्ट भावों से रहित होकर तीनों समय भगवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा करता है वह जीव सौधर्मादिक स्वर्गों

में इन्द्र आदि उत्तमदेव होता है। जो भव्य जीव निर्मल परिणाम से एक बार भी जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का पूजन करता है वह जीव अपने समस्त पापों को नष्ट कर इन्द्रादिक उत्तम पदों को प्राप्त होता है।

प्रतिमां पूजयेत्प्रीत्या जिनेन्द्रस्य जितैनसः।  
यः स संपूज्यते देवैर्मृतोपि मनुजोत्तमः॥ (159)

जो भव्य जीव प्रेम वा भक्ति पूर्वक समस्त पापों को नाश करने वाले भगवान् जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का पूजन करता है वह देवों के द्वारा पूजा जाता है तथा मरकर फिर उत्तम मनुष्य होता है।

सा पूजाष्टविधा ज्ञेया गृहिणां गृहमेधिनाम्।  
जलादि फल पर्यन्ता भवान्तकरणक्षमा॥ (160)

धर्मपत्नी सहित रहने वाले गृहस्थों को आचार्य ने वह पूजा आठ प्रकार बतलाई है। जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल इन आठ द्रव्यों से होने वाली पूजा आठ प्रकार की कही जाती है।

यह आठ प्रकार की पूजा जन्म-मरण रूप संसार का नाश करने वाली है।

### “पंचामृताभिषेक का फल”

जिनेन्द्र प्रतिमांभव्य स्नापयेत्पंचकामृतैः।  
तस्य नश्यति संतापः शरीरादिसमुद्भवः॥ (161)

जो भव्य जीव जल इक्षुरस दूध दही घी सर्वोषधि आदि से भगवान् जिनेन्द्र-देव की प्रतिमा का पंचामृताभिषेक करता है उसके शरीर से मन से और अकस्मात् होने वाले सब तरह के संताप अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

श्रीमता श्रीजिनेन्द्राणां प्रतिमाग्रे च पुण्यदाना  
ददानि जलधारां यः तिस्रो भृंगारनालतः॥ (162)

जो भव्यजीव प्रातिहार्य आदि अनेक शोभाओं से सुशोभित भगवान्

जिनेन्द्र देव की प्रतिमा के सामने भृंगार नाल से (झारी से) तीनबार जल की धारा देता है वह पुरुष महा पूज्य-वान् समझा जाता है।

और उसके जन्म-मरण बुढ़ापा आदि के समस्त दुःख अनुक्रम से नष्ट हो जाते हैं तथा थोड़े ही भवों में उसकी पापरूपी धूलि अवश्य ही शांत हो जाती है।

### “चन्दन पूजा का फल”

जन्ममृत्यु जरा दुःखं क्रमात्तस्य क्षयं व्रजेत्।  
स्वल्पैरेव भवैः पापरजः शाम्यति निश्चितम्॥ (163)  
चन्दनाद्यर्चनापुण्यात् सुगंधिं तनुभाग् भवेत्।  
सुगन्धीकृतदिग्भागो जायते च भवे भवे॥ (164)

चन्दन से भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा करने से जो पुण्य होता है उससे यह जीव जन्म-जन्म में अत्यन्त सुगन्धित शरीर प्राप्त होता है उस शरीर की सुगन्धि से दशों दिशाये सुगन्धित हो जाती है।

### “अक्षत पूजा का फल”

अखण्डतन्दुलैः शुभ्रैः सुगंधैः शुभशालिजैः।  
पूजयन् जिनपादाब्जानक्षयां लभते रमाम् ॥ (165)

सफेद सुगन्धित और शुभाशालि धान्यों से उत्पन्न हुए अखंड तन्दुलों से भगवान् जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की पूजा करने वाला मोक्ष रूपी अक्षय लक्ष्मी को प्राप्त होता है।

### “पुष्प पूजा का फल”

पुष्पैः संपूजयन् भव्योऽमरस्त्री लोचनैः सदा।  
पूज्यतेऽमरलोकेशदेवीनिकरमध्यगः ॥ (166)

जो भव्य जीव पुष्पों से भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा करता है। वह स्वर्गलोक के इन्द्र की देवियों के मध्य में बैठा हुआ अनेक देवियों के सुन्दर नेत्रों के द्वारा सदा पूजा जाता है।

### “नैवेद्य पूजा का फल”

पक्कान्नादिकनैवेद्यैः प्राचर्यत्यनिशं जिनान् ।

स भुनक्ति महासौख्यं पचेन्द्रियसमुद्भवम् ॥ (167)

जो भव्यजीव पकाये हुए अनेक प्रकार के नैवेद्य से भगवान् जिनेन्द्र देव की प्रतिदिन पूजा करता है वह पांचों इन्द्रियों से उत्पन्न हुए महा सुखों का अनुभव करता है।

### “दीप पूजा का फल”

सुरत्नसर्पिः कर्पूरभवेदीपैर्जिनेशानाम् ।

द्योतयेद्यः पुमानंघ्रीन सः स्यात्कांतिकलानिधिः ॥ (168)

जो भव्य जीव रत्न, घी व कपूर के दीप से भगवान् जिनेन्द्रदेव के चरण कमलों की आरती उतारता है उस पुरुष की कांति चन्द्रमा के समान निर्मल हो जाती है।

कृष्णागर्वादिजैर्धूपैर्धूर्पयेज्जिनपदयुगम् ।

सः सर्वजनतानेत्रवल्लभः संप्रजायते ॥ (169)

जो भव्य जीव कृष्णागरू चन्दन आदि सुगंधित द्रव्यों से बनी हुई धूप से भगवान् जिनेन्द्र देव के चरण कमलों की पूजा करता है अग्नि में खेकर धूप चढ़ाता है। वह पुरुष समस्त लोगों के नेत्रों का प्यारा हो जाता है। धूप को अग्नि में खेकर उसका धुआँ अपने दायें हाथ भगवान् की ओर करना चाहिए इसी को धूप पूजा कहते हैं। धूप थाल में नहीं चढ़ाई जाती किन्तु अग्नि में ही खेई जाती है।

### “फल पूजा का फल”

आम्रनारिगजंबीरकदल्यादि तरुद्भवैः ।

फलैर्यजति सर्वज्ञं लभतपीहितं फलम् ॥ (170)

जो भव्य जीव, आम, नारंगी, नींबू, केला आदि वृक्षों से उत्पन्न होने वाले फलों से भगवान् सर्वज्ञ देव की पूजा करता है वह पुरुष अपनी

इच्छा के अनुसार फलों को प्राप्त होता है। फल देखने में सुन्दर और मनोहर होना चाहिए गोला या बादाम फल नैवेद्य कहलाते हैं किन्तु इस-लिए गोले के बदले नारियल चढ़ाना चाहिए।

### “अर्घ पूजा का फल”

जल गंधाक्षतातीवसुगंधिकुसमैः कृती ।

पुष्पांजलिं ददन् दिव्यां जिनाग्रे लभते फलम् ॥ (171)

जल, चन्दन, अक्षत, अत्यन्त सुगन्धित पुष्प आदि समस्त द्रव्यों के समुच्चय रूप अर्थ से भगवान् जिनेन्द्र देव के सामने दिव्य पुष्पांजलि को समर्पण करता हुआ पुण्यवान पुरुष मोक्ष फल को प्राप्त होता है।

### “पुष्पांजलि का फल”

पुष्पांजलि प्रदानेन महापुण्यं प्रजायते ।

तेन स्वकीय दुःखेभ्यो नरो दत्ते जलांजलिम् ॥ (172)

भगवान् के सामने पुष्पांजलि चढ़ाने से महापुण्य की प्राप्ति होती है। तथा उस पुण्य से यह मनुष्य अपने समस्त दुःखों की जलांजलि दे डालता है।

### पूज्यमूर्तिः

नामतः स्थापनातश्च द्रव्यतो भावतोऽर्पितम् ।

विन्यस्य पुण्यं संप्राप्त्यै पूजयन्तु जिनेश्वरम् ॥ (173)

भव्य जीवों को नाम स्थापना द्रव्य और भाव इन चार निक्षपों से भगवान् जिनेन्द्र देव की स्थापना करनी चाहिए और फिर पुण्य की वृद्धि करने के लिये भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिये।

बिना न्यासं न पूज्यः स्यान्न वंद्योसो दृषत्समः ।

सुखं न जनये न्यासवर्जितः प्राणिनां क्वचित् ॥ (174)

प्रतिष्ठा पाठों के अनुसार प्रतिष्ठा किये बिना भगवान् की प्रतिमा कभी पूज्य और वंदनीय नहीं होती बिना न्यास वा प्रतिष्ठा के वह प्रतिमा

पत्थर के समान मानी जाती है। बिना प्रतिष्ठा की हुई प्रतिमा से प्राणियों को कभी भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

इति चातुर्विधत्वेन न्यासं कृत्वा सुभावतः ।

श्रावकैः शुद्धसम्यक्तैः पूजा कार्या स्वशक्तितः ॥

इस प्रकार शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले श्रावकों को नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव इन चारों निक्षेपों से स्थापना कर भाव पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिये।

### मुनि की भाव पूजा:

जिनेश्वरगुणग्रामरंजितैर्यतिसत्तमैः ।

पूजाभावेन सत्कार्या सर्वपापापहारिणी ।

जो मुनिराज भगवान् जिनेन्द्र देव के गुणों के समूह में तल्लीन हो रहे हैं ऐसे मुनिराजों का अपने भावों से ही पूजा करनी चाहिये क्योंकि भाव पूजा भी समस्त पापों को नाश करने वाली है।

**भावार्थ** - यह है कि मुनिराजों के पास कुछ भी द्रव्य नहीं रहता इसलिये मुनिराजों को भाव पूजा करने का अधिकार है। परन्तु गृहस्थ लोग बिना द्रव्य के सद्गृहस्थ नहीं कहला सकते इसीलिये ऐसे गृहस्थों को द्रव्य पूजा करने का ही अधिकार है। गृहस्थों के परिणाम अत्यन्त निर्मल नहीं होते इसलिये वे भाव पूजा कर नहीं सकते इसीलिये उनको भाव पूजा कही नहीं करना चाहिये बल्कि द्रव्य पूजा आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। अतः द्रव्य पूजा करना ही चाहिये।

### त्रिकाल पूजा

त्रिकालं क्रियते भव्यैः पूजा पुण्यविधायिनी ।

यां कृत्वा पाप संघातं हन्त्याजन्मसमार्जितम् ॥

भव्य जीवों को तीनों समय पूजा करनी चाहिये। यह पूजा पुण्य को

बढाने वाली है और जन्म जन्म के किये हुए पापों के समूह को नाश कर देने वाली है।

पूर्वाह्ने हरते पापं मध्याह्ने कुरुते श्रियम् ।

ददाति मोक्षं संध्यायां जिनपूजा निरंतरम् ॥

प्रातः काल के समय भगवान की पूजा करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। मध्याह्न काल के समय पूजा करने से लक्ष्मी प्राप्त होती है और सन्ध्या काल के समय पूजा करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार भगवान की पूजा करने से निरन्तर आत्मा का कल्याण होता रहता है।

### पाण्डव पुराण में वर्णित जिनार्चना

(शुभचन्द्राचार्य विरचित)

चन्द्रप्रभं सुचन्द्राभं चन्द्रचर्चितपदयुगम् ।

चन्द्रांकं चन्दनैश्चर्च्यं नौमि नानागुणाकरम् ॥ (1)

जिनेक चरण युगल चन्द्र से पूजे गये हैं, जिनकी देहकान्ति पूर्णचन्द्र की सी है, जो नाना गुणों की खान है। जो चन्द्रलाच्छन से युक्त हैं ऐसे चन्दन से पूज्य चन्द्रप्रभ तीर्थकर की मैं स्तुति करता हूँ”

राजकन्या के मन में निर्मल भक्ति भाव उत्पन्न हुआ। उसे जिनमन्दिर में जिनवंदना के लिये जाने की इच्छा उत्पन्न हुई। इतने में जिन मन्दिर के पास पाण्डव आ गये, उन्होंने प्रासुक जल से स्नान किया और श्री जिन चन्द्रप्रभ की प्रतिमा देखकर “निस्सहि” ऐसे शब्द बोलते हुए जिन मन्दिर में प्रवेश किया पाण्डवों ने मन्दिर में श्री जिन चन्द्रप्रभ की पूजा की तथा नमस्कार कर वे पवित्र प्रभु के अनंतज्ञानादिवैभवके प्रतिपादक नानाविधस्तोत्र मन्त्रों के द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे। “ हे प्रभो आपकी जय हो, आप उत्तम भव्य जीवों का जीवन हो, अर्थात् आपके उपदेश से हित मार्ग प्राप्त कर भव्यजीव मुक्त होकर अनंत मुखी शुद्ध चैतन्मय होते हैं। भव्यों को जयप्राप्ति कराने में आप सदा उद्यत हैं। आप अजेय हैं अर्थात् मोह आपको नहीं जीत सका” आप

कर्मशत्रु के तेज को जीतने वाले हैं। आपने अपना और भव्यों का जन्म चर्तुगति भ्रमण मिटाया है। आप की हमेशा जय हो। हे भगवान्। चन्द्रप्रभ, आपने अपने भामण्डल से चन्द्र की हमेशा के लिये परजय किया है, अन्यथा लांछन के मिष से वह आप के चरणों में क्यों रहता है? आपके चरणों का आश्रय क्यों लेता ? हे प्रभो आपका केवल ज्ञानरूप नेत्र को धारण करते हैं और भव में से जगत का उद्धार करने में समर्थ है। आपने करुणा का दूसरा किनारा प्राप्त किया है अर्थात् आप में अपार करुणा है। हे प्रभो हे जगद्गुरो, आप हमारी पाप से रक्षा कीजिये। इस प्रकार स्तुति करने से पाण्डवों को अतिशय आनंद हुआ, अमद आनंद से वे भूषित हो गये। वे मन्दिर में स्तुति करके बैठे थे इतने में कमला राजकन्या जिनदेव को वन्दन करने के लिये आई। वह प्रफुल्ल नयन-नेत्रवाली तथा तेजस्वी हार धारण करने वाली थी। रुनझुन करने वाले बिछुओं के मनोहर शब्द से उसने संपूर्ण कोकिलाओं को पराजित किया था। नितंब के भार से स्खलित होने वाली, अर्थात् मंद मंद गमन करने वाली, कमर में करघौनी धारण करने वाली तथा मन्द और सुंदर गति से हाथिनी की गति को जीतने वाली, अतिशय सुखी वह कमला सखियों के साथ जिनमन्दिर को विधि से वंदन किया।

### स्त्री द्वारा पुष्पादि से जिनार्चना

सुगन्धैर्बन्धुरैर्गन्धैः शुद्धैर्लब्धमधुव्रतैः ।

चन्दनैश्चर्चयामास सा जिनेन्द्र पदाम्बुजम् ॥ (22)

मन्दारमाल्लिकाकम्रकेतकीकुन्दपक्कजैः ।

चम्पकैश्चर्चते स्मासौ जिनेन्द्रपदपंकजम् ॥ (23)

धूपैर्धूपितदिक्कचक्रैः फलैः प्रविपुलैर्जिनम् ।

संपूज्य निर्गताद्रक्षीत्पाण्डवान्पावनान्परान् ॥ (24)

भ्रमर जिसके ऊपर गुंजारव कर रहे हैं, ऐसे शुद्ध सुगंधित मनोहर गंधवाले पदार्थों से तथा चन्दन से उसने जिनेन्द्र के पदकमल पूजे।

उसने मंदार, मल्लिका, सुन्दर केवडा, कुन्द, कमल, और चम्पक आदि पुष्पों से जिनेश्वर के पदकमल पूजे। सर्व दिशाओं को सुगंधित करने वाले धूपों से तथा विपुल फलों से जिनेश्वरों की पूजा करने जिनमंदिर से निकली तब उसने उत्तम पाण्डवों का देखा।

उस मन्दिर में ठहरे हुए, तेज से स्थिर, सुन्दर धर्मपुत्र को देखकर उसके रूप से वह शीघ्र वश हुई और इस प्रकार विचार करने लगी, क्या वह अपने कोई देव अथवा देवेन्द्र है? अथवा यह धरणेन्द्र, किंवा चन्द्र अथवा सूर्य है? तथा यहाँ ये अन्य पुरुष भी क्या देव है इनकी कान्ति सूर्य के समान उज्ज्वल दिखती है। हाँ, मैंने जान लिया, इसके पलकों की चंचलता से यह कोई उत्तम कांति वाला पुरुष है। इसके बिना धैर्य हीन मैं प्राणों को कैसे धारण कर सकूंगी। इस प्रकार मदन के बाणों से वह राजकन्या विद्ध हुई। उसके चरण कमल चलते समय स्खलित हो रहे थे। उसका मन ठिकाने पर नहीं था, मानो वह हतहो गई हो। वह अपने घर जाने में असमर्थ हुई। सखियां जबरदस्ती से उसे घर ले गयी। काम की अलसता से वह न भोजन करती थी न बोलती थी और न हंसती थी। वह क्षण में देखती थी क्षण में खिन्न होती थी और क्षण में रोती थी तथा वह क्षण में सो जाती थी वह क्षण में उठकर स्वयं खड़ी हो जाती थी तथा हंसकर स्वयं जमीन पर गिरती थी सुन्दर आँखों वाली अपनी कन्या इस प्रकार काम की अवस्था से पीडित हुई है ऐसा माता ने देखकर उससे सब हाल पूछा तब उसकी दशा का उसे ज्ञान होगया कमला की माता ने उसकी दुःखद चेष्टा का राजा से निवेदन किया। राजा ने मंत्रियों को कन्या का सब हाल कह दिया और मंत्रियों के द्वारा उसने पाण्डवों को बुलाया। पाण्डव आ गये और राजा से मिले। राजा ने उत्तम भोजन और उँचे वस्त्रादिकों से उनका सत्कार किया वे वहाँ अच्छीतरह से रहे तदनंतर राजा ने धर्मपुत्र के विवाह के लिये प्रार्थना की और प्रेम

से विवाह विधि के अनुसार अपनी निर्मल-सुन्दर कन्या धर्मराजा को अर्पण की। तदनंतर वह धर्मराजा भी उसके साथ उत्कृष्ट भोगों को भोगने लगा। वहाँ कुन्तीमाता और अपने बांधवों के साथ वे कुछ दिन तक ठहरे। एक दिन वर्णराजा ने धर्मराजा को पूछा हे प्रभो आप कौन हैं? यह स्त्री कौन है? तथा ये पुरुष कौन है? आप सब लोग यहाँ कहाँ से आ गये हैं? प्रश्न सुनकर धर्मराज बोले-कि हे वर्णराजन् हमारी कौतुकयुक्त वार्ता सुनो। हम पाण्डु राजा के पुत्र हैं। हमको कौरवों ने लाक्षाग्रह में जलाने का विचार किया, हम वहाँसे-लाक्षाग्रह से निकले द्वारावती नगरी में हमारी श्रेष्ठ मामा समुद्रविजय रहते हैं। उनके पुत्र नेमिप्रभु तीर्थकर है देव हमेशा उनकी स्तुति करते-हैं। वैकुण्ठ श्री कृष्ण और बलदेव ये हमारे स्वजन हैं। हम उनके दर्शन की उत्कंठा से उत्तेजित होकर द्वारिका नगरी को जा रहे हैं।

इस प्रकार अपना सम्पूर्ण सम्बन्ध कहकर वे जाने के लिये उद्यत हुये। कमला नायक राजकन्यों को उसके पिता के घर में छोड़कर सत्यवादी और धर्मपरायण वे पाण्डव वहाँ से चले गये। परमोत्साही सदाचारी और विचारवान् महापुरुष पाण्डव प्रत्येक देश में पूज्य पुरुषों से पूजे जाते थे उनके पुण्योदय से आसन, शय्या, यान, वाहन, आहार, वस्त्रादि सर्व पदार्थ उनको सुलभ रूप से प्राप्त होते थे।

पराक्रम से दिशाओं का समूह जिन्होंने व्याप्त किया है, जो नीतिपद्धति से युक्त है, ऐसे पाण्डव राजा कम से प्रवास कर रहे थे और जिन मन्दिर में श्रेष्ठ जिनेश्वरों का पूजन बार-बार करते थे। वे पुण्यवान पाण्डव राजा क्रम से पुण्यद्रुम नाम के वन में आये, वह पुण्यद्रुमवन पवित्र वृक्षों से व्याप्त था और सर्वत्र उसकी पूर्ण शोभा विस्तीर्ण हुई थी। उस वन के मध्य में शुभ विस्तार वाले शरद् मेघ के समान शुभ-शुभ सुवर्ण कुम्भों से युक्त, सुन्दर आकाश में जिनके शिखर हैं, ऐसे अनेक

जिनमंदिर थे। उनमें शब्द करने वाले नगारे बजते थे जयजयकार के शब्द हो रहे थे। अलंकारों से मंडित भव्यों के मन को आनंदित करते थे। धर्माभूत प्राशन करने वाले प्रेमयुक्त पाण्डव उनके समीप गये चित्रों से सुन्दर दीवार वाले उन मंदिरों से पवित्र पाण्डु पुत्रों ने माता कुन्ती के साथ आनन्द से प्रवेश किया। उन मंदिरों में चमकने वाले सुवर्णों से बनाई हुई, सुंदर रचनायुक्त शुभ ऐसी जिन प्रतिमायें भव्यों के मन को हरण करती थी। सुवर्ण और रूपों से बनी हुई सुन्दर रूप और कान्ति से युक्त, पवित्र उत्कृष्ट वैभवशाली जिन प्रतिमाओं को देखकर वे पवित्र पुण्य वाले पाण्डव हर्षित हुए।

### “अर्चना का फल”

ततः पुष्पफलाद्यैस्ते चायन्ते स्म शुभार्चनैः ।

जिनान्यतो जनानां हि जायते पुण्यजीवनम् ॥ (51)

नत्वा स्तुतिशतैः स्तुत्वा प्रानमन्नमस्तकाः ।

पाण्डवास्तान्जिनान्युक्त्या सद्धर्माभूतलालसाः ॥ (52)

वन्दित्वा सद्गुरुन्म्यान्पुण्यगौरवसंगतान् ।

गम्भीरास्तत्र पप्रच्छुर्जिनपूजाफलं च ते ॥ (53)

मुनिर्वाचं जगौ भव्याः श्रुणुतार्चनसत्फलम् ।

यार्चा चतुरचित्तानां ददाति परमं पदम् ॥ (54)

रजोमुक्त्यै भवेद्द्वारा वारां दत्ता जिनाग्रतः ।

सौगन्ध्याय शुभामोदो गन्धो देहे सुयुक्तिभिः ॥ (55)

अक्षता अक्षता दत्ताः कुर्वन्त्यक्षतसुश्रियम् ।

पुष्पस्रजः सृजन्त्याशु स्वःस्रजं देहिनां सदा ॥ (56)

उमास्वाम्याय नैवेद्यं दत्तं स्याद्देवपादयोः ।

दीपो दीप्तिकरः पुंसां जिनस्याग्रेऽवतारितः ॥ (57)

विश्वनेत्रोत्सवास स्यात्सुधूपोऽगुरुसंभवः ।

फलं फलति संफुल्लं मुक्तिलक्ष्मीं सुलक्षिताम् ॥ (58)

अनर्घ्येण महार्घ्येण ये यजन्ति जिनेश्वरान् ।  
ते प्राप्नुवन्ति चानर्घ्यं पदं देवनारचितम् ॥ (59)

इति पूजाफलं श्रुत्वा श्रावकास्ते महाश्रियः ।  
जहर्षुर्हर्षपूर्णांगं आमर्षो ज्झितमानसाः ॥ (60)

(पा. पु. पृ. 272) पर्व. 13

तदनंतर वे पुष्पफलादिक शुभ पूजाद्रव्यों के द्वारा जिनेश्वरों की पूजा करने लगे जिससे कि जीवों को पवित्र जीवन प्राप्त होता है। सद्धर्मात्मत की अभिलाषा धारण करने वाले, नम्र मस्तक, वे पाण्डव जिन भगवान् को नमस्कार कर तथा युक्ति से सैकड़ों स्तुतियों द्वारा स्तुति कर अतिशय नम्र हुए। अनंतर गुणों के गौरवों से युक्त आदरणीय सदगुरुओं को गंभीर पाण्डवों ने बंदन किया और उन्होंने जिन पूजन का फल पूछा-मुनिराज ने उपदेश दिया - हे भव्य, पूजन का शुभफल सुनो, यह जिन पूजन चतुर-चित्तवालों को उत्तम पद देती है। जिनेश्वर के आगे दी हुई जलधारा ज्ञानावरण और दर्शनावरण रूप धूलि को मिटा देती है। शुभ गंध वाला गंधद्रव्य-चंदनादिकयुक्ति से जिनेश्वर के चरणों पर लगाने से देहमें (पूजक के) सुगंधता उत्पन्न होती है। जिन चरणों के आगे अखंड अक्षत अर्पण करने पर वे अखंड शुभ लक्ष्मी को अर्पण करती हैं। जिन चरणों के आगे अर्पण की हुई पुष्पमालायें हमेशा प्राणियों को स्वर्ग की मालाओं को अर्पण करती हैं। जिन चरणों के आगे दिया हुआ नैवेद्य मुक्ति लक्ष्मी का स्वामित्व प्रदान करता है जिनेश्वरों के आगे अवतरण किया हुआ दीप भव्यों के अंग में कांति उत्पन्न करता है अगुरु से उत्पन्न सुगंधित धूप जगत् के नेत्रों को आनंदित करता है।

जिन चरणों के आगे अर्पण किया गया सुफल ज्ञानादि गुणों से विकसित मुक्ति लक्ष्मी को देता है अनर्घ्य-अमूल्य ऐसे महार्घ्य से (जलादि अष्ट द्रव्यों के समूह से) जो भव्य जिनेश्वर को पूजते हैं वे देव और मनुष्यों से पूजित अनर्घ्यपद-मुक्तिपद प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार पूजा

का फल सुनकर जिनका मन क्रोध से रहित है, जिनका शरीर हर्ष से पूर्ण है, अर्थात् रोमांच युक्त है ऐसे वे महालक्ष्मी संपन्न श्रावक पाण्डव आनंदित हो गये।

पाण्डव पुराणश्लोक 51-60

## यशस्तिलक चम्पू काव्य में वर्णित जिनेश्वरार्चना

आ. सोमदेव विरचित

### देव पूजा क्रम

स्नपनं पूजनं स्तोत्रं जपो ध्यानं श्रुतं स्तवः।

षोढा क्रियोदिता सभ्दिदेव सेवासु गेहिनाम्॥

यशस्तिलक चम्पू काव्य अष्टम आश्वास पृ. 47

सज्जनों ने गृहस्थ के लिए देव पूजा के विषय में छह धार्मिक क्रियायें कहीं हैं - पूर्व में अभिषेक, पुनः पूजन, पश्चात् भगवान् के गुणों का स्तवन, पुनः पंच नमस्कार मन्त्र आदि का जाप पश्चात् ध्यान और अंत में श्रुतदेवता की आराधना स्तुति अर्थात् - इस क्रम से जिनेन्द्र देव की आराधना करना चाहिए।

### देव पूजा की विधि

द्वये देवसेवाधिकृताः संकल्पितात् पूज्यपरिग्रहाकृतप्रतिमा परिग्रहाश्च, संकल्पोऽपि दलफलोपलादिष्विव न समयान्तरप्रतिमासु विधेयः। यतः-

(यशस्तिलक चम्पू काव्य अष्टम आश्वासः - पृ. 371)

देव पूजा के अधिकारी मानव दो प्रकार के हैं :-

1. जिन्होंने जिन-बिम्बों के जिनेन्द्र भगवान् की स्थापना करके उन्हें पूज्य स्वीकार किया है परन्तु विवेकी पुरुष जिस प्रकार पत्र, फल व पाषाण आदि शुद्ध वस्तुओं में जिनेन्द्र भगवान् आदि की स्थापना करता है उस प्रकार उसे दूसरे मतों की ब्रह्मा व विष्णु आदि की मूर्तियों में ऋषभदेव आदि तीर्थकरों का संकल्प कदापि नहीं करना चाहिए।

शुद्ध वस्तुनि संकल्पः कन्याजन इवोचितः।  
नाकारान्तरसंक्रान्ते यथा पर परिग्रहे॥ (23)

क्योंकि अविरोद्ध या शुद्ध पदार्थ में जिनेन्द्र भगवान् की स्थापना करनी चाहिए जैसे सुकंया में पानी का संकल्प करते हैं परन्तु अशुद्ध प्रतिमा में स्थापना अयोग्य आगम से विरोद्ध है।

तत्र प्रथमान्प्रति समय समाचार विधिममिधास्थामः तथा हि।

अब हम पत्र व पुष्प आदि में जिनेन्द्र भगवान् की स्थापना करके देव-पूजा करने वाले श्रावकों के प्रति पूजा विधि के विषय में धर्मोपदेश देंगे -

अर्हन्न तनुर्मध्ये दक्षिणतो गणधरस्तथा पश्चात्।  
श्रुतगीः साधुस्तदनु च पुरोऽपि हृगवगमवृत्तानि॥(24)

भूर्जे फल केसिचये शिलातले सैकते क्षितौ व्योम्नि।  
हृदये चैते स्थाप्याः समयसमाचारवेदिभिर्नित्यम्॥(25)

रत्नत्रयपुरस्काराः पंचापि परमेष्ठिनः।  
भव्यरत्नाकरानन्दं कुर्वन्तु भुवनेन्दवः॥ (26)

पूजा-विधि के वेत्ताओं को सदा अर्हन्त और सिद्ध को पत्र व पुष्पादि के मध्य में, आचार्य को दक्षिण में, उपाध्याय को पश्चिम में, साधु को उत्तर में और पूर्व सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को क्रम से भोज पत्र, लकड़ी के पट्टिये पर, वस्त्र पर, शिलातल पर, बालुकामय प्रदेश पर, पृथ्वी पर, आकाश में और हृदय में स्थापित करना चाहिये॥

सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय से पूजनीय और तीन लोक के लिए चन्द्रमा सरीखे पाँचों परमेष्ठी भव्य जीव रूपी समुद्र को प्रमुदित करें॥

### अर्हन्त पूजा

नरोरगसुराम्भोजविरोचनरुचिश्रियम्।  
आरोग्याय जिनाधीशं करोम्यर्चनगोचरम्॥(27)

में जन्म जरा-मरण रूपी रोग की निवृत्ति के लिए मनुष्य, नागासुर व देवीरूपी कमलों के विकसित करने के लिए सूर्य की कान्ति को धारण करने वाले जिनेन्द्र देव की पूजा करता हूँ।

### सिद्ध पूजा

प्रत्नकर्म विनिर्मुक्ताभूतनकर्म विवर्जितान्।  
यत्नतः संस्तुवे सिद्धान् रत्नत्रयमहीयसः॥(28)

पुराने कर्मों के बंधन से छूटे हुए और नवीन कर्मों से रहित तथा रत्नत्रय से महान् उन सिद्धों का मैं यत्नपूर्वक स्तवन करता हूँ।

### “आचार्य पूजा”

विचार्य सर्वभेतिह्यमाचार्यकमुपेयुषः।  
आचार्यवर्यान् चामि संचार्य हृदयाम्बुजै ॥(29)

मैं समस्त आगम को विचार करके आचार्य पद प्राप्त करने वाले पूज्य आचार्यों को अपने हृदयकमल में स्थापित करके उनकी पूजा करता हूँ।

### “उपाध्याय पूजा”

अपास्तैकान्तवादीन्द्रानपारागमपारगान्।  
उपाध्यायानुपासेअहमुपायाय श्रुतात्ये । (30)

मैं पुण्य व श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ एकान्तवादियों को परास्त करने वाले और अपार द्वादशांग आगम के पारगामी उपाध्याय परमेश्वरों की पूजा करता हूँ॥

### “साधु पूजा”

बोधापगाप्रवाहेण विध्याताननगं वहयः।  
विध्याराध्याङ्घ्रयः सन्तु साध्यबोध्यायः साधव ॥ (31)

जिन्होंने सम्यग्ज्ञानरूपी नदी के प्रवाह द्वारा कामरूपी अग्नि बुझा दिया है और जिनके चरण पूजा विधि से पूजनीय है, वे साधु केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए होंगे॥

## “सम्यग्दर्शन पूजा”

मुक्ति लक्ष्मीलता मूलं युक्तिश्रीवल्लरीवनम् ।  
भक्तिअर्हामि सम्यक्त्वं भुक्ति चिन्तामणि प्रदम् ॥ (32)

मैं ऐसे सम्यग्दर्शन की भक्ति पूर्वक पूजा करता हूँ, जो भक्ति लक्ष्मी रूपी लता की जड़ है और जो युक्ति (दर्शन शास्त्र) लक्ष्मीरूपी लता को वृद्धिगंत करने के लिए जल है एवं जो सांसारिक भोगरूपी चिन्तामणि को देने वाला है।

## सम्यग्ज्ञान पूजा

नेत्रं हिताहिता लोके सूत्रं धीसौध साधने ।  
पात्रं पूजाविधेः कुर्वे क्षेत्रं लक्ष्म्याः समागमे । (33)

मैं ऐसे सम्यग्ज्ञान को पूजाविधि का पात्र करता हूँ, अर्थात् उसकी पूजा करता हूँ, जो कि आत्मिक हित और अहित को प्रकाशित करने लिये तीसरा नेत्र है और जो बुद्धि रूपी महल के निर्माण करने के लिये करने के लिए बढ़ई है एवं जो लक्ष्मी के समागम कराने का स्थान है।

## सम्यग्चारित्र पूजा

धर्म योगि नरेन्द्रस्य कर्मवैरिजयार्जने ।  
शर्मकृत्सर्वसत्त्वानां धर्मधीर्वृत्तमाश्रये । (34)

धर्म में बुद्धि रखने वाला मैं ऐसे सम्यक्चारित्र का आश्रय ग्रहण करता हूँ, जो कि कर्मरूपी शत्रुओं पर विजयश्री प्राप्त करने में महामुनि रूपी राजा का धनुष है एवं जो समस्त प्रणियों के लिए सुखदायक है।

जिन सिद्धसूरिदेशकसाधुश्रद्धानबोधवृत्तानाम् ।  
कृत्वाष्टतयीमिष्टिं विदधामि ततः स्तवं युक्त्या । (35)

इस प्रकार अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, व सम्यक्चारित्र की अष्ट द्रव्य से पूजन करके मैं इनका युक्तिपूर्वक स्तवन करता हूँ।

इदानीं ये कृतप्रतिमापरिग्रहास्तान्प्रति स्नापनार्चनस्तवजपध्यान-  
श्रुतदेवताराधविधीन् षट् प्रोदाहरिष्यामः ।

अब हम जिन बिम्ब की पूजा की प्रतिज्ञा करने वाले श्रावकों को उद्देश्य करके अभिषेक, पूजन, स्तुति, जप, ध्यान व श्रुतदेवता की आराधना इन छह विधियों की कहेंगे -

## अभिषेक विधि

श्री केतनं वाग्वनितानिवासं पुण्यार्जनक्षेत्रपुंसकानाम्  
स्वर्गापवर्गगमनैकहेतुं जिनाभिषेकाश्रयमाश्रयामि । (36)

मैं ऐसे जिनेन्द्र देव के अभिषेक के गृह (जिनमन्दिर) में प्रविष्ट होता हूँ, जो लक्ष्मी देवी का गृह है, श्रुतदेवता का निवास स्थान है व देव पूजादि करने वाले श्रावकों के पुण्यार्जन का खेत है तथा स्वर्ग व मोक्ष-प्राप्ति का मुख्य कारण है।

भावामृतेन मनासि प्रतिलब्धशुद्धिः  
पुण्यामृतेन च तनो नितरां पवित्रः ।  
श्री मण्डपे विविध वस्तुविभूषितायां  
वेद्यां जिनस्य स्तवनं विधिवत्तनोमि । (69)

मैं विशुद्ध परिणामरूपी जल से अपनी मानसिक शुद्धि प्राप्त करके और पवित्र जल द्वारा शरीर में अत्यन्त पवित्र होकर अर्थात् सफलीकरण व अग्न्यास करके श्री मण्डप में अष्ट मंगल द्रव्यों (छत्र व चमर आदि) से अलंकृत हुई वेदी पर श्री जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक यथा-विधि विस्तारित करता हूँ।

उदङ् मुखः स्वयं तिष्ठेत्प्राङ्मुखं स्थापयेज्जिनम् ।  
पूजाक्षणे भवेन्नित्यं यमी वाचंयमक्रियः । (70)

ऐसी प्रतिज्ञा करके पूजा करने वाला श्रावक स्वयं उत्तर दिशा की ओर मुँह करके खड़ा हो और जिनबिम्ब का मुख पूर्व दिशा की ओर स्थापित करे तथा पूजा के समय सदा संयमी (प्राणी रक्षा करने वाला और इन्द्रियों का काबू में करने वाला) और मौन रखने वाला, अर्थात्

पूजा मन्त्रों के उच्चारण के सिवा दूसरों से भाषण न करने वालो होवे।

प्रस्तावना:-

प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना संनिधापनम् ।

पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम् । (71)

मैं उस जिनेन्द्रदेव का अभिषेक प्रारम्भ करता हूँ जो लक्ष्मी के जन्म के लिए समुद्र सरीखे है, जिसे योगीजन अपने मन में चिन्तवन करते है, जिसके द्वारा समस्त लोक स्वामी युक्त है, जिसके लिए समस्त देव समूह नमस्कार करते है, जिससे द्वादशाङ्गश्रुत का प्रादुर्भाव हुआ, जिसकी प्रसन्नता से मानव पुण्यशाली होते है और जिसमे संसार का कारण कर्म सम्बन्ध (राग, द्वेष व मोहादि) नहीं है।

वीतोपलेपवपुषो न मलानुषङ्गअस्त्रैलोक्यपूज्यचररस्य कुतः उपरोऽर्घ्यः

मोक्षामृते घृतघियस्तव नैव कामः स्नानं ततः कमुपकारममिदं तनोतु ॥ (73)

हे प्रभो! आपके शरीर से आगन्तुक मल के नष्ट हो जाने से आपका मैल से कोई सम्बन्ध नहीं है, तीन लोग द्वारा पूजनीय चरण कमल वाले आपके दधि व दुग्ध आदि प्रमुख पदार्थ पूज्यता के पात्र पवित्र किस प्रकार हो सकते है। इसी प्रकार मोक्ष रूपी अमृत से स्थापित की हुई बुद्धिवाले आपमें जब किसी प्रकार की वांछा नहीं है तब यह अभिषेक आपका क्या उपकार कर सकता है?

तथापि स्वस्य पुण्यार्थं प्रस्तुवेअभिषेकं तव ।

को नाम सूपकारार्थं फलार्थी विहतोद्यमः (74)

तथापि मैं अपने पुण्य संचय के लिए, आपका अभिषेक आरम्भ करता हूँ क्योंकि कौन धान्य आदि फल का इच्छुक मानव धान्य आदि व्यजंनो के लिए अपना प्रयत्न नष्ट करने वाला होगा?

**पुराकर्म**

रत्नाम्बुभिः कुशकृशानुभिरात्त शुद्धौ मूमौ भुजङ्गमपतीनमतैरुपास्य ।

कुर्मः प्रजापतिनिकेतनदिङ्मुखानि दुर्वाक्षतप्रसवदर्भविदमृर्भितानि । (75)

रत्न सहित जलों (जल से भरे हुए कलश आदि मे पंचरत्न क्षेपण किये जाते है - मुद्रार्पण) से व दर्भाग्नि के प्रजावल से ग्रहित शुद्धिवाली जिनेन्द्र की अभिषेक भूमि में दुग्ध से धरणेन्द्रों को सन्तृप्त करके ब्रह्म स्थान (सिंहासन) की पूर्व आदि दश दिशाओं की दुर्वा, अक्षत, पुष्प व डामों से गुम्फित करते है।

पाथः पूर्णान्कुभान्कोणेषु सुपल्लवप्रसूनार्चान् ।

दुग्धाब्धीनिव निदधे प्रवालमुक्तोत्वणांश्चतुरः । (76)

मैं वेदी के चारों कोनों में आम्रादि के पल्लवों से और पुष्पों से पूजित व जल से भरे हुए चार घंटों को स्थापित करता हूँ जो कि मूँगों और मोतियों की मालाओं से युक्त होने के कारण क्षीर समुद्र सरीखे है।

**स्थापना**

यस्य स्थानं त्रिभुवनशिरः शेखराग्रे निसर्गात्तस्यामर्त्यक्षितिभूति-भवेन्नादमृतं स्नानंपी।  
लोगान्नादमृत जलनिधेर्वारि चैत्सुधात्वं धत्ते यत्ते सवनसमये तत्र चित्रीयते कः । (77)

जिस जिनेन्द्र का निवास स्थान स्वभाव से तीन लोग के मस्तक (सर्वार्थसिद्धि विमान) के ऊपर मुकुट सरीखी सिद्ध शिला के ऊपर है, उसके अभिषेक का सिंहासन सुमेरु पर्वत पर है, इसमें आश्चर्य नहीं है। इसी तरह हे जिनेन्द्र! तुम्हारे अभिषेक के समय लोक के आनन्दरूपी क्षीर समुद्र का यह जल यदि अमृत पना प्राप्त करता है तो इसमें कौन आश्चर्य करता है?

तीर्थोदकैर्मणि सुवर्णघटोपनीतैः पीठे पवित्रवपुषि प्रतिकल्पितार्थं ।

लक्ष्मी श्रुतागमन बीजविदर्भगर्भं संस्थापयामि भुवनाधिपति जिनेन्द्रम् । (78)

मैं ऐसे सिंहासन पर तीन-लोक के स्वामी जिनेन्द्रदेव को स्थापित करता हूँ जो कि मणि जड़ित सुवर्ण कलशों से लाए हुए पवित्र जलों से प्रक्षालित किया गया है व जिसके लिए पूर्व में अर्घ्य प्रदान किया गया है एवं जिसके मध्य भाग लक्ष्मी व सरस्वती के बीजों द्वारा श्री हीं का

गुम्फन किया गया है, अर्थात् जिसके मध्य में अक्षतों से श्री हीं लिखे गए हैं।

### संनिधापन

सोअयं जिनः सुरकिरिर्ननुपीठमेतदेतानिदुग्धजलधेःसलिलानि साक्षात् ।  
इन्द्रस्तवहं तव सवप्रतिकर्मयोगात्पूर्णा ततः कथीमयं न महोत्सवश्रीः (79)

यह जिन बिम्ब ही निसन्देह वही समवसरण में विराजमान साक्षात् जिनेन्द्रदेव है व यह सिंहासन ही सुमेरु है एवं कलशों से भरा यह पवित्र जलपूर ही साक्षात् क्षीर सागर का जलपूर है तथा तुम्हारे अभिषेक रूपी अलंकार की शोभा के सम्बन्ध से इन्द्र का रूप धारक मैं ही साक्षात् इन्द्र हूँ तब इस अभिषेक महोत्सव की शोभा पूर्ण क्यों न होगी?

### दिक्पालों का आह्वान

यागेस्मिन्नाकनाथ ज्वलन पितृपते नैगमेय प्रचेतो  
वायो रैदेशशोवोडु पसपरिजना यूयमेत्य ग्रहाग्रा : ॥  
मन्त्रैर्भूः स्वः स्वधापरिधिगतवलयः स्वासु दिक्षुपविष्टाः ।  
क्षेपीयः क्षेमदशाः कुरुत जिनसेवोत्साहिनां विघ्नशान्तिम् । (80)

इस अभिषेक महोत्सव में, हे रक्षण चतुर इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, वायु, कुबेर, ईश धरणेन्द्र तथा चन्द्र तुम लोग जो कि ग्रहों (सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनैश्चर, रवि, राहु व केतु) की प्रमुखता वाले हो अपने परिवार के साथ आकर और "भूः स्वः स्वधा-आदि मन्त्रों के द्वारा बलि (नैवेद्य) प्राप्त किये हुए होकर अपनी-अपनी दिशाओं (पूर्व, अग्रिकोण दक्षिण आदि) में स्थित होकर शीघ्र ही जिनेन्द्र की अभिषेक विधि में उत्साहित हुए पुरुषों की विघ्नशान्ति करो।

### आरती

देहेस्मिन्विहितार्चने नेनदति प्रारब्धगीतध्वनावातोद्यैः  
स्तुति पाठभङ्गलरवेश्चानन्दिनि प्राङ्गणे ।

मृत्स्नागोमय भूति पिण्ड हरितादर्भप्रसूनाक्षतैरम्भोभिश्च  
सचन्दनैर्जिनपतेर्नीराजनां प्रस्तुवे । (81)

जिनेन्द्र - सशरीर के पूजित हो जाने पर भव्यों को प्रमुदित करने वाले जिन मन्दिर के आँगन में, जो कि बाजों व स्तुति पाठकों के मांगलिक शब्दों से गूँज रहा है एवं जिसमें गीतों की ध्वनि आरम्भ हो चुकी है, मैं प्रशस्त मिट्टी, जमीन पर न पड़ा हुआ गोबरपिण्ड, भस्मसमूह, दूर्वा, दूर्भ (कुश) पुष्प, अक्षत, जल तथा चन्दन से जिनेन्द्र भगवान् की नीराजना (आरती) करता हूँ।

### मंगल कामना

पुण्यदुमश्चिरमयं नवपल्लवश्रीश्चेतः सरः प्रमदमन्दसरोजगर्भम् ।  
वागापगा च मम दुस्तरतीरमार्गा स्नानामृतैर्जिनपतेस्त्रिजगत्प्रमोदेः । (82)

जिनेन्द्र भगवान् के तीन लोग को प्रमुदित करने वाले अभिषेक जलों से मेरा यह पुण्य रूपी वृक्ष चिरकाल तक नवीन पल्लवों की शोभा युक्त हो और मेरे चित्त रूपी तड़ाग के मध्य में हर्षरूपी यथेच्छ कमल विकसित हो एवं मेरी वाणीरूपी नदी के तट का मार्ग दुस्तर हो अर्थात् उसे कोई पार न कर सके।

### फलरस अभिषेक

द्राक्षाखर्जूर चोचेक्षु प्राचीनामलकोद्भवैः ।  
राजादनामृपूगोत्थैः स्नापयामि जिनं रसैः । (83)

मैं मुनक्का, दाख, खजूर, नारियल, ईख, पका आँवला, राजादन, (चिरौंजी या खिरनी) आम्र व सुपारी के रसों से जिनेन्द्र का अभिषेक करता हूँ।

### घृताभिषेक का फल

आयुः प्रजासु परमं भवतात्सदैव धर्मावबोध सुरभिश्चिरमस्तु भूपः ।  
पुष्टिं विनेयजनता वितनोतु कामं हैयगंबीज सवलेन जिनेश्वरस्य ।

येषामात्मविशुद्धबोधविभवालोगे सतृष्णं मनस्ते-  
धारोष्णयः प्रवाहधवलं ध्यायन्तु जैनं वपुः । (85)

जिन मानवों की बुद्धि की अविच्छिन्नता (सातत्य) कर्मरूपी सर्पों को निर्विष करने में प्रवृत्त है और जिनका जन्म, जरा व मरण के दुःखों को नष्ट करने वाले धर्म ध्यान के विस्तार में प्रगाढ़ अनुराग है एवं जिनका मन आत्मिक विशुद्ध केवलज्ञानरूपी ऐश्वर्य के दर्शन के लिए उत्कण्ठित है, वे धारोष्ण दूध के प्रवाह से शुभ्र हुए जिनेन्द्र प्रभु के शरीर का ध्यान करें।

### दही अभिषेक

जन्मस्नेहच्छिदपि जगतः स्नेहहेतुनिसर्गा त्पुणयोपाये मृदुगुणमपि स्तब्धलब्धात्मवृत्तिः ।  
चेतोजाड्यं हरदपि दधि प्राप्तजाड्यस्वभावं जैनस्नानानुभवविधौ मङ्गलं वस्तनोतु । (186)

दही संसार के जन्म सम्बन्धी स्नेह (प्रेम-अनुराग) को नष्ट करने वाला होकर के भी स्वभाव के स्नेह (प्रेम) का कारण है। यहाँ पर विरोध प्रतीत होता है, क्योंकि जो स्नेह को नष्ट करने वाला है, वह स्नेह का कारण कैसे हो सकता है? इसका परिहार यह है कि दही जिनेन्द्र प्रभु के अभिषेक के माहात्म्य से जगत् की जन्म परम्परा के स्नेह (अनुराग) को नष्ट करने वाला है और अपि (निश्चय से) वह स्वभाव से स्नेह (घी) का कारण है। इसी प्रकार दही दान के अवसर पर मृदुगुणमपि (कोमल होकर के भी) स्तब्धलब्धात्मवृत्ति (गर्व युक्त-सदर्प नहीं है) किन्तु कठिन है। यहाँ पर भी विरोध मालूम पड़ता है, क्योंकि जो कोमल प्रवृत्ति है वह कठिन कैसे हो सकता है? अतः इसका परिहार यह है कि जो मृदुगुणमपि (कोमल स्वभाव वाला है) और अपि (निश्चय से) स्तब्धलब्धामवृत्ति है (कठिन - स्थिर होकर ही जन्म प्राप्त करता है - जमता है) इसी प्रकार जो चेतोजाड्यं हरदपि होकर के भी जोड्यंस्वभावं (मूर्खता प्राप्त करने वाला) है। यहाँ पर भी विरोध प्रतीत होता है,

क्योंकि मूर्खता-शून्य में मूर्खता किस प्रकार हो सकती है? अतः इसका समाधान यह है कि जो चेतोजाड्यं हरत् (चित की जडता-आलस्य) नष्ट करने वाला है और अपि (निश्चय से) प्राप्तजाड्यस्वभावं (सघनता प्राप्त करने वाला या जलस्वभाव) है, ऐसा दही जिनेन्द्र प्रभु के अभिषेक के माहात्म्य से तुम्हारा कल्याण विस्तारित करे।

### सुगन्धित द्रव्याभिषेक

एलावङ्गकंकोल मलवागरुमिश्रितैः ।

पिष्टैः कल्कैः कषायैश्च जिनदेहमुपास्महे । (87)

हम इलायची, लौंग, कंकोल (सुगन्धि जड़ी बूटी) चन्दन व अगुरु इनके चूर्णों के कल्कों (सुगन्धित जलों) से और पकाकर तैयार किये हुए इनके काढ़ों से जिनेन्द्र देव के शरीर की उपासना करते हैं।

### मंगल द्रव्यों से अवतरित

नन्द्यावर्तस्वस्तिक फलप्रसूनाक्षताम्बुकुशपूलैः ।

अवतारयामि देव जिनेश्वरं वर्धमानेश्च । (88)

नन्द्यावर्तक, स्वस्तिक, फल, पुष्प, अक्षत, जल और कुश समूह से तथा सराव पुटों (सकोरों) से जिनेन्द्रप्रभु को अवतरित करता हूँ।

### चार कलशों से अभिषेक

मद्भदाविलक्ष्मीलतिकावनस्य प्रवर्धनावर्जित वारिपूरैः ।

जिनं चतुर्भिः स्नपयामि कुम्भैर्नभः सदो धनुपयोधराभैः । (89)

जिनमें मेरी भविष्य में होने वाली लक्ष्मी रूपी लता के वन को वृद्धिगत करने वाला जलपूर ग्रहण किया गया है (भरा गया है) व जिनकी कान्ति देवों की कामधेनु के स्तनों सरीखी शुभ्र है, ऐसे चार कलशों से पूर्वोक्त जिनेन्द्र प्रभु का अभिषेक करता हूँ।

### गन्धोदकाभिषेक

लक्ष्मीकल्पल्ले समुल्लस जनानन्दैः परं पल्लवै  
धमाराम फलैः प्रकामसुभगस्तव भव्यसेव्यो भव।  
बीधाधीश विमुच्य संप्रति मुहुर्दुष्कर्म धर्मकलमं  
त्रैलोक्यप्रमहावहे जिनपतेर्गन्धोदकैः स्नापनात् । (90)

जिनेन्द्र प्रभु के तीन लोक को आनन्द दायक गन्धोदकों के अभिषे-  
चन से है लक्ष्मीरूपी कल्पलता। तुम मनुष्यों के आनन्दरूपी पल्लवों से  
उल्लास को प्राप्त हो जाओ। हे धर्मरूपी उद्यान। तुम फलों से अत्यन्त  
मनोज्ञ होकर भव्य प्राणियों द्वारा सेवनीय हो जाओ और हे ज्ञानवान  
आत्मा। तुम अब दुष्कर्मरूपी सन्ताप की ग्लानि को बार-बार छोड़ो।

### जलाभिषेक

शुदैविशुदबोधस्य जिनेशस्योत्तरोदकैः ।  
करोम्य वृमथस्नानमुत्तरोत्तरसंपदे । (91)

मैं केवलज्ञानी जिनेन्द्र प्रभु का शुद्ध व श्रेष्ठ जलों से अभिषेक करके  
सर्वोत्कृष्ट लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए यज्ञान्तस्नान (अभिषेक करने के  
पश्चात् स्नान करके अष्टप्रकारी पूजा की जाती है, यह क्रम है) करता  
हूँ।

### जल से पूजा

पुण्योपार्जनशरणं पुराणपुरुषं सतवोचिताचरणम् ।  
पुरुहूतविहितसेवं पुरुदेवं पूजयामि तोयेन । (93)

मैं ऐसे प्रथम तीर्थकर आदिनाथ भगवान् की जल से पूजा करता हूँ  
जो कि पुण्योपार्जन के ग्रह हैं, जो पुराण पुराण है, जिनका चारित्र्य स्तुति  
के योग्य है और जिनकी पूजा इन्द्रों द्वारा की गई है।

### चन्दन से पूजा

मन्दमदमदमं मन्दकिरीशिरं वरमज्जावसरं ।  
कन्दमूमालतिकायाश्चन्दनचर्चाचिंतं जिनं कुर्वे । (94)

जो प्रचुर दर्प वाले काम का दमन करने वाले हैं, जिनको सुमेरु पर्वत  
के शिखर पर अभिषेक का अवसर प्राप्त हुआ है और जो कीर्तिरूपी लता  
की जड़ है, उन जिनेन्द्र देव को हम चन्दन के लेप से पूजित करते हैं।

### अक्षतों से पूजा

अवमतरुगहनदहनं निकामसुख सभवामृत स्थानम् ।  
आगमदीपालोकं कलमभवैस्तन्दुलैर्भजामि जिनम् । (95)

मैं ऐसे जिनेन्द्र देव की धान्य तण्डुलों (अक्षतों) से पूजा करता हूँ जो  
दोष (रागादि) रूपी वृक्षों के वन को भस्म करने के लिए अग्नि सरीखे हैं  
जो अनन्त सुख की उत्पत्ति के लिए मोक्ष सट्टश हैं और जिनमें आगम  
(द्वादशाङ्गश्रुत) रूपी दीपक का प्रकाश वर्तमान है।

### पुष्पों से पूजा

समरसविमुक्तसुक्तिं विज्ञानसमुद्र मुद्रिताशेषम् ।  
श्रीमानसकलहसं कुसुमशरैरर्चयामि जिननाथम् । (96)

जिनकी सूक्तियाँ (वचन) राग से रहित हैं, जिन्होंने (केवल ज्ञान)  
रूपी समुद्र द्वारा समस्त लोक की वेष्टित किया है और जो लक्ष्मी रूपी  
मानसरोवर के राजहंस है, उन जिनेन्द्र प्रभु की पुष्पों से पूजा करता हूँ।

### नैवेद्य से पूजा

अर्हन्तममिततिं निरन्जनं मि हिरमाधिदावाग्रैः ।  
आराधयामि हविषा मुक्ति श्रीर मितमान्मडङ्गनम् । (97)

मैं ऐसे अर्हन्त भगवान् की नैवेद्य से पूजा करता हूँ, जिनकी नीतियाँ  
नय अनन्त है, अर्थात् जो अनन्त नयों के स्वरूप के प्रतिपादक है जो  
निरंजन (राग, द्वेष व मोहरूपी अंजन से रहित वीतराग विशुद्ध) है जो  
मानसिक व्याधिरूपी दावानल अग्नि को बुझाने के लिए मेघ सरीखे है,  
जिनका मन मुक्तिरूपी लक्ष्मी के साथ अनुरक्त है और जो कामदेव  
सरीखे मनोज्ञ हैं।

## दीपों से पूजा

भक्त्या नतामराशयकमलबना रालतिमिरमार्तण्डम् ।

जिनमुपचरामि दीपैः सकलसुखाराम कामदमकामम् । (98)

मैं ऐसे जिनेन्द्र देव की दीपों से पूजा करता हूँ, जो कि भक्ति से नम्रीभूत हुए देवों के चित्त रूपी कमल वन का विषमान्धकार (निविड़, अज्ञानान्धकार व पक्षान्तर में विकसित होना) नष्ट करने के लिए सूर्य सरीखे हैं जो समस्त सुखों के लिए उद्यान रूप हुए अभिलषित वस्तु देने वाले हैं एवं जो कामवासना से रहित हैं।

## धूप से पूजा

अनुपमकेवलवपुषं सकलकलाविलय वर्तिरूपस्थम् ।

योगावगमयनिलयं यजामहे निखिलंग जिनं धूपैः । (99)

हम ऐसे जिनेन्द्र देव की धूप से पूजा करते हैं जिनका अनोखा केवलज्ञान और अनोखा परमौदारिक शरीर हैं, समस्त भावकर्मों (रागादि) के नष्ट हो जाने पर जो रूप रहता है, उसी रूप (केवल ज्ञान स्वरूप) में जो स्थित-ज्ञान की अपेक्षा समस्त पदार्थों से व्यापक हैं।

## फलों से पूजा

स्वर्गापवर्ग संगति विधायिनं व्यस्तजातिमृतिदोषम् ।

व्योमचरामरपरिभिः स्मृतं फलैर्जिनपतिमुपासे ॥ (100)

मैं ऐसे जिनेन्द्र देव की फलों से उपासना (पूजा) करता हूँ जो कि स्वर्गश्री व मुक्तिश्री के साथ संगम कराने वाले हैं जिन्होंने जन्म व मृत्यु रूपी दोष नष्ट कर दिये हैं और जो विधाधरों के स्वामियों व देवेन्द्रों द्वारा स्मरण किये गये हैं।

## पूजानन्तर की क्रियाएं

अभश्चन्दनतदुलोदग महविर्दपिः सधूपैः-

फलैर्घित्वा त्रिजगदगुरुं जिपति स्नानोत्सवान्तरम् ।

तं सतोमि प्रजपामि चेतसि दधे कुर्वे श्रुताराधनं

त्रैलोक्यप्रभवं च तन्महमहं कालत्रये श्रद्दधे ॥ (101)

अभिषेक समारोह के पश्चात् तीन लोक के गुरु श्री जिनेन्द्र की जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप व फलों से पूजा करके मैं उनकी स्तुति करता हूँ उनका नाम जपता हूँ, उन्हें अपने चित्त में स्थापित करता हूँ एवं द्वादशाब्द श्रुत की आराधना करता हूँ तथा तीन लोक में उत्पन्न होने वाले उस यज्ञोत्सव की तीनों कालों में अनुमोदना करता हूँ, अर्थात् जहाँ कहीं यज्ञ (पूजा) होता है, उसकी मैं अनुमोदना करता हूँ।

यज्ञेर्मुदावभू थभागिनरूपास्य देवं पुष्पांजलि प्रकर पूरिजपादपीठम् ।

श्वेतापत्र चमरीरूहदर्पणाद्यैराराधायामि पुनरेनमिनं जिनानाम् । (102)

यज्ञान्त स्नान किया हुआ मैं जिनका पादपीठ (चरणों के पास का स्नान) पुष्पांजलि समूह से भरा हुआ है, उन जिनेन्द्र देव की पूजा द्वारा हर्षपूर्वक उपासना करके पुनः मैं उनकी श्वेत छत्र, चमर व दर्पण आदि मांगलिक द्रव्यों से आराधना करता हूँ।

## पूजक की इष्ट प्रार्थना एवं पूजा फल

भक्तिर्नित्यं जिनचरणयोः सर्वसत्त्वेषु मैत्री

सर्वातिथ्ये-मम विभवधीर्बुद्धिरध्यात्मतत्त्वे ।

सद्दिद्येषु प्रणयपरता चित्तवृत्तिः परार्थे

भूयादेतद-भवति भगवन्धाम यावत्त्वदीयम् । (103)

हे भगवान् । जब तक आपका केवलज्ञान रूप प्रकाश मेरी आत्मा में प्रकट हो तब तक जिन-भगवान् के चरणों में मेरी भक्ति हो, समस्त प्राणियों में मेरा मैत्रीभाव (दुःख उत्पन्न न होने की अभिलाषा) हो। मेरी धन वितरण की बुद्धि समस्त अतिथियों के सत्कार में संलग्न होवे, मेरी बुद्धि अध्यात्मतत्व में लीन रहे, मेरी विद्वानों के प्रति प्रेम-तत्परता हो तथा मेरी चित्तवृत्ति परोपकार करने में प्रवृत्त हो।

प्रातर्विधस्तव पदाम्बजपूजनेन मध्याह्ननिधिरियं मुनिमाननेना  
सांयतनोऽपि समयो मम देव यायान्नित्यं त्वदाचरण कीर्तनकामितेन  
हे देव! मेरी प्रातः कालीन विधि आपके चरणकमलों की पूजा  
सम्पन्न हो, मध्याह्न बेला का समागम साधुओं के सन्मान में व्यतीत हो  
एवं मेरी सायंकालीन बेला भी सदा आपके चरित्र कथन की कामना में  
व्यतीत हो।

धर्मेषु धर्मनिरतात्मसु धर्महेतौ धर्मादवाप्तमहिमास्तु नृपोऽनुकूलः।  
नित्यमजिनेन्द्रचरणार्चनपुण्यधन्याः कामंप्रजाश्चपरमाश्रियमाप्नुवन्तु। (105)

धर्म के आचरण के प्रभावशाली हुआ राजा धर्म (उत्तम क्षमा आदि)  
धार्मिक जन (मुनि-आदि) वे धर्म साधनों (चैत्यालय, मुनि शास्त्र व  
संघ) के विषय में सदा अनुकूल रहें और सदा जिनेन्द्र के चरण कमलों  
की पूजा से प्राप्त हुए पुण्य द्वारा पुण्यशालिनी हुई जनता यथेष्ट लक्ष्मी  
प्राप्त करें।

### पूजक की क्षमा याचना

आलस्याद्ब्रपुषो हषीकहरणैव्यक्षितो  
वात्मनश्चापल्यान्मनसोमतेर्जडतया मान्दय वाक्सौष्ठवे।  
यः कश्चित्तव संस्तवेषु समभूदेष प्रमादः स मे  
मिथ्यास्तान्नु देवताः प्रणयिनां तुषयन्ति भक्त्या यतः। (106)

हे देव! शरीर के आलस्य से या इन्द्रियों का दूसरी जगह उपयोग के  
चले जाने से, आत्मा की दूसरे कार्यों में व्याकुलता के कारण, मानसिक  
चंचलता से, बुद्धि की जड़ता से और वचनों से स्पष्ट उच्चारण की  
मन्दता के कारण तुम्हारी स्तुति में मुझ से जो कुछ प्रमाद हुआ है, वह  
मिथ्या हो। क्योंकि निस्सन्देह देवता तो अनुरक्तों की भक्ति से सन्तुष्ट  
होते हैं।

### जिन अपूजक महापापी

देवपूजामनिर्माय मुनीननुपचर्य च।  
यो भुज्जीत गृहस्थः सन्स भुज्जीत परं तमः। (107)

जो मानव गृहस्थ होकर के भी देवपूजा किये बिना और साधुओं की  
सेवा किये बिना भोजन करता है, वह महापाप खाता है।

### धर्म कार्य स्वयं करें

धर्मेषु स्वामिसेवायां सुतोत्पतौ च कः सुधीः।  
अन्यत्र कार्यदैवाभ्यां प्रतिहस्तं समादिशेत्। (330) पृ. 450

जो कार्य दूसरों से कराने योग्य है या जो भाग्यवश हो जाता है (जो  
कुछ भी इष्ट अनिष्ट सुख दुःख होता है, वह भाग्याधीन है उसे स्वयं  
करने का नियम है) उनको छोड़कर दान पुण्यादि धार्मिक कार्य व  
स्वामी की सेवा एवं पुत्रोत्पत्ति को कौन बुद्धिमान मानव दूसरों के हाथ  
से कराने के लिए आदेश देगा? अर्थात् विवेकी पुरुष को उक्त कार्य  
स्वयं करने चाहिए।

आत्मवित्तपरित्यागतपरैर्धर्म विधापने।  
निःसंदेहमवाप्नोति परभोगाय तत्फलम्। (331)

जो अपना धन देकर दूसरों के हाथ से धर्म कराता है, वह उसका  
फल दूसरों के भोगने के लिए प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है,  
अर्थात् उसका फल दूसरे ही भोगते हैं।

भोज्य भोजनशक्तिश्च रतिशक्ति र्वरस्त्रियः।  
विभवो दानशक्तिश्च स्वयं धर्मकृतेः फलम्। (332)

भोज्य पदार्थ, भोजन करने की शक्ति, रति विलास करने की  
सामर्थ्य, कमनीय कमिनियाँ, धनादिवैभव और दान करने की शक्ति ये  
वस्तुएँ स्वयं धर्म करने से प्राप्त होती हैं, न कि दूसरों के धर्म कराने से।

### अध्याय-3

#### आगम में वर्णित स्त्रियों के द्वारा अभिषेक

१-ततःसुरपतिस्त्रियोजिनमुपेत्य शच्यादयः सुगन्धितनुपूर्वकैर्मृदुकराः समुद्वर्तनम्।  
प्रचक्रुरभिषेचनं शुभोपयोभिरुच्चैर्घटैः पयोधरभरैर्निजैरिव समं समावर्जितैः (54)

हरिवंश पुराण 38 सर्ग पृ. 485 (आ. जिनसेन)

तदनन्तर कोमल हाथों को धारण करने वाली शची आदि इन्द्राणियों ने आकर सुगन्धित द्रव्यों से भगवान् को उद्वर्तन-उबटन किया और अपने ही स्तनों के समान सुशोभित एक साथ उठाये हुए शुभ जल से परिपूर्ण कलशों के द्वारा अभिषेक किया।

२-इत्युक्तो नोदयद्वेगात्सारथी रथमाप सः।

जिनवेश्म तमास्थाप्य तौ प्रविष्टौ प्रदक्षिणम् (20)

हरिवंश पृ. 22सर्ग पृ. 320

क्षीरेक्षुरसधारौघैर्घृतदध्युदकादिभिः।

अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चामर्चितां नृसुरासुरैः। (21)

गान्धर्व सेना के ऐसा कहने पर सारथि ने रथ को वेग से बढ़ाया और सब जिन मंदिर जा पहुँचे। वहाँ रथ को खड़ा कर वसुदेव और गान्धर्व सेना ने मन्दिर में प्रवेश किया, तीन प्रदक्षिणाएँ दी, और दूध, इक्षुरस की धारा, घी, दही तथा जल आदि के द्वारा मनुष्य सुर एवं असुरों के द्वारा पूजित जिनेन्द्र देव की प्रतिमा का अभिषेक किया।

हरिचन्दनगंधादयैर्गन्धशाल्याल्यक्षताक्षतैः।

पुष्पैर्नाना विधैरुद्धैर्धूपैः कालागुरुद्रवैः। (22)

दीपैर्दीपशिखाजलैर्नैवेद्ये निरवद्यकैः।

तावानर्चतुर्चा तामर्चनाविधिकोविदौ। (23)

दोनों ही पूजा में अत्यन्त निपुण थे इसलिए उन्होंने हरिचन्दन की गंध, धान के सुगन्धित एवं अखण्ड चावल, नाना प्रकार के उत्तमोत्तम पुष्प, कालागुरु चन्दन से निर्मित उत्तम धूप, दैदीप्यमान शिखाओं से युक्त दीपक और निर्दोष नैवेद्य से जिन प्रतिमा की पूजा की।

“कियत्काले गते कन्याआसाद्य जिनमंदिरम्।

सपर्या महतीं चकुर्मनोवाक्कायशुद्धितः।

श्रावकव्रतसंयुक्ता बभूवुस्ताश्च कन्यकाः।

क्षमादि व्रतसंकीर्णाः शीलांगपरिभूषिताः।

गौतम चरित्रे

उन तीनों कन्याओं ने श्रावक व्रत धारण करके क्षमादि दश धर्म और शील व्रत धारण किया, कुछ समय बाद उन्होंने जिनमन्दिर में जाकर मन वचन काय की शुद्धि-पूर्वक श्री जिनेन्द्र भगवान् की बड़ी पूजा की।

“गृहीतगंधपुष्पादि प्रार्थना सपरिच्छदा।

अथैकदा जगामैषा प्रातरेव जिनालयम्। प्रथम सर्ग. श्लो. 55

त्रि परीत्य ततः स्तुत्वा जिनांश्च चतुराशया।

संस्नाप्य पूजयित्वा च प्रयाता यतिसंसदि।

(“आचार्य श्री गुणभद्र” जिनदत्त चरित्र)

एक दिन सेठानी जीवजसा स्नान आदि से शुद्ध होकर दास-दासियों के साथ सवेरे ही जिनमन्दिर में भगवान् जिनेन्द्र देव के दर्शन के लिए गयी। वहाँ पहुँचकर उसने पहिले तो जिनेन्द्र देव की तीन प्रदक्षिणा दी, और बाद में स्तुति पूर्वक भगवान् का बिंबाभिषेक किया, पूजा की, और फिर वह मुनियों की सभा में गयी।

अथैकदा सुता सा च सुधी मदनसुंदरी।

कृत्वा महाभिषेकाय जिनानां सुखकोटिदम्।।

-श्रीपाल चरित्र

एक दिन गुणवती वह मैनासुंदरी करोड़ों सुखों के देने वाले जिनेन्द्र भगवान् का महाभिषेक करती भई।

“तदा वृषभसेना च प्राप्य राज्ञीं पदं महत्।

दिव्यां भोगान्प्रभुजानां पूर्वपुण्य प्रसादतः।।

पूजयंती जगत्पूज्यान् जिनान् स्वर्गापवर्गदान्।

दिव्यैरष्टमहाद्रव्यैः स्नपनादिभिरुज्जवलैः।।

-आराधना कथाकोष

पूर्वपुण्य के प्रभाव से उस वृषभसेना ने महारानी के पद को प्राप्त किया। तथा स्वर्ग और मोक्ष के देने वाले श्री जिनेन्द्र भगवान् की अभिषेक पूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजा की।

अभिषेकैर्जिनेन्द्राणामत्युदारैश्च पूजनैः।  
दानैरिच्छाभिपूरैश्च क्रियतामशुभेरणम्॥  
एवमुक्ता जगौ सीता देव्यः साधुसमीरितम्।  
दानं पूजाभिषेकश्च तपश्चशुभसूदनम्॥

पद्मपुराण पर्व 96

यहाँ सीता से कहा गया है कि हे देवी, अशुभ कर्म को दूर करने के लिए श्री जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक तथा पूजन करो और दान दो, इसे सीता ने स्वीकार किया।

इतीयं निश्चयं कृत्वा दिनानां सप्तकं सती।  
श्री जिनप्रतिबिम्बानां स्नपनं सा तदाकरोत्॥

-षट्कर्मोपदेशमाला

यह मदनावली रानी आर्यिका के उपदेशानुसार मुनिनिंदा से उत्पन्न हुए रोग की शान्ति के अर्थ सात दिन तक तीनों समय श्री जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेकपूर्वक पूजन करती भई।

श्री जिनेन्द्र पदाम्भोजसपर्यायां सुमानसाः।  
शचीव सा तदा जाता जैनधर्मपरायणा॥

-गौतम चरित्रे

वह स्थंडिला नाम की ब्राह्मणी जिन भगवान् की पूजा में अपना चित्त लगाती थी, और इन्द्राणी के समान जैन धर्म में तत्पर हो गयी थी।

-आराधनाकथाकोषे

वह नीली बाई प्रतिदिन कल्याण देने वाले श्री जिनेन्द्र पूजन, पात्र-दान, व्रत, शील, उपवास आदि उत्तम कार्यों में तल्लीन रहती थी।

## स्त्री द्वारा पूजा

पूर्व स्नातानुलिप्तापि धौतवस्त्रान्विता पशम्।  
षोडशमरणोपेता स्याद्वधूः पूजयेज्जिनम्। (149)

सती शीलव्रतोपेता विनयादिसमन्विता।  
एकाग्रचिन्ता प्रयजेज्जिनान् सम्यक्त्वमंडिता। (150) पृ60

जो स्त्रियां सती हैं, शीलव्रत को पालन करने वाली हैं, विनय आदि गुणों को धारण करती हैं, जो सम्यग्दर्शन से सुशोभित हैं, और जिनका चित्त चंचल नहीं है अर्थात् जो अपने चित्त को भगवान् के स्वरूप में स्थिर रख सकती हैं ऐसी स्त्रियाँ स्नानकर शरीर पर चंदन लगाकर सफेद धुले हुए वस्त्र पहनकर और सोलह आभूषण पहनकर भगवान् जिनेन्द्र देव की पूजा कर सकती हैं।

श्रावकाचार-आ. उ मास्वामी

तस्मिन्विधाय महतीमुपवासपूर्वा, पूजां जगदिवजयिनो जिनपुंगवस्य।  
स्नानं समीहितनिमित्तमतः स्तदीयबिम्बस्य स प्रविदधे सहितोडग्रेदेव्या।  
(61)

तस्मिन्निति। अग्रदेव्या श्री कालया। सहितः संयुक्तः। सः श्रीषेणः। तस्मिन् नन्दीश्वरपर्वणि। जगद्विजयिनः जगद्विजयशीलस्य। जिनपुंगवस्य जिनश्चासौ पुंगवश्च (?) जिनानाम प्रमत्तादिक्षीणाकषायवसानैकदेशजिनानां पुंवस्तथोक्तः तस्य जिनेन्द्रस्य। उपवास पूर्वाम् उपवासः पूर्व मुख्यं यस्यां ताम्। महती पृथुलाभ् पूजाम् अर्चनाम्। विधाय कृत्वा। अतः पश्चात्। तदीयबिम्बस्य तदीयस्य जिनपुंव संबन्धस्य बिम्बस्या समीहित निमित्तं समीहितस्याभीष्ट फल प्राप्तैर्निमित्तं कारणम्। स्नानम् अभिषेकम्। प्रविदधे प्रचके। दुधाजः धारणे च लिट्।

उस पर्व के अवसर पर राजा ने अपनी पट्टरानी के साथ आठ उपवास किये और आठ दिन जगद्विजय जिनेन्द्र देव की बड़ी भारी

(महामह) पूजा की और इसके पश्चात् उसने इष्टसिद्धि के निमित्त से जिन बिम्ब जिनमूर्ति का अभिषेक किया।

चन्द्रप्रभचरित्र पृ. 88 आ. श्री वीरनन्दि

### इन्द्राणी के द्वारा जिन बालक के शरीर में सुगन्धित लेपादि

अथानन्तर, जब अभिषेक की विधि समाप्त हो चुकी तब इन्द्राणी देवी ने हर्ष के साथ जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव को अलंकार पहनाने का प्रयत्न किया। जिनका अभिषेक किया जा चुका है ऐसे पवित्र शरीर धारण करने वाले भगवान् वृषभदेव के शरीर में लगे हुए जलकणों को इन्द्राणी ने स्वच्छ एवं निर्मल वस्त्र से पोंछा। भगवान् के मुख पर, अपने निकटवर्ती कटाक्षों की जो सफेद छाया पड़ रही थी उसे इन्द्राणी जलकण समझती थी, अतः पोंछे हुए मुख को भी वह बार-बार पोंछ रही थी। अपनी सुगन्धि से स्वर्ग अथवा तीनों लोकों को लिप्त करने वाले अतिशय सुगन्धित गाढ़े सुगन्धि द्रव्यों से उसने भगवान् के शरीर पर विलेपन किया था। यद्यपि वे सुगन्ध द्रव्य उत्कृष्ट सुगन्धि से सहित थे तथापि भगवान् के शरीर की स्वाभाविक तथा दूर-दूर तक फैलने वाली सुगन्धि ने उन्हें तिरस्कृत कर दिया था। इन्द्राणी ने बड़े आदर से भगवान् के ललाट पर तिलक लगाया परन्तु जगत के तिलक-स्वरूप भगवान् क्या उस तिलक से शोभायमान हुए थे ? इन्द्राणी ने भगवान् के मस्तक पर कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला से बना हुआ मुकुट धारण किया था। उन मालाओं से अलंकृत मस्तक होकर भगवान् ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानों कीर्ति से ही अलंकृत किये गए हो। यद्यपि भगवान् स्वयं जगत के चूडामणि थे और सज्जनों में सबसे मुख्य थे तथापि इन्द्राणी ने भक्ति से निर्भर होकर उनके मस्तक पर चूडामणि रत्न रखा था। यद्यपि भगवान् के सघन बिरौनी वाले दोनों नेत्र अंजन लगाए बिना ही श्यामवर्ण थे तथापि इन्द्राणी ने नियोग मात्र समझकर उनके नेत्रों में

अंजन का संस्कार किया था। भगवान् के दोनों कान बिना वेधन किए ही छिद्रसहित थे, इन्द्राणी ने उनमें मणिमय कुण्डल पहनाए थे। जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों भगवान् के मुख की कान्ति और दीप्ति को देखने के लिए सूर्य और चन्द्रमा ही उनके पास पहुँचे हों।

मोक्ष लक्ष्मी के गले के हार के समान अतिशय सुन्दर और मनोहर मणियों के हार से त्रिलोकीनाथ भगवान् वृषभदेव के कण्ठ की शोभा बहुत भारी हो गई थी। बाजूबन्द, कड़ा, अनन्त, (अणत) आदि से शोभायमान उनकी दोनों भुजाएँ ऐसी मालूम होती थी मानों कल्पवृक्ष की दो शाखाएँ ही हों। भगवान् के कटि प्रदेश में छोटी-छोटी घष्टियों (बोरों) से सुशोभित मणिमयी करधनी ऐसी शोभायमान हो रही थी मानो कल्पवृक्ष के अंकुर ही हों। गोमुख के आकार के चमकीले मणियों से शब्दायमान उनके दोनों चरण ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानो लक्ष्मी का पुंज ही प्रकट हुआ हो, ऊँची शिखावली रत्नों की राशि ही हो अथवा भोग्य वस्तुओं का समूह ही हो, सौभाग्य का खजाना ही है अथवा गुणों का निवासस्थान ही हो। स्वभाव से सुन्दर तथा संगठित भगवान् का शरीर अलंकारों से युक्त होने पर ऐसा शोभायमान होने लगा था मानों उपमा, रूपक आदि अलंकारों से युक्त तथा सुन्दर रचना से सहित किसी कवि का काव्य ही हो। इस प्रकार इन्द्राणी के द्वारा प्रत्येक अंग में धारण किये हुए मणिमय आभूषणों से वे भगवान् उस कल्पवृक्ष के समान शोभायमान हो रहे थे जिसकी प्रत्येक शाखा पर आभूषण सुशोभित हो रहे हैं।

इति प्रसाध्य तं देविन्द्रोत्संगगतं शची ।

स्वयं विस्मयमायासीत् पश्यन्ती रूपसंपदम् । (19)

इस तरह इन्द्राणी ने इन्द्र की गोदी में बैठे हुए भगवान् को अनेक वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर जब उनकी रूप सम्पदा देखी तब वह स्वयं भारी आश्चर्य को प्राप्त हुई।

संक्रन्दनोऽपि तद्रूपशोभां द्रष्टुं तदातनीम् ।  
सहस्राक्षोऽभवन्नूनं स्पृहयालुस्तृप्तिकः । (20)

इन्द्र ने भी भगवान् के उस समय की रूप सम्बन्धीशोभा देखनी चाही, परन्तु दो नेत्रों से देखकर सन्तुष्ट नहीं हुआ इसलिए मालूम होता है कि वह द्वयक्ष से सहस्राक्ष (हजारों नेत्रों वाला) हो गया था - उसने विक्रिया शक्ति से हजार नेत्र बनाकर भगवान् का रूप देखा था।

उस समय देव और असुरों ने अपने टिमकार रहित नेत्रों से क्षण भर के लिए मेरु पर्वत के शिलामणि के समान सुशोभित होने वाले भगवान् को देखा। तदनन्तर इन्द्र आदि श्रेष्ठ देव उनकी स्तुति करने के लिए तत्पर हुए सो ठीक ही है, तीर्थकर होने वाले पुरुष का ऐसा ही अधिक प्रभाव होता है।

साभार - आदिपुराण पर्व 304  
आचार्य जिनसेन विरचित

### स्त्री ने मुनि के चरण स्पर्श से पति को निर्विष किया

श्री वर्धित महाविज्ञानी तो था ही धीरे-धीरे उसका यश भी प्रसिद्ध हो गया, अतः उसे राजा कररुह से पोदनपुर नगर का राज्य मिल गया। कालक्रम से जब व्याघ्रपुर का राजा सुकान्त मृत्यु को प्राप्त हो गया तब द्युतिनामक शत्रु ने उसके पुत्र सिंहेन्दु पर आक्रमण किया जिससे भयभीत हो वह अपनी स्त्री के साथ एक सुरंग द्वारा घर से बाहर निकल गया। वह अत्यन्त घबड़ा गया था तथा बहुत खिन्न होता हुआ बहन की शरण में जा रहा था। मार्ग में तंबोलियों का साथ हो गया सो उनका भार शिर पर रखते हुए वह अपनी स्त्री सहित सूर्यास्त होने के बाद पोदनपुर के समीप पहुँचा। वहाँ राजा के योद्धाओं ने उसे पकड़कर धमकाया सो जिस-किसी तरह छुटकर भयभीत होता हुआ वन में पहुँचा।

“महोरगेण सन्दष्टस्तं देवी परिदेविनी।  
कृत्वा स्कन्धे परिप्राप्ता देशं यत्र मयः स्थितः॥” (180)

सो वहाँ एक महासर्प ने उसे डंस लिया जिससे विलाप करती हुई उसकी स्त्री उसे कन्धे पर रखकर उस स्थान पर पहुँची जहाँ मयमुनि विराजमान थे।

वज्रस्तम्भसमानस्य प्रतिमास्थानमीयुषः।  
महालब्धेः समीपस्थ पादयोस्तमतिष्ठिपत्॥ (181)

महाऋद्धियों के धारक मयमुनि प्रतिमा योग धारण कर वज्र स्तम्भ के समान निश्चल खड़े थे, सो रानी ने सिंहेन्दु को उनके चरणों के समीप लिटा दिया।

“पादौ मुनेः परामृष्य पत्युर्गात्रं समास्पृशत्।  
देवी ततः परिप्राप्तः सिंहेन्दु जीवितं पुनः॥” (182)

सिंहेन्दु की स्त्री ने मुनिराज के चरणों का स्पर्श कर पति के शरीर का स्पर्श किया जिससे वह पुनः जीवित हो गया।

चैत्यस्य वन्दनां कृत्वा भक्त्या केसरिचन्द्रमाः।  
प्रणनाम मुनिं भूयो भूयो दयितया समम्॥” (183)

तदनन्तर सिंहेन्दु ने भक्तिपूर्वक प्रतिमा की वन्दना की और उसके बाद आकर अपनी स्त्री के साथ बार-बार मुनिराज को प्रणाम किया।

पद्मपुराण, भाग 3 पृ. 105 से 106

### “शान्तिकर्म के लिये सीता द्वारा पंचामृताभिषेक एवं जिनार्चना”

जब कुछ प्रजा सीता का अपवाद श्रीराम को अवगत कराने के लिये आयी, तब सीता को अपशकुन हुआ। तब सीता ने अपशकुन का कारण पूर्वोपार्जित पापकर्म मानकर, पापशान्ति के लिये पंचामृत से जिनाभिषेक, जिनार्चना, दानादि किये, इस प्रकरण का सुन्दर वर्णन पद्मपुराण के ९६ वे पर्व में आचार्य रविषेण ने निम्न प्रकार किया है:-

अथानन्तर जब इस प्रकार शुद्ध हृदय के धारक राम महेन्द्रोदय नामक उद्यान में अवस्थित थे तब उनके दर्शन की आकांक्षा से प्रजा

उनके समीप इस प्रकार पहुँची, मानो प्यासी ही हो। 'प्रजा का आगमन हुआ है' यह समाचार परम्परा से प्रतिहारियों ने सीता को सुनाया, सो सीता ने जिस समय इस समाचार को जाना उसी समय उसकी दाहिनी आँख फड़कने लगी। सीता ने विचार किया कि अधोभाग में फड़कने वाला नेत्र मेरे लिये किस भारी दुःख के आगमन की सूचना दे रहा है। पापी विधाता ने मुझे समुद्र के बीच दुःख प्राप्त कराया है सो जान पड़ता है कि वह दुष्ट उससे सन्तुष्ट नहीं हुआ, देखूँ अब वह और क्या प्राप्त कराता है? प्राणियों ने जो निरन्तर स्वयं कर्म उपार्जित किये हैं उनका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है उसका निवारण करना शक्य नहीं है। जिस प्रकार सूर्य यद्यपि चन्द्रमा का पालन करता है, परन्तु प्रयत्न पूर्वक अपने तेज से उसे तिरोहित कर पालन करता है इसलिये वह निरन्तर अपने कर्म का फल भोगता है? व्याकुल होकर सीता ने अन्य देवियों से कहा कि अहो देवियों! तुमने तो आगम को सुना है इसलिये अच्छी तरह विचार कर कहो कि मेरे नेत्र के अधोभाग के फड़कने का क्या फल है? उन देवियों के बीच निश्चय करने में निपुण जो अनुमती नाम की देवी थी वह बोली कि हे देवि। इस संसार में विधि नाम का दूसरा कौन पदार्थ दिखायी देता है? पूर्व पर्याय में जो अच्छा या बुरा कर्म किया है वही कृतान्त, विधि, दैव अथवा ईश्वर कहलाता है। मैं पृथग् रहने वाले कृतान्त के द्वारा इस अवस्था को प्राप्त करायी गयी हूँ, ऐसा जो मनुष्य का निरूपण करना है वह अज्ञानमूलक है।

तदनन्तर गुण - दोष को जानने वाली गुणमाला नाम की दूसरी देवी ने सान्त्वना देने में उद्यत हो दुःखिनी सीता से कहा कि हे देवी। प्राणनाथ को तुम्हीं सबसे अधिक प्रिय हो और तुम्हारे ही प्रसाद से दूसरे लोगो को सुख का योग प्राप्त होता है। इसलिये सावधान चित्त से भी मैं उस पदार्थ को नहीं देखता जो हे सुचेष्टिते। तुम्हारे दुःख का कारणपना प्राप्त कर

सके। उक्त दो के सिवाय जो वहाँ अन्य देवियाँ थी उन्होंने कहा कि हे देवी! इस विषय में अत्यधिक तर्क-वितर्क करने से क्या लाभ है? शान्तिकर्म करना चाहिये।

**अभिषेकादि का फल:-**

“अभिषेकेर्जिनेन्द्राणामत्युदारैश्च पूजनैः।  
दानैरिच्छाभिपूरैश्च क्रियातामशुभेरणम्॥(15)”

जिनेन्द्र भगवान् के अभिषेक अत्युदार पूजन और किमिच्छक दान के द्वारा अशुभ कर्म को दूर हटाना चाहिये।

“एवमुक्ता जगौ सीता देव्यः साधु समीरितम्।  
दानं पूजा अभिषेक तपश्चाशुभसूदनम्॥(16)”

इस प्रकार कहने पर सीता ने कहा कि हे देवियों! आप लोगों ने ठीक कहा है क्योंकि दान, पूजा, अभिषेक और तप अशुभ कर्मों को नष्ट करने वाला है।

“विघ्नानां नाशनं दानं रिपूणां वैरनाशनम्।  
पुण्यस्य समुपादानं महतो यशसस्तथा॥(17)”

दान विघ्नों का नाश करने वाला है, शत्रुओं का वैर दूर करने वाला है, पुण्य का उपादान है तथा बहुत भारी यश का कारण है।

इतना कहकर सीता ने भद्रकलश नामक कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा कि प्रसूति पर्यन्त प्रतिदिन किमिच्छक दान दिया जावे। “जैसी आज्ञा सो हो।” यह कहकर उधर कोषाध्यक्ष चला गया और उधर यह सीता भी जिनपूजा आदि सम्बन्धी आदर में निमग्न हो गयी।

तदनन्तर जिन मन्दिरों में करोड़ों शंखों के शब्द में मिश्रित एवं वर्षाकालिन मेघ गर्जना की उपमा धारण करने वाले तुरही आदि वादित्रों के शब्द उठने लगे।

## जिनार्चना का वैभवः

“जिनेन्द्र चरितन्यस्त चित्रपट्टा प्रसारिताः।  
पयोघृतादिसम्पूर्णाः कलशाः समुपाहृताः॥(21)”

जिनेन्द्र भगवान् के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले चित्रपट फैलाये गये और दूध, घृत आदि से भरे कलश बुलाये गये।

भूषितांगो दिवापारूढः कंचुकी सितवस्त्रभृत्।  
कः केनार्थीत्ययोध्यायां घोषणामददात् स्वयम्॥(22)”

आभूषणों से आभूषित तथा श्वेत वस्त्र को धारण करने वाले कंचुकीने हाथी पर सवार हो अयोध्या में स्वयं यह घोषणा दी कि कौन किस पदार्थ की इच्छा रखता है?

“एवं सुविधिना दानं महोत्साहमदीयत्।  
विविधं नियमं देवी निजशक्त्याचकार च॥(23)”

इस प्रकार विधि पूर्वक बड़े उत्साह से दान दिया जाने लगा और देवी सीता ने अपनी शक्ति के अनुसार नाना प्रकार के नियम ग्रहण किये।

प्रावर्त्यन्त महापूजा अभिषेकाः सुसम्पदाः।  
पापवस्तुनिवृत्तात्मा बभूव समधीर्जनः॥(24)”

उत्तम वैभव के अनुरूप महापूजाएँ और अभिषेक किये गये तथा मनुष्य पापपूर्ण वस्तु से निवृत्त हो शान्तचित्त हो गये।

इतिक्रियाप्रसक्तायां सीतायां शान्तचेतसि।  
आस्थानमण्डपे तस्थौदर्शने शक्रवद्वलः॥(25)पृ. 196

इस प्रकार जब शान्त चित्त की धारक सीता दान आदि क्रियाओं में आसक्त थी तब रामचन्द्र इन्द्र के समान सभामण्डप में आसीन थे।

“श्रीराम-सीता द्वारा कमलपुष्पादि से जिनार्चना”

उस समय गर्भ के द्वारा की हुई थकावट से जिसका शरीर कुछ-कुछ भ्रान्त हो रहा था ऐसी जनकनन्दिनी को देखकर राम ने पूछा कि हे

कान्ते! तुझे क्या अच्छा लगता है? सो कह! मैं अभी तेरी इच्छा पूर्ण करता हूँ। तू ऐसी क्यों हो रही है? तब कमलमुखी सीता ने मुस्कहराकर कहा कि हे नाथ! मैं पृथ्वीतल पर स्थित अनेक चैत्यालयों के दर्शन करना चाहती हूँ, जिनका स्वरूप तीनों लोकों के लिये मंगलरूप है। ऐसी पंचवर्ण की जिन-प्रतिमाओं को आदर पूर्वक नमस्कार करने का मेरा भाव है। सुवर्ण तथा रत्नमयी पुष्पों से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करूँ यह मेरी बड़ी श्रद्धा है। इसके सिवाय और क्या इच्छा करूँ? यह सुनकर हर्ष से मुस्कहराते हुए राम ने तत्काल ही नम्रीभूत शरीर को धारण करने वाली द्वारपालिनी से कहा कि हे कल्याणि! विलम्ब किये बिना ही मन्त्री से यह कहो कि जिनालयों में अच्छी तरह विशाल पूजा की जावे। सब लोग बहुत भारी आदर के साथ महेन्द्रोदय उद्यान में जाकर जिन-मन्दिरों की शोभा करे। तोरण, पताका, घंटा, लम्बुष, गोले, अर्धचन्द्र, चंदोबा, अत्यन्त मनोहर वस्त्र तथा अत्यन्त सुन्दर अन्यान्य समस्त उपकरणों के द्वारा लोग सम्पूर्ण पृथ्वी पर जिन-पूजा करें। निर्वाण क्षेत्रों के मन्दिर विशेष रूप से विभूषित किये जावें तथा सर्वसम्पत्ति से सहित महा आनन्द-बहुत भारी हर्ष के कारण प्रवृत्त किये जावें। उन सब में पूजा करने का जो सीता का दोहला है वह बहुत ही उत्तम है सो मैं पूजा करता हुआ तथा जिन शासन की महिमा बढ़ाता हुआ इसके साथ विहार करूँगा। इस प्रकार आज्ञा पाकर द्वारपालिनी ने अपनी स्थान पर अपने ही समान किसी दूसरी स्त्री को नियुक्त कर राम के कहे अनुसार मन्त्री से कह दिया और मन्त्री ने भी अपने सेवकों के लिये तत्काल आज्ञा दे दी।

जिन मन्दिर की सजावट:-

तदनन्तर महान् उद्योगी एवं हर्ष से सहित उन सेवकों ने शीघ्र ही जाकर जिन-मन्दिरों में सजावट कर दी। महापर्वत की गुफाओं के

समान जो मन्दिरों के विशाल द्वार थे उन पर उत्तम हार आदि से अलंकृत पूर्ण कलश स्थापित किये गये। मन्दिरों की सुवर्णमयी लम्बी-चौड़ी दीवारों पर मणिमय चित्रों से चित्त को आकर्षित करने वाले उत्तमोत्तम चित्रपट फैलाये गये। खम्बों के ऊपर अत्यन्त निर्मल एवं शुद्ध मणियों के दर्पण लगाये गये और झरोखों के अग्रभाग में स्वच्छ झरने के समान मनोहर हार लटकाये गये। मनुष्यों के जहाँ चरण पड़ते थे ऐसी भूमियों में पाँच वर्ण के रत्नमय सुन्दर चूर्णों से नाना प्रकार के बेल-बूटे खींचे गये थे।

न्यस्तानि शतपत्राणि सहस्रच्छदनानि च।  
देहलीकाण्डयुक्तानि कमलान्यपरत्र च॥(42)पृ. 192

जिनमें सौ अथवा हजार कलिकायें थी तथा जो लम्बी डंडी से युक्त थे ऐसे कमल उन मन्दिरों की देहलियों पर तथा अन्य स्थानों पर रखे गये थे।

हाथ से पाने योग्य स्थानों में मत्त स्त्री के समान शब्द करने वाली उज्ज्वल छोटी-छोटी घंटियों के समूह लगाये गये थे। जिनकी मणिमय डंडियाँ थी ऐसे पाँचवर्ण के कामदार चमरों के साथ-साथ बड़ी-बड़ी हाँड़ियाँ लटकायी गयी थी। जो सुगन्धि से भ्रमरों को आकर्षित कर रही थी तथा उत्तम कारीगरों ने जिन्हें निर्मित किया था ऐसी नाना प्रकार की मालाएँ फैलाई गयी थी। अनेकों की संख्या में जगह-जगह बनायी गयी थी। विशाल वादनशालाओं और प्रेक्षकशालाओं-दर्शकगृहों से यह उद्यान अलंकृत किया गया था। इस प्रकार अत्यन्त सुन्दर विशाल विभूतियों से वह महेन्द्रोदय उद्यान नन्दनवन के समान सुन्दर हो गया था।

**जिनार्चना के लिये शोभायात्रा:-**

अथानन्तर नगरवासी तथा देशवासी लोगों के साथ, स्त्रियों के साथ

समस्त मन्त्रियों के साथ तथा सीता के साथ रामचन्द्र जी इन्द्र के समान बड़े वैभव से उस उद्यान की ओर चले। सीता के साथ-साथ उत्तम हाथी पर बैठे हुए राम ठीक उस तरह सुशोभित हो रहे थे, जिस तरह इन्द्राणी के साथ ऐरावत के पृष्ठ पर बैठा हुआ इन्द्र सुशोभित होता है। यथायोग्य ऋद्धि को धारण करने वाले लक्ष्मण तथा हर्ष से युक्त एवं अत्यधिक अन्न-पान की सामग्री से सहित शेष लोग भी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार जा रहे थे। वहाँ जाकर देवियाँ मनोहर कदली गृहों में तथा अतिमुक्तक लता के समान सुन्दर निकुंजों में महावैभव के साथ उठर गयी तथा अन्य लोग भी यथा योग्य स्थानों में सुख से बैठ गये। हाथी से उतर कर राम ने कमलों तथा नील कमलों से व्याप्त एवं समुद्र के समान विशाल, निर्मल जल वाले सरोवर में सुखपूर्वक उस तरह क्रीड़ा की जिस तरह कि क्षीरसागर में इन्द्र करता है।

**श्रीराम-सीतादि की जिनार्चना -**

“तस्मिन् संक्रीड्य चिरं कृत्वा पुष्पोच्चयं जलादुत्तीर्य।  
दिव्येनार्चनविधिना वैदेह्यासंगतो जिनानार्चना॥(53)”

तदनंतर सरोवर में चिरकाल तक क्रीड़ा कर, उन्होंने फूल तोड़े और जल से बाहर निकल कर पूजा की दिव्य सामग्री से सीता के साथ मिलाकर जिनेन्द्र भगवान् की पूजा की।

“रामो मनोभिराम काननलक्ष्मीसमाभिरुद्यस्त्रीभिः।  
कृतपरिवरणो रेजे वसन्त इव मूर्तिमानुपेतः श्रीमान्॥(54)”

वनलक्ष्मियों के समान उत्तमोत्तम स्त्रियों से घिरे हुए मनोहारी राम उस समय ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो शरीर धारी श्रीमान् वसन्त ही आ पहुँचा हो।

“देवीभिरनुपमाभिः सोऽष्टसहस्रप्रमाण संसक्ताभिः।  
रेजे निर्मलदेहस्ताराभिरिवावृतो ग्रहाणामधिपः॥(55)”

आठ हजार प्रमाण अनुपम देवियों से घिरे हुए, निर्मल शरीर के धारक राम उस समय ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे।

एवं जिनेन्द्र भवने प्रतिदिन पूजा विधानयोगरतस्य।  
रामस्यरतिः परमा जाता रवितेजसः सुदारयुतस्य॥(57)''

इस प्रकार जिनेन्द्र मन्दिर में प्रतिदिन पूजा विधान करने में तत्पर सूर्य के समान तेजस्वी, उत्तम स्त्रियों से सहित राम को अत्यधिक प्रीति उत्पन्न हुई।

पद्मपुराण-पर्व 94  
रविषेणाचार्य विरचित

### मैना सुन्दरी द्वारा पूजा

#### श्रीपाल-मैनासुन्दरी चरित्रः

जहिं अंगदेसु चंपउरि द्वाउ जहिं होतं असि अरिदमन राजा  
णिव-घाडी वाहण कुल पवीणुं जो देव-सत्थ-गुरुपाय-लीणु।  
तहिं होति आइसिरिवाल जणणि कुंदप्पह णिव अरिदमणधरिणि।  
घत्ता- ता उटिठय बेवि विणउ करेवि पाय-कमलिणिवडतइं।  
सा देइ असीम तिहुवण-ईस-पट्ट-धारिणि सिरिवाल तुहा (15)

अंग देश में चम्पापुर नाम का नगर है उसमें घाडीवाहन कुल का एक निपुण राजा था, जो देव, शास्त्र और गुरु का भक्त था उसी राजा अरिदमन की पत्नी और श्रीपाल की माँ कुन्दप्रभा वहाँ से आयी।

घत्ता :- वे दोनों (श्रीपाल और मदनासुन्दरी) विनय पूर्वक उठे, उसके चरण-कमलों में गिर पड़े। माँ ने आशीर्वाद दिया "हे त्रिभुवनशील-श्रीपाल, यह तुम्हारी पट्टरानी बनें"।

ता कुँवरि चित्ति फिहउ संदेहु जाणिउ णिरु रामकुमार रु एहु।  
भल्लऊ भउ जं पुच्छिउ ण गुज्झु ता लितु णाहु आराहु मज्झु।  
जिणहरि जाइति गिण्हमि वयाइँ तुव फेडमि गुरु पायहँ पसाइँ।  
मुणि पुछिवि जिण-सासण पहाणु पुणु करीम सिद्ध-चक्क विविहाणु।

णहवणाइ वि ब्रकुल-पसुण लेवि कुंकुम कप्परह लइध तेवि।  
पहिरिवि चल्लिथ कर-कंकणाइँ सुंदरि लेविणु करि कंकणाइँ।  
बायाहर सिरि-छण-चंदणाइँ लेविण चल्लिय कर चंदणाइँ।  
सहँ सुँदरि दिंती सहस कुसुम जिणंमुनि-जोग्गइ लइचल्लिय कुसुमा।  
सुह-कम्महँ कारणु जाणि वेय गिणिहवि चल्लिय आरत्तियाइँ।  
चंगी पय वाल-परदि धुवा गिण्हेविणु गमइ दइंग-धुवा।  
जहिं दिण्णे णिरु उत्तम फलाइँ लेविणु चल्लिय उत्तम फलाइँ।  
भालयति णिवेसिउ करं जलीय करि तोवि पसूज करं जलीया।

घत्ता :- जिणहरि जाए विणु जिण पुज्जेविणु पुणु पुज्जिउ आयु पवरु।  
पुणु जाइवि दरसइ मुणि-पय परसई साहु समाहिवंत्तु सुगुरु। (16)

यह सुनकर मदनासुन्दरी का संदेह दूर हो गया। वह समझ गई की यह राजकुमार है। यह अच्छा ही हुआ कि मैंने गुप्त बात नहीं पूछी, नहीं तो स्वामी मेरा अपराध मानता। जिनमन्दिर में जाकर मैं व्रत ग्रहण करूँगी। जिन-शासन में प्रधान मुनि से पूछकर मैं सिद्धचक्र विधान करूँगी। स्नान के लिए विविध फूल लेकर तथा केसर, कपूर आदि लेकर वह चली। वह हाथों में कंगन पहनकर चली। सरस्वती-लक्ष्मी और पूर्णिमा के समान वह हाथ में चन्दन लेकर चली। अत्यन्त सुन्दरी वह सरस फूल देती हुई मुनि के योग्य फूल, नैवेद्य लेकर चली। अपने स्वामी के प्रेम में पगी हुई वह आरती लेकर चली। प्रजापाल राजा की पुत्री बहुत भोली थी। वह दस प्रकार की धूप लेकर चली। जहाँ देने से उत्तम फल होता है, वह वहाँ उत्तम फल लेकर चली। उसने अपनी करांजलि भाल तल पर रख ली, फिर भी उसकी करांजलि में फूल थे।  
घत्ता :- जिन मंदिर में जाकर जिन भगवान की पूजा कर फिर उसने आगम-प्रवर की पूजा की। फिर जाकर उसने मुनि के दर्शन किये और मुनिवर गुरु के पैर छुये।

गुरु भक्ति दए विणु भाव सुद्धि परमेसरु दिण्णी भाव-बुद्धि।  
 पुणु धुवई सहासकर वराई पुहु तुम्हपवित्ति दियं वराई।  
 बसि किय करण-बिसराबय-बसेण तुहुँ वसण वसि किय सवसेण।  
 रइ पीइ पियं विणि हियय-सल्लि तुम्हहिं पियाणि रतिभेय सल्ला।  
 जय-जय-जय तुहुँ तव सिरीबाल दइणाह भिक्खपइं सिरिवाला।  
 जिम तिणइं निरुदइ सीर-वाहि तिम दई सिद्ध चक्क हय कुट्टवाहि।  
 भुवि पभवाइ पुत्ति सम्मतु लेहि अणुवरइं गुणव्वय तिण्णि एहि।  
 पुणु सिक्खा-वय गेणहहि चयारि पभणेह मुणिसरु पावहारि।  
 सुह सिद्ध-चक्कु सबभाव लेहि हाहइ गंदीसरु करेहि।  
 वसु दिन आरंभहि सिद्ध-चक्कु वसुदिण पुत्ति जिणहरे थक्कु।  
 वसु दल आराहहि सिद्ध जंतु असिया-उसाइ तहि परम भंतु।  
 तिवलउ सुकूडु तुहि पासि फेरि छोडं तउ को ओंकारु केरि।  
 चउ कोपह लिहहि तिसूल अट्ट परमेसर-पंच-मज्झहं अड्ड।  
 पुणु मंगल गोतम सरण चारि जिण-धम्म-पुज्ज किज्जइ विरारि।  
 पुणु दल-दल अवलेहहि समग्ग अ क च ट त व प य स लिहि अट्ट वग्गा।  
 दल-अंतरि दसणं-णाणु-चारु चारित्त-चारु तउ लिहहि सारु।  
 पुणु चक्किणि जाला-मालिणीय अंवा परमेसरि पोमणीय।  
 पुणु लिहियहि तह वह दिसावाल गोभूह जक्खेसर तहि सभाला।  
 पुणु बाहिर मंडल माणिभदद पुणु वह भुव-मण्डित्तिरिदु।  
 वसुदिज पालहि चउ बंभरारि एइंदिय-पसारु बसि करि कुमारि।  
 करि एक चित्त वसु दिणई जाउ णिच्चिंतु होवि दिदु करहि भाउ।  
 आयम उत्तउ जं तं करेहि संसउ छंडवि सिरु मणु धरेहि।  
 एयहँ विहि करि सिरिवाल-कति णासिउ वाहिउ अट्टम-दिणंति  
 भक्ति अट्ट-दिणि कियउ तेण वाठिउ विसेसु दिण-दिण-कमेण ।  
 पठम हहु किय जायरणु संतु मालइं णिव-चंपई पूनि जंतु ।  
 इक-गुणी पूज किय कुंवरि कंत णवमिहि दिणी भइ दइ-गुणि तुरंत।  
 वह मिहि पुणु किरिया कम्मु साहि सयगुणी कराइय पूज ताहि ।  
 एयारास दिणि बहु फल-फलाय सहस गुणी पूजा अगलीय ।  
 बारसि दिणि सुंदरि सिद्ध-चक्कु लक्ख-गुण-पूजिउ णाइ चक्कु।  
 चउदसि आराहिवि जंत पाय दह लक्ख-गुणी पूजा कराया।  
 पुण्णिउ परिपूरणु सिद्ध जंतु कोडि गुणी पूजइ कुंवीर कंतु।

घत्ता :- संपुण्णइं दिण्णई अड्डमईं मयरद्ध सम देहु भउ।  
 जिणधम्म-महावें सुद्धे आवें देसु-दिसंतरि लद्ध जउ। (17)

गुरु भक्ति बिना भी भाव शुद्धि नहीं होती। भाव बुद्धि परमेश्वर की दी  
 हुई होती है। अर्थात् जिन भगवान् कि भक्ति रूप निमित्त से भाव शुद्धि  
 होती है। उसने दिगम्बरों की स्तुति की, कि "हे स्वामी आप दिगम्बरों में  
 पवित्र हैं, व्रत के बल पर आपने इन्द्रियों और मन को अपने वश में कर  
 लिया है। अवश को वश में कर लिया है। जो रति कामिनियों के हृदय में  
 शल्य करती है उस रति का आप भेदन करने वाले हैं। तप श्री का पालन  
 करने वाले आपकी जय हो। हे स्वामी। श्रीपाल को भीख में दे दीजियो।  
 जिस प्रकार किसान तृणों को नष्ट करता है, उसी प्रकार कोढ़ रोग को  
 नष्ट करने वाला सिद्ध-चक्र विधान मुझे दो" यह सुनकर मुनि बोले-  
 "हे पुत्री तुम सम्यग्दर्शन ग्रहण करो, अणुव्रत और ये तीन गुणव्रत। फिर  
 चार शिक्षाव्रत ग्रहण करो" पाप का हरण करनेवाले मुनिराज बोले- हे  
 पुत्री शुभ-सिद्ध-चक्र सद्भाव से लो। अष्टान्हिका और नंदीश्वर की  
 पूजा करो। ८ दिन सिद्ध चक्र विधान करो, ८ दिन जिन मंदिर में रहो,  
 आठ दल वाले सिद्धचक्र मंत्र की आराधना करो। उसमें भी "अ सि आ  
 उ सा" परम मंत्र का ध्यान करो। उसके पास सकूट तीन वलय खीचों।  
 ओंकार मंत्र कौन छोड़ता है? चार कोनों में ८ त्रिशूल लिखों, पाँच  
 परमेष्ठियों को लिखो चार मंगलोत्तम की शरण में जाना चाहिए।  
 जिनधर्म का विचार कर पूजा करनी चाहिए। फिर एक-एक दल को  
 समग्र भाव से देखना चाहिए। आठ वर्गों में, अ, क, च, ट, त, प, और  
 य, स लिखना चाहिए प्रत्येक दल में सुन्दर दर्शन, ज्ञान, चरित्र लिखना  
 चाहिए। उसी में श्रेष्ठ सुन्दर पंक्तिया लिखनी चाहिए। फिर चक्रेश्वरी,  
 ज्वालामालिनी, अम्बा, परमेश्वरी और पद्मनी। फिर दश दिग्पाल  
 लिखे और माल सहित गोमुख और यक्षेश्वर लिखें जाये, फिर बाहर  
 मण्डल में मणिभद्र लिखे जाये, फिर दसमुख और माणिक

व्यन्तरेन्द्र लिखे जायें। आठों दिन ब्रह्मचर्य का पालन किया जाये। हे कुमारी! इन्द्रिय प्रसार को भी रोका जाये। आठों ही दिन एक चित्त जाप करो। निश्चिन्त होकर अपने भाव को दृढ़ करो। इस प्रकार आगम में कहे अनुसार यत्न करो, संशय छोड़कर अपना मन स्थिर करो। तुम इस प्रकार श्रीपाल को (निरोग) करो। आठवें दिन उसकी व्याधि नष्ट हो जायेगी। तब उसने शीघ्र ही अष्टान्हिका की ओर क्रम से वह प्रतिदिन उसे बढ़ाती गई। आठों ही दिन उसने जागरण किया। मालव में चम्पा नरेश ने भी यंत्र की पूजा की। कुमारी और कांत ने पहले दिन एक गुणीपूजा की। नवमी के दिन वह पूजा दसगुणी हो गई। दसवीं के दिन क्रिया कर्म साधकर उन्होंने सौ गुणी पूजा करायी। ग्यारस के दिन उसने बहुत फलों से फलित हजार गुणी पूजा करायी। बारहवीं के दिन यन्त्र की आराधना कर शीघ्र दस हजार गुनी पूजा करायी। तेरस के दिन सुन्दरी ने सिद्धचक्र की एक लाख गुनी पूजा करायी। कुर्वर और क्रान्त ने समस्त सिद्धचक्र यंत्र की एक करोड़ गुनी पूजा करायी।

**घत्ता :-** आठवाँ दिन समाप्त होते ही श्रीपाल की देह कामदेव के समान हो गई। जिनधर्म के प्रभाव और शुद्धभाव से देश देशान्तर में उसने जय प्राप्त की।

जे कोठिय सब दुखख संहतई ते सब भले भये जि तुरतंई।  
पाव घोर जो पीडिय आवइ सिद्ध-चक्र फल भए गिरावई।  
जहि जीही सीस गंधोवउ परसिउ तहि तहि कणयमउ दरसिउ।  
पंच कोडि जो अठसडि लखइं णं णाणवई सहासइसंखई।  
पंच सयइं चुलसी अणु कमियइं एवमाइ वाहिउ उवसमियइं।  
सीसि गंधुणर गिण्हइ आउल सयल अंवती भइय गिराउला।  
दिण-दिण-पूज करइ वहु भंतिय पत्तुइ दाणुं देइ विहसंतिया।  
दोहिमि कील करंतइं णिय घरि पयवालु वितह आयउ अवसरि।  
देण्णि विदेक्खि कियउ हिट्टामुहु ता केन विलविउ सवअम्महु।  
देव म करहि भति पुण्णहिउ यहु सो कोठिउ तब जामायउ।

**घत्ता :-** गखइ अणुरंजिउ परियणु रंजिउ घरि-घरिणच्चिहिं वालिया वद्धाए वज्जहिं मंगल गिज्जहिं तूरभेरि अफा लिया। (46)

कोढ़ी, जो दुख सहन कर रहे थे, वे सब शीघ्र ठीक हो गये। जो घोर पाप उन्हें पीडा पहुँचाते आ रहे थे, वे सब सिद्धचक्र के फल से निरापद हो गये। सिर पर जहाँ-जहाँ गंधोदक का स्पर्श होता, वहाँ वहाँ शरीर स्वर्णिम हो जाता। पाँच करोड़ अडसठ लाख निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी रोगों की संख्या बतायी जाती है। वे सब व्याधियाँ शान्त हो गईं। लोग आतुर होकर गंधोदक दे रहे थे समूचा अवन्ति प्रदेश निराकुल हो गया। वह तरह-तरह की पूजा करती और पात्रों को हंसती हुई दान करती। इस प्रकार दोनों अपने घर में तरह-तरह से क्रीड़ा करने लगे, उस अवसर पर राजा प्रजापाल भी आया। उन दोनों को इस प्रकार क्रीड़ा करते देखकर वह अपना मुँह नीचा करके रह गया। तब किसी ने उसके सम्मुख जाकर कहा-“हे देव! संदेह मत कीजिये, यह पुण्यात्मा वही तुम्हारा कोढ़ी दामाद है।

**घत्ता :-** राजा प्रसन्न हो उठा, और परिजन भी प्रसन्न हुये। घर-घर बालायें नाचने लगीं। बधावा बजने लगा, मंगल गीत गाये जाने लगे और तूरिं नगाडे बज उठे।

कवि नरसेन देव विरचित  
सिरिवाल चरिउ

सम्पादक-डा. देवेन्द्र कुमार जैन एम्. ए. पी. एच. डी.  
भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन सन् 1984

## अध्याय-4

### (जिनागम में वर्णित शासन-देवता)

शासन देवता की कल्पना

देवं जगत्त्रयीनेत्रं व्यन्तराद्यश्च देवताः।

समं पूजा विधानेषु पश्यन्दूरं व्रजेदधः। (240) पृ. 433

ताः शासनाधिरक्षार्थं कल्पिता परमागमे।

अतो यज्ञांशदानेन माननीयाः सदृष्टिभिः। (242)

जो श्रावक तीनों लोकों के दृष्टा जिनेन्द्र भगवान् की और व्यन्तर आदि देवताओं की पूजाविधि में समान रूप से मानता है अर्थात्-दोनों की एक सरीखी पूजा करता है, वह विशेष रूप सेनरकगामी होता है। अभिप्रायः यह है कि विवेकी पुरुष को पूजाविधि में दूसरे देव जिनेन्द्र-सरीखे पूज्य एवं सर्वोत्कृष्ट नहीं मानने चाहिए किन्तु उन्हें हीन (छोटा) समझना चाहिए।

जिनागम में जिन शासन की रक्षा के लिए उन शासन देवताओं की कल्पना की गई है, अतः पूजा का एक अंश देकर सम्यग्दृष्टियों को उनका सम्मान करना चाहिए।

तच्छासनैक भक्तीनां सुदृशां सुव्रतात्मनाम्।

स्वयंमेव प्रसीदन्ति ताः पुंसां सपुरंदराः। (242)

व्यन्तरादिक देवता और उनके इन्द्र, जिनशासन के अनन्य भक्त, सम्यग्दृष्टि व व्रती पुरुषों पर स्वयं प्रसन्न होते हैं।

तद्धामवद्धकक्षाणां रत्नत्रयमहीयसाम्।

उभेकामदुधे स्यातां द्यावाभूमि मनोरथैः। (243)

स्वर्ग व पृथ्वी दोनों ही उनके मनोरथों की पूर्ति द्वारा इच्छित वस्तु देने वाले होते हैं, जिन्होंने मोक्ष को अपना काख में बाँधा है और जो रत्नत्रय से महान् हैं।

यशस्तिलक चम्पू.आ.सोमदेव

(शासन देवी देवताओं द्वारा धर्मात्मा की रक्षा)

पापिय काल मुखी कुल भंडिय पड़ैणिय माइ-बहिणि किम छंडिया

हऊँ जाषउँ ससुरउ वावुहरु अब तूँरे कूकरु खरु सुवरु।

अहो जल देवय तुम्ह गिरिक्खह इहि पापि यहि पास मोहि रक्खहु

घत्ता :- बहु-दुक्खु गिरंतर अण्ण भवंतर कासु कीय भो णाह मइं

परलाउ करं तहँ एम रुवं तहँ जल देवि गणु आउ सइं। (44)

विव्हल रत्नमंजूषा उससे कहती हैं- "हे स्त्री लम्पट, दूर हट, दूर हट,ओ कुल नाशक,काल मुखी पापी!तूने अपनी माँ-बहन किस प्रकार छोड़ दी। मैंने तुझे अपना ससुर और बाप समझा था। अब तू कुत्ता, गधा और सुअर है। ओ जल देवताओं! अब तुम देखो, मुझे इस पापी के मोह पाश से बचाओ।"

"हे स्वामी, दूसरे जन्म में मैंने ऐसा क्या किया जो जन्मान्तरों में मुझे निरंतर दुःख झेलने पड़ रहे हैं।" पर शोक मनाती हुई वह रो रही थी। उसके इस प्रकार रोने पर जल देवताओं का समूह स्वयं आया।

माणिभददु सायरु हल्लोलिउ पोहणु धरि अहमूहु चम्बोडिउ।

चक्के सरिय चक्कुजिम फेरिउ वणि आउलिय परंपरि बोलिउ।

हरिसंदण अंबाइय आइय कुक्कुड सप्प रहँ पोआइय।

खेतपालु सुणहा चढि धायउ धवल-सेठि-मुह लूहडु लायउ।

धूमायारु कियउ तव रोहिणि अग्गिपजाली जाला-मालिणि।

रयण मँजूस-सील-गुण सेविहिं वणिवर तासे सासण देविहिं।

विंतिरिंह गरुडासणि आयउ दह-मुह णामिउ गहु सइं मायउ।

आइविधवलु सेठि तहिं साधिउ णिविडबंध पाछे करि बांछिउ।

उद्धपयइ अह सिरु करि चालिउ पुणु अमेहु पापी-मुह धालिउ।

एवमाइ वहु-दुक्खु सहं तउ रक्खहु रक्खहु एम भणंतउ।

वणिवर भणहिं देँदु णिसारहो इहु पावट्ठहो दुट्ठहो जारहो।

गय उवसग्ग करेविणु विंतर वरिवर सिक्खा देवि गिरंतर।

रयणमँजूसहि गय मणणाइवि तुव सिरिवालु मिलइ गउ आइवि।

माणिभद्र ने समुद्र को हिला दिया। जहाज को पकड़कर उलटा कर

दिया। चक्रेश्वरी देवी ने जैसे ही अपना चक्र चलाया, वणिक व्याकुल होकर एक दूसरे से कहने लगे-अश्वों के रथ पर अम्बा देवी आयी। मुर्गों और साँपों के रथ पर पद्मादेवी आयी। क्षेत्रपाल कुत्ते की सवारी करके आये उन्होंने धवल सेठ के मुख पर लघर (जलती हुई लकड़ी) मारी। रोहिणी ने सब और धुआँ फैला दिया। ज्वालामालिनी ने सब दूर अग्नि ज्वाला प्रज्वलित कर दी। रत्नमंजूषा के शील गुण के सेवा करने वाली शासन देवियों ने धवल सेठ को खूब उत्पीड़ित किया। तबव्यन्तरेन्द्र अपने गरुड़ आसन पर आया। उसने दस मुख को झुका दिया और स्वयं आया। आकर उसने धवल सेठ को वहाँ साधा। खूब मजबूती से पकड़कर उसके हाथ पीछे बाँध दिये। सिर नीचे और पैर ऊपर कर उसे चलाया गया और "अमेह" चीज उस पापी के मुँह में डाल दी। इस प्रकार बहुत से दुःखों को सहन करने के बाद वह चिल्लाया कि मुझे बचाओ। वणिक्वर भी बोले कि इस नीच को निकालो। इस पापी नीच और दुष्टाचार के कारण व्यन्तरदेवता इस प्रकार उपसर्ग करके चले गये उन्होंने लगातार उस वणिक्वर को शिक्षा दी। वे रत्न मंजूषा को भी समझा कर चली गयी कि तुम्हारा श्रीपाल आकर मिलेगा।

संधि 2-28 पृ. 78

तं गिसुणि गरेसर कहमि पुरि इह भरइ खेत्ति वेयड्ढगिरि।  
तहिं रयण संचु गामे णयरु विज्जाहर लोयहं सुखयरु।  
सिरिकंतु गरेसरु तहिं वसइ सिरिमइ धरिणि व णं कामरइ।  
सा जिण सासणे अइ णिउण मइ जिण ग्हवण पुज्ज मणि दाण रइ।  
सिरि कंतुण जाणइ धम्म मग्गु मज्जहं सिक्खा विउ सो समग्गु।  
तिणि लयउ धम्मु सावय वयाइं गुरु णा दिण्णइं मणि भावियाइं।

हे राजन्! सुनो कहता हूँ इस भरत क्षेत्र के विजयाधर्दपर्वत पर रत्नसंचय नाम की एक नगरी है जो विद्याधर लोक के लिए सुखकर है उसमें श्रीकान्त नाम का राजा निवास करता था। उसकी श्रीमती नाम की पत्नी वैसी ही थी। जैसे-काम की रति। वह प्रतिदिन जिनशासन की

वंदना करती थी। जो अभिषेक, पूजा और मुनियों को दान देने में लीन रहती थी। श्रीकान्त धर्म का मार्ग नहीं जानता था। पत्नी ने उसे समग्र धर्म का मार्ग सिखाया। उसने श्रावक के व्रत अंगीकार कर लिये। गुरु द्वारा प्रदत्त ये व्रत उसे बड़े अच्छे लगे।

सिरिवाल चरिउ पृ. 16 नरसेन देवकवि

प्रशासनः शासनदेवताश्च या जिनाश्चतुर्विंशतिमाश्रिता सदा। (43)

अप्रतिचक्रदेवता से सहित, सज्जनों के हितैषी जो शासन देव और जिन शासन देवियाँ सदा चौबीसों तीर्थकरो की सेवा करती हैं उनसे भी मैं याचना करता हूँ कि वे सदा जिनशासन के निकट रहे।

हिताः सतामप्रतिचक्र्यान्विताः प्रयाचिताः सन्निहिता भवन्तुता।

गृहीतचक्राप्रतिचक्रदेवता तथोर्जयन्तालय सिंह वाहिनी।

शिवाय यस्मिन्निह सन्निधीयते क्वतत्र विघ्नाः प्रभवन्तिशासने। (44)

चक्ररत्न को धारण करने वाली अप्रतिचक्रदेवता तथा गिरनार पर्वत पर निवास करने वाली अम्बिका देवी (सिंह वासिनी) जिस जिनशासन में सदा कल्याण के लिये सन्निहित - निकट रहती हैं उस जिनाशासन पर विघ्न अपना प्रभाव कहाँ जमा सकते हैं। (43-44)

ग्रहोरगा भूतपिशाचराक्षसा हित प्रवृत्तौ जनविघ्न कारिणः।

जिनेशिनां शासनदेवतागण प्रभावशक्त्याथ शमं श्रयन्तिते ॥ 45 ॥

हित के कार्य में मनुष्यों को विघ्न उत्पन्न करने वाले नागभूत पिशाच और राक्षस आदि हैं। वे जिनशासन के भक्त देवों की प्रभाव शक्ति से शान्ति को प्राप्त हो जाते हैं। भावार्थ - जिन शासन के भक्त देव स्वयं कल्याण करते हैं तथा अन्य उपद्रवी देवों को भी शान्ति - पूर्ण बना देते हैं

हरिवंश पुराण पर्व 66 पृ 808 श्लोक 43, 45

धरणेन्द्र आव्दानम्

(आ. गुण भद्र प्रणीत बृहन्सनपनम्)

ॐ अधरस्यां दिशि सुरवारण चरण तल पृथुलतमपृष्ठ भागमखिल  
जलचर प्रथमशेषधरा भारधरण श्रुति श्रेष्ठं विनिर्मितं कूर्माकारं कूर्मवरमा-  
रूढं ।

फणा मणि गणोज्वलं कुटिल कुन्तलोल्लसिनं ।  
लसत्कुसुम शेखरं विकट विस्फुरत्स्वस्तिकम् ।  
भुजंगम् समन्वितं प्रहसित वदन रूप पद्यात्कीपतिं  
फणाभृतां गणैरनणुमाव्हानयाम्यादरात् ॥57॥

हे धरणेन्द्र । आगच्छ आगच्छ इत्यादि, धरणेन्द्राव्हानम् ।  
अभिषेक पाठ संग्रह-पृ. 27, प्रकाशक पं. इन्द्रलाल शास्त्रीजैन  
श्रीजीवनलाल ठेलिया-दि.जैग्रंथमाला समिति मंत्री-वि.सं. 1552

### क्षेत्रपाल अर्चना:

सद्येनाति सुगन्धेन स्वच्छेन बहुलेन च।  
स्नपनं क्षेत्रपालस्य तैलेन प्रकरोम्यहम् ॥ (62)  
भो: क्षेत्रपाल। जिनप प्रतिमांकपाल दंष्ट्राकराल जिनासन रक्षपाल ।  
तैलाहिजन्म गुडचन्दन पुष्प धूपैर्भोगं । प्रतीच्छा जगदीश्वर यज्ञकाले ।  
(63)

क्षेत्रपालस्य यज्ञेस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे ।  
बलिं ददामि दिसग्नेवेद्यां विघ्न विनाशिने ॥64॥

“पूजा. स्नपनं.” आ.गुणभद्र.

ॐ आं क्रो ह्रीं अत्रस्त्र क्षेत्रपाल । आगच्छा गच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ  
ठ: ठ:, मम सन्निहितो भव भव वषट्, अर्घ्यं ग्रहाण स्वाहा। (अभिषेक पाठ  
संग्रह पृ-28-प्रकाशक इन्द्रलाल शास्त्री जैन)

### धन कुमार चरित्र में शासन देवी-देवता

श्री भदन्त गुण भद्र विरचित  
हिन्दी संपादक श्री पन्नलाल जी साहित्याचार्य सागर  
न मया पूजिता माता सुगन्ध दशमी दिने ।  
आम्बिकाख्या महादेवी सुपुष्प पल चन्दनैः ॥  
कुंकुमैर्नूतनैर्नून मक्षतैः शालिसंभवैः ।  
चरुभिश्चारु गन्धाढ्यै दीपदीपित दिङ्मुखैः ॥10॥  
धूपै धूर्पित दिव्यांगै, कपूर्गुरुवर्तिभिः ।

सदक्षतजलैरर्घैः सत्कमल करम्बितैः ॥102॥  
एवमेव शुभेननं कान्तं कमल लोचनम् ।  
लभते कामिनी नौका कामितं सुभगप्रियम् ॥103॥

द्वितीय परिच्छेद

कोई स्त्री कह रही थी कि मैंने सुगन्ध दशमी के दिन अम्बिका नामक  
महादेवी की उत्तम फूल, चन्दन कुमकुम, धान से उत्पन्न होने वाले नये  
चावलों, मनोहर गंध से युक्त नैवेद्यों, दिशाओं के अग्रभाग को प्रकाशित  
करने वाले दीपकों, दिव्य शरीर को सुवासित करने वाले धूप, कपूर  
तथा अगुरु चन्दन की बत्तियाँ, उत्तम अक्षत और जल तथा सुन्दर  
कमलों से युक्त अर्घ्य के द्वारा पूजा की क्योंकि इस प्रकार पूजा करने से  
ही कोई स्त्री निश्चित ही कमल के समान नेत्रों वाले अभिलषित सुंदर  
पति को क्या प्राप्त नहीं करती अर्थात् अवश्य प्राप्त करती है।

तत आहूय दिग्गथान मन्त्रैः सूरि गुणो दितैः।

यक्ष-यक्षी ततः स्थाप्ये क्षेत्रपाल समन्विते ॥350॥

सकलीकरणं कार्यं मंत्र बीजाक्षरैस्तथा ।

एवं शुद्धि कृतात्मासौ ततः पूजां समारभेत् ॥ (35)

(भव्यमार्गोपदेश उपासकाध्ययन जिनदेव विरचित । श्रावकाचार संग्रह)

पुनः आचार्यों के द्वारा कहे गये मंत्रों से दिग्पालों का आह्वान करके  
क्षेत्रपालों से युक्त यक्ष-यक्षिणी की स्थापना करें ।

पुनः मन्त्र बीजाक्षरों से सकलीकरण करना, इस प्रकार सर्वशुद्ध  
करके शुद्ध आत्मा श्रावक जिनपूजा करें ।

आवाहिउण देवे सुखइ सिहि कालणेरिए वरुणे ।

पणवे जखेस सूली सपिय सवाहणे ससत्थेय ॥439॥

भाव संग्रह-देवसेन विरचित पृ. 199

पुनः इन्द्र, अग्नि, काल (यम), नैऋत, वरुण, पवन, कुबेर, ईशान,  
धरणेन्द्र और चन्द्र को उनकी पत्नी वाहन और सावर सहित पूर्वादि

दशों दिशाओं में क्रम से आह्वान करके स्थापित करना चाहिये ।

दाउण पूज्र दव्वं बलि चरुयं तह य जण्णभायं च ।  
सव्वेसिं मंतेहिय वीयक्खरणाम जुत्तेहिं ॥440॥

तत्पश्चात् इन दिग्पालों को बीजाक्षर नाम से युक्त मन्त्रों के साथ पूजा, द्रव्य, बलि (अर्पण द्रव्य), नैवेद्य और यज्ञ भाग देकर मन्त्रों का उच्चारण करते हुए देवों के देव श्री अरिहंत देव का अभिषेक करना।

सिरि सुद देवीण तहा सव्वाह सणक्कुमार जक्खणा  
रुवाणिं पत्तेक्कं पडिमा वर रयण रइदाणिं॥ (905)

प्रत्येक प्रतिमा उत्तम रत्नादिकों से रचित है तथा श्रीदेवी श्रुतदेवी तथा सर्वाणह एवं सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियों से युक्त है।

तिलोय पण्णत्ति 2 पृ. 528

इन्द्रादिदयशलोकपालपरिवारदेवतार्चनम्,  
पूर्वाशादेश हत्यासन महिषगत नैर्ऋते पाशपाणे ।  
वायो यक्षेन्द्र चन्द्राभरण फणिपते रोहिणीजीवितेश ।  
सर्वेऽप्यायात यानायुधयुवतिजनैः सार्धमो भूर्भुवः स्वः ।  
स्वाहा ग्रहीत चार्घ्यं चरुममृतहिंदं स्वस्तिकं यज्ञभागं ॥ ॥

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्ण सर्वलक्षणसंपूर्णस्वायुधवाहनवधू चिन्ह-  
सपरिवारा इन्द्राग्नि यमनैऋतवरुण वाहनकुवैरेशानधरणेन्द्रसोमनाम-  
दश लोकपाला आगच्छत सम्बौषट् स्वस्थाने तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ममात्र  
सन्निहित भवः भवः वषट् इदमर्घ्यं पाद्यं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं ॐ भूर्भुवः  
स्वः स्वाहा स्वधा ।

श्री पूज्यपाद विरचित महाभिषेकः

### पद्मावती की पूजा

करकण्डु चरित - मूलमुनि कनकामर  
भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन (१९६४)  
संधि ६ - का १२ पृ. ९८॥

रतिवेगा द्वारा पद्मावती पूजा: -

आवादिय सेण्णा तित्थुजाव रइवयएँ उज्जउ कियउ ताव ।  
पुणु तुरिउ विलक्खी हूइयाई अणुसरिय देवि कोमल गिराइ ।  
उद्धरियउ मंडलु ताएँ रम्मु णं धम्मु जिणेदेँ हरिय छम्मु ।  
तहो मज्झि णिवेसिय दिव्व देवि पोमाइव णामेँ थिर करेवि ।  
पुव्वाहिँ मि दिसिहिँ मिजउ थियाउ आहूयउ देविउ आइयाउ ।  
रतंदण कट्टे या घडीय ससि चंदणु कुंकुम सम लहीय ।  
फल फुल्लणिवेज्जहिँ पुज्जकीय उववासइँ पढमउ अणुसरीय ।  
उवएसे लद्धउ वीयंवतु णव कुंकुम कुसुमहिँ जविउ मंतु ।

घत्ता :- आरत्तहिँ दव्वहिँ आलिहिवि आरत्तहिँ वत्थहिँ परिहणिय ।

आरत्त ज्ञाणु ज्ञाएवि पुणु णिज्झाहय देवउ थिरमणिय ॥ (2)

जब वहाँ पर सेना का पड़ाव पड़ गया, तब रतिवेगा ने धर्मोद्योग (व्रत साधन) किया विव्वल होकर कोमल वाणी से देवी का अनुसरण (आह्वान) किया। उसने रमणीक मण्डल के बीच दिव्यदेवी पद्मावती का नाम लेकर स्थापित किया। पूर्व दिशा में जो देवियाँ स्थित है, वे उसके आह्वान करने पर वहाँ आयी। उसने रक्त चन्दन के काष्ठ से गढ़ी हुई पद्मावती की मूर्ति की शुभ चंदन व कुंकुम से अर्चना की तथा फल, फूल व नैवेद्य से पूजा की, एवं उपवासपूर्वक उसका अनुस्मरण किया। उसने उपदेश द्वारा जो बीज मंत्र पाया था, उसका नये कुंकुम और पुष्पों सहित जाप किया। लाल द्रव्यों में लिखकर, लाल वस्त्रों का परिधान करके, लाल (अग्नि आदिक) द्रव्य को ध्यान करके, फिर उसने स्थिर मन से देवता में अपना ध्यान लगाया।

पद्मावती देवी का प्रकट होना-

रतिवेगा ने जब पूजा-अर्चा-करके ध्यान लगाया तब पद्मावती देवी यहाँ प्रकट हुई। वह कोमलांगी देवी धीरे-धीरे लीला पूर्वक एक अनिर्व-  
चनीय अपूर्व मुद्रा धारण किये हुये थी। उसने उस समय अत्यंत सौन्दर्यमय रूप धारण किया था। वह शरीर से सुवर्ण थी, व मन से

विशुद्ध। वह अपने चार हाथों में गुण युक्त पुस्तक भृंग (झारी) मुद्रांगली तथा मृणाल लिये हुई थी। उसके कपाल कर्ण कुण्डलों से चमक रहे थे तथा उनके नूपुरों व कोंची किंकिणियों की झंकार हो रही थी। वह अपने सिर पर पाँच नागफण धारण किये हुये थी एवं एक अपूर्व ही निर्मल प्रसन्नता फैला रही थी। वह पृथ्वी तल पर अपने चरण कमलों की रखती हुई तथा सुहावनी वाणी में कुछ कहती हुई आयी। वह उरस्थल में मोतियों की माला पहने हुये थी, जिसकी कांति समस्त दिशाओं में फैल रही थी। यहाँ मौक्तिक दाम छंद का प्रयोग है। वह गुणों से भरी देवी क्षणमात्र में रतिवेगा के आगे आ खड़ी हुई और बोली - मैं वरदान देती हूँ। हे कृशोदरि, जो कुछ तेरे हृदय में हो, सो तू मांग ले। मैं तेरे कारण ही धरती पर उतरी हूँ।

संधि : 6

### 14 रतिवेगा की देवी से वरदान की प्रार्थना

करकंड चरित पृ. 101

जब देवी के मुखकमल को देखा तब रतिवेगा की आँखों में अश्रु भर आये। (वह बोली) हे भट्टारि देवी, आपके दर्शन से मेरा समस्त पाप-मल नष्ट हो गया है। हे देवी, जो कोई स्वभाव से तेरी स्तुति करता है। वह दुख परम्परा का अनुभव नहीं करेगा। जो कोई प्रतिदिन तेरे मुख का ध्यान करता है, उसके लिए हे देवी, तू (संसार सागर के तारने के लिए) नौका बन जाती है। मुझ दीन पर तू दया कर और दुःख सागर में गिरती हुई मुझे बचा ले। हे देवी मैं तुझसे कुछ नहीं माँगती। केवल एक वरदान के लिए मेरी तुझसे प्रार्थना है। हे भगवती, यदि सचमुच ही तू मुझे वर देती है तो हे देवी तू मेरी एक बात का - " मेरा स्वामी, रत्नाकार में चला गया है, वह जीवित है अथवा मृत्यु को प्राप्त हो गया? " यह सुनकर सुरेश्वरी बोली तेरा रमण तो यान पर से नीचे उतारा वह तत्क्षण ही कनकप्रभा नाम की विद्याधर कन्या के हृदय पर चढ़ गया।

### 15-देवी द्वारा करकण्डु की कुशल वार्ता:-

तब मोह के वशीभूत होकर कनकप्रभा उसे उसी क्षण तिलकदीप को ले गई, और उसे अपने पिता को दिखलाया - देखिये तात, मैंने इस दिव्य चक्षु पुरुष को सागर में पाया है। ऋषियों ने कहा था कि यही मेरा स्वामी होगा, जैसे कि लक्ष्मी ने विष्णु को (सागर में) पाया था विद्याधर ने उसके अनुराग को जानकर उत्सव से उसका विवाह कर दिया। फिर करकण्डु ने एक दिन अपने श्वसुर के बैरी का शीघ्र ही नाश कर डाला। जो सज्जन पुरुष पराया भोजन करता है, वह उसका उपकार करे, इसमें आश्चर्य ही क्या है। जो कोई कनकप्रभा के बैरी को मारेगा वही तुम्हारा स्वामी होगा, अन्य किसी से क्या? इस भविष्यवाणी को मानकर विद्याधरों ने आदरपूर्वक तुरन्त करकण्डु की सेवा स्वीकार कर ली। उन्होंने अनुराग से अपने दोनों हाथ जोड़कर और सिर नवाकर प्रयत्न-पूर्वक उसका अनुसरण किया। वहाँ अब ऐसा कोई विद्याधर न रहा, जिसने उसकी सेवा स्वीकार न की हो।

गय सच्च पुरउ ते मुणि वरासु तं फुल्ल चडावउँ जस हरासु ।  
तुहुं वड्डउ मुणिवर वीयराय परिपुञ्जहुँ पोमँ तुज्जु पाय ॥  
हउँ वड्डउ होमि ण मुणि भणेइ सव्वहँ गरु आरउ जणु गणेइ ।  
देवाण देउ जिणुवा पसिद्ध अरकिम्म हणेविणु जो विसुद्ध ।  
जो णाण समिद्धउ सिद्धिपत्तु सो पुञ्जहि तुहुँ अणुरायरतु ।  
धणदत्तु सुणेविणु तासु वाणि धोवंतउ ण वि पुणु चरण पाणि ।  
जिणु अंचिउ ते पोमँ वरेण चिरु मेरुहिं णाई पुरंदरेण ।  
तहो लोयहिं साहुक्कारु दिण्णु भत्तीभरेण मणु जासु भिण्णु ।  
तहो एकहो फुल्लहो फलई सोवि चंपहि वणदणु तुहुँ हुओ वि ।  
जिणमहिम विसुद्धिँ जो करेइ सिव कामिणि करयलि सो धरेइ ।  
घत्ता := कुद्धमई विलित्तिहिं पयकरहिं जं अचिउ जिणवरु जयतिलउ  
ते कंडू तुह पर करे हुयउ इउ अक्खिउ अई तुह सुहणिलउ । (5)

तब वे सब यशोधर मुनिराज के आगे फल चढाने को गये और ने

आ,  
मा-  
थो  
र में  
अ -  
द का  
हों के  
पू-  
पुत्री  
जो  
तथा

न  
नी  
य करे  
ते  
तः

ने खेद  
अथवा  
युक्त हो  
राजा के  
कहा कि  
द रानी,  
वृक्ष के

हे वीतराग मुनीश्वर, तुम बड़े हो, अतएव इस पद्म से हम तुम्हारे पैर पूजेंगे। तब मुनि बोले - मैं बड़ा नहीं हूँ। लोक में सबसे बड़ा देवों के देव जिनेन्द्र को मानते हैं, जो प्रसिद्ध है और जो कर्मरूपी शत्रुओं का विनाश कर विशुद्ध हुये है, जो ज्ञान से उददीपित है, और सिद्धि प्राप्त कर चुके है। तू भक्तिपूर्वक उसी जिनेन्द्र देव की पूजा कर। मुनि की यह वाणी सुनकर धनदत्त ने बिना हाथ-पाँव धोये ही उस उत्तम पद्म से जिन भगवान की पूजा की। जैसे पूर्व में इन्द्र ने मेरु पर जाकर की थी। लोगों ने उसे साधुवाद दिया, क्योंकि उसका मन भक्ति के भार से भर रहा था। उसी एक फूल के फलसे वह धनदत्त का जीव तू चम्पाधिराज के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है। जो कोई विशुद्धि पूर्वक जिन भगवान की पूजा करता है, वह शिवगामिनी को अपने हाथ से पकड़ लेता है। क्योंकि तूने कीचड से विलिप्त हाथ पैरों से जगतिलक जिनेन्द्र भगवान की पूजा की थी, इसलिए तेरे हाथ और पैरों में कण्डु (खुजली का दाग) हुआ है। मैंने तुझे बात बतला दी।

### पद्मावती का आगमन व मुनिराज से प्रश्न

जं पुच्छिउ गखइ किं पि पई तं जोक्खउ गिय सतीए मई ।  
तं सुविणि णरे सरु विंभियउ तव चरणु मणेण विचिंतियउ ।  
पोमावइ एत्तहिं आय तहि मुणि धम्मु पयासइ ललितु जहिं ।  
पुणु वंदिवि भत्तिएँ णय सिरेण बोल्ला विवि णंदणु कलसरेण ।  
ता पुच्छिउ मुणिवरु णाणदेहु थीवेउ णिहम्मइ जेण एहु ।  
को वि अम्ह हँ सामिय भणु विहाणु दुहणरय णिवासहो गुरु पिहाणु ।  
संसार महण्ण वसंकियाहँ उवओय णिवह सुह छंडियाहु  
करुणेण जईसरु दुक्खियाहँ सुह संपडु विहि अक्खेइ ताहँ ।

घन्ता :- पडिवईं आइ करेवि तहिं उववाईं पुत्ति सया करहि  
हिये इच्छिय सो सुहु अणुहवइ सुर सेज्जहि लीलए रइ करइ (१५)

हे नरपति, जो कुछ तुमने पूछा, वह मैंने पूछा, वह मैंने तूझे अपनी

शक्ति के अनुसार कह दिया। यह सुनकर करकण्डु राजा विस्मित हुआ, और अपने में तपश्चरण का विचार करने लगा। इतने में ही वहाँ पद्मावती का आ पहुँची, जहाँ मुनि ललित धर्म को प्रकाशित कर रहे थे। उसने सिर झुकाकर भक्ति से मुनिराज की वंदना की तथा मधुर स्वर में अपने पुत्र से संभाषण किया। फिर उसने ज्ञान शरीरी मुनिवर से पूछा - " हे स्वामी, मुझे कोई ऐसा विधान बतलाईये, जिससे इस स्त्रीवेद का विनाश हो। तब उस संसार रूपी महासमुद्र से शंकित उपभोग समूहों के सुखों को छोड़ने वाली व दुःखी पद्मावती को यतीश्वर ने करुणा पूर्वक, सुख रूपी सम्पत्ति प्राप्त करने की विधि बतलायी वे बोले- हे पुत्री प्रतिपदा से प्रारम्भ करके लगातार पूर्णिमा तक की तिथि बतलायी। जो कोई ऐसा करता है, वह मनो वांछित सुखों का अनुभव करता तथा सुख्या पर लीलापूर्वक क्रीडा करता है।

### जिन शासन देवता-

तदुक्त मुत्तमाडगना सापि विश्वसन्ती निःश्वसन्ती च विषादेन विगतरक्षणाभ्युपायतया तथा भावितया च तस्य वस्तुनः प्रस्नुतस्तनी स्तन्यं पायायित्वा च भूतले भूपलांछन महितं महार्हमडगुलीय करस्य करे नयस्य सप्रणामम् "रक्षन्तु जिन सन देवताः इत्याक्षचना क्षोणी पति पत्नीपरिचारिका प्रयत्नेन तनय परिसरादप्रः सरन्ती समीपतरवर्तिनः कस्यचन तरोर्मूले तिरोधाय तस्थौ ।

चम्पक माला के कथन का विश्वास करने वाली विजयारानी ने खेद से एक लम्बी श्वास छोड़ी और रक्षा का अन्य उपाय न होने से अथवा उस वस्तु की वैसी ही होनहार होने से उसने द्रवीभूत स्तनों से युक्त हो बालक को दूध पिलाया, पृथ्वी तल पर सुलाया, उसके हाथ में राजा के नाम से श्रेष्ठ अत्यन्त प्रशस्त अंगूठी पहनायी और प्रणाम पूर्वक कहा कि जिन शासन देवता इसकी रक्षा करे। इतना सब कर चुकने के बाद रानी, परिचारिका के प्रयत्न से पुत्र के पास से हटकर किसी समीपवर्ती वृक्ष के

नीचे छिपकर खड़ी हो गई।

### “शासन देवी को वस्त्र-ओडानादि प्रदान”

समधिरुह्य महीभृतस्तस्य मणिमकुटायमानं जिनपति सदनम्, पिपासातुर इव धाराबन्धभादराबंधः समासाद्य सद्यः सफुल्लमल्लिकावकुल मालती प्रमुख प्रफुल्लगुच्छैः पूजार्हमर्हन्तमति भक्तिरभि पूज्य, पुनरपि तरुणतरणिरिव गीर्वाणगिरिं प्रकृष्ट मनोरथः प्रदक्षिणं भ्रमन् तत्रत्यया जिनशासनरक्षियक्षि देवतया सादर संपादितकशिपुः (वादिभसिंह टीका)

समधिरुह्य तस्य महीभृतः पर्वतस्य पक्षे राज्ञः मणि मुकुटायमानं रत्नमौलिवदाचरत्जिनपतिसदनं जिनेन्द्र मन्दिरम् पिपासातुर उदन्यापी-डितो धाराबन्धमिव जलाशयमिव आदरान्धः सन् समासाद्य लब्ध्वा सद्यो झटितिसंफुल्लानि विलासताति यानि मल्लिकावकुलमालती प्रमुख फुल्लानि तेषां गुच्छैः स्तब्कैः पूजार्हं सपर्यायोग्यम् अर्हन्तं जिनेन्द्रं अति-भक्तिः प्रगाढ भक्ति युक्तः सन् अभिपूज्य पूजयित्वा पुनरपि पूजानन्तर तरुण तरणि मध्यान्हमार्तण्डो गीर्वाणगिरिमिव सुमेरु मिव प्रकृष्ट मनोरथः श्रेष्ठाभिः प्रायः प्रदक्षिणं भ्रमन् परिक्राम्यन् तत्रत्यया तत्रभवया जिनशासन रक्षिणी या यक्षिदेवता तथा सादरं ससम्मानं यथा स्यात्तथा संपादितः कशिपूर्वस्त्राच्छादने यस्य तथाभूतः ततो जिनपति सदनतो विनिर्गत्य विश्वतः सर्वतः शश्वद् निरन्तरम् उपपादितस्य तरुणीचरणयावकरसस्य युवति पादालक्तकस्य संपर्केण रक्तलालत्तया स्वयमापि पल्लविरतागमिव व्यपदेशं देशभशिश्रियत् ।

ऊपर चढ़कर उन्होंने (जीवन्धर) उस पर्वत रूपी रजा के मणिमय मुकुट के समान आचरण करने वाले एक जिन मंदिर देखा। जिस प्रकार प्यास से पीड़ित मनुष्य बड़े आदर से जलाशय के पास पहुँचता है उसी प्रकार जीवन्धर स्वामी भी आदर से अन्ध होते हुए उस जिनमन्दिर के पास पहुँचे। उन्होंने तीव्र भक्ति से युक्त हो शीघ्र ही विकसित जूही, मोलश्री तथा मालती आदि प्रमुख-प्रमुख फलों के गुच्छों से पूजा के योग्य अर्हन्त भगवान् की पूजा की। और मध्यान्ह का सूर्य जिस प्रकार सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देता है उसी प्रकार उन्होंने उत्तम मनोरथों से

युक्त हो उक्त मंदिर की बार-बार प्रदक्षिणा दी। उस मन्दिर में जिनशासन की रक्षा करने वाली जो यक्षी देवी रहती थी उसने वहाँ उन्हें आदर पूर्वक वस्त्र तथा भोजन प्रदान किया। वहाँ से निकलकर वे उस पल्लव देश पहुँचे।

### यक्षयक्षिणि सहित प्रतिमाः-

पुरेषुतेषु च स्तम्भास्तत्रिकायाख्याडःडहिताः । सर्ग 22

ऋषभाधीश नागेशदिव्यर्चयाडिकताः ॥ (102) हरिवंश पु०

उन नगरियों (विद्याधर नगरियां) में विद्याधर निकायों के नाम से युक्त तथा भगवान् वृषभदेव, धरणेन्द्र और दिति-अदिति देवियों की प्रतिमाओं से सहित अनेक स्तम्भ खड़े किये गये हैं।

श्री आशाधर प्रतिष्ठा सारोद्धार के प्रथम अध्याय में भी कहा गया है:-

शान्तप्रसन्नमध्यमस्थ, नासाग्रस्था विकार दृक ।

सम्पूर्णभावरूपानु विहाडंग लक्षणानवतम । (63)

रौद्रादिदोष निर्मुक्तं प्रातिहार्याङ्कयक्षयुक् ।

निर्माप्य विधिना पीठे जिनबिम्ब निवेशयेत् । (64)

शान्त, प्रसन्न, मध्यस्थ, नासाग्र और अविकार दृष्टि सम्पूर्ण भावा-नुरूप स्वकीय लक्षण से समन्वित रौद्रादि (क्रूर आदि) दृष्टि से रहित तथा यक्ष यक्षिणी सहित जिनबिम्ब का निर्माण कराकर विधि पूर्वक वेदिका में विराजमान करें ॥ 63-64॥

क्षेत्रपालाय दृष्यस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे ।

बलिं दिशामि दिश्यग्रेर्वेधां विघ्नविधातिने ॥ (128)

ओं ह्रीं क्रों अत्रस्त्रक्षेत्रपालाय इदं... स्वाहा ।

उत्तर वार पूरि तसमीकृततत्कृतायां पुण्त्सनीह भगवन्भखमंडपोर्व्याम् ।

वारस्त्वर्चनादिविधिलब्धमखशभिभागं वेद्यां

यजामि शशिभृदिदशि वारस्तुदेवम् ॥ (129)

## पुष्पाजलि-

श्रीवास्तुदेववास्तुनाधिष्ठातृतयानिशम् ।

कुर्वन्ननुग्रहं कस्य मान्यो नास्तीति मान्य से ॥230॥

ओं वज्राधिपतये-----संवोषट् इसको बोलकर इक्कीस बार अपने को मन्त्रित करे। इस प्रकार यज्ञदीक्षाविधि जानना । अब मंडप की प्रतिष्ठा विधि कहते हैं। "ओं परम्" इत्यादि कहकर पुष्पों को क्षेपण करे। "क्षेत्रपाल" इत्यादि कहकर "ओं हीं" इत्यादि पढ़कर क्षेत्रपाल को जलादि चढ़ाये। (128) "उखात" इत्यादि श्लोक पढ़कर पुष्पा-जलि दे श्लोक तथा "ओं हीं" बोलकर वास्तुदेव को जल आदि आठ द्रव्य चढ़ावें (130)

जहाँ निरन्तर तरुण स्त्रियों के चरणों के महावर के सम्पर्क से पृथ्वी तल लाल-लाल दिखाई देता था और उससे जो ऐसा जान पड़ता था मानो स्वयं ही राग को पल्लवित कर रहा हो- वृद्धिगत कर रहा हो।

(गद्यचिन्तामणि, वादीभ-सिंह विरचित)

पद्मश्रिया चिन्तितम्-अहो मम यः कर्मोदय समायातः सा केन वार्यते? एवं निश्चित्य कृतान्जलि भूत्वा सा भणति स्म यदि मम मनसि जिनधर्म निश्चयोअस्ति यद्यहं पतिव्रता भवामि, यदा मया रात्रिभोजनादिकं त्यक्तं भवति तर्हि भो शासन देवते । मम भर्ता जीवतु । एव सार्थ-वाहोअपि जीवतु । ततः शासन देवतया तस्या व्रतमाहात्म्येन सर्वेऽपिजीवन्तः कृताः । ततस्तद् दृष्ट्वा समस्त नगर जनैराबालगोपाला-दिभिः प्रशंसिता । अहो धन्येयं ईदृग्विधे रूपे वयसि च सत्यपि साधुत्व धर्मज्ञता च, तदाश्चर्यम् । (सम्यकतत्त्वकौमुदी) पृ० 178

पद्मश्री ने विचार किया कि अहो, मेरा जो कर्मोदय आया है वह किसके द्वारा रोका जा सकता है । ऐसा निश्चय कर उसने हाथ जोड़कर कहा यदि मेरे मन में जिनधर्म का निश्चय है यदि मैं पतिव्रता हूँ और यदि मैंने रात्रि भोजन आदि का त्याग किया है तो हे शासन देवता, मेरा पति जीवित हो जाए और यह सेठ भी तदनन्तर शासन देवी ने उसके व्रत के

माहात्म्य से सभी को जीवित कर दिया । पश्चात् यह देख नगर की समस्त आबाल गोपाल लोगों ने पद्मश्री की प्रशंसा की अहो, यह धन्य है कि जो ऐसा रूप और ऐसी अवस्था के रहते हुए भी इसमें साधुता और धर्मज्ञता विद्यमान है। यह बड़ा आश्चर्य है।

## भगवान् के समवशरण मे शासनदेवता:-

महाप्रभावसम्पन्नास्तत्र देवताः ।

नेमुश्चाप्रतिचक्राद्या वृषभं धर्मचक्रिणम् ॥ (222)

उस समवशरण में महाप्रभाव से सम्पन्न अप्रतिचक्र आदि शासन देवता, धर्मचक्र के धारक भगवान् वृषभदेव को निरन्तर नमस्कार करते रहते थे॥

(हरिवंश पु० आ. जिनसेन ९ सर्ग)

## अथ यक्षादिप्रतिष्ठा :-

यक्षादयो जिनेर्चा कमस्तकास्तत्यतिष्ठया ॥

प्रतिष्ठेयास्ततान्येषां प्रतिष्ठाविधि रूच्यते ॥42॥

यक्ष आदिक देव भगवान् की प्रतिमा के रक्षक होते हैं इसलिए उनके मूर्ति आदि की भी प्रतिष्ठा करे।

अव्युतपत्रदशां शान्तकूरैहिकफलाश्च ते ।

त--- प्रकाशार्थं मन्त्रवादे स दर्शितः ॥43॥

जो अज्ञानी है वे शान्त कूर इस लोग के फल के देने वाले हैं ऐसा समझकर उनकी पूजा प्रतिष्ठा करते हैं यह कथन मन्त्रवाद शास्त्रों में दिखाया गया है।

सम्पुष्पमंडपे रात्रौ पंचतीर्थजलोक्षिते ।

यक्षादिप्रतिबिम्बे--- धिवासयेत् ॥44॥

यक्षादि देवो की प्रतिष्ठा पाँच स्थानों के जल से प्रतिबिम्ब का अभि-षेक कर रात्रि में करनी चाहिए ।

अर्थो हीं क्रो मुखं स्थाप्यमावाहनादिगर्भितम् ।

संवोषट् होमपर्यंतमन्त्रं पद्मवरे लिखेत् ॥45॥

प्रकीर्णचूर्ण दर्भेण वेदिपुष्टे तथाष्टसु ।

आदिदेवीतले ओंकारेषु चतुर्ष्वतः ॥46॥

तेजोमायादिहोमांतान् लिखत्पंचदश क्रमात् ।

तिथिदेवान् ग्रह--- पुरान् ॥47॥

आयुधान्यष्ट तुर्ये तु पंचम भूपरे लिखेत् ।

पत्रमण्डलमभ्यर्घ्य विधिवत्तं प्रतिष्ठयेत् ॥48॥

“अर्थो” इत्यादि चार श्लोकों में कथित क्रिया से आवाहन आदि करे ॥

तेजोमायादिकाख्यानं क्रियान्वितम् ।

तत्तत्पल्लवसंयुक्तं करोम्यंतपदं स्मरेत् ॥49॥

“ओं” इत्यादि से कथित विधि से पूजा करे। अमृतमन्त्र से यक्षप्रतिमा का अभिषेक करे। “तेजो” इत्यादि बोलकर “अथैव” इत्यादि से कही हुई विधि से स्थापना करे ॥49॥

एष एव च शेषाणां यक्षाणां स्थापनाविधिः ।

यक्षीणां च मतः किञ्चित् भेदोमंत्राश्रयो भवेत् ॥50॥

क्षेत्रपालं कर्णिकायां मन्त्रपत्रायुधादिभिः ।

सचूर्णवेधामालिख्य पत्रेष्वष्टसु संलिखेत् । (51)

समन्त्रान् दिक्पतीनिंद्रादधोभागानुपर्यपि ।

वरुणस्य लिखेत्सोमं मायोवीभ्यां च वेष्टयेत् । (52)

तत्पदमं पूजदेयदं ध पुष्पधूपाक्षतादिभिः ।

अथ तत्प्रतिमां रात्रिमुषितां दर्भसंस्तरे (53)

तीर्थां स्नपितां तत्र निवेश्यारोप्य तद्गुणान् ।

आहवानादि कृत्वा च सूत्रयुक्त्या प्रतिष्ठयेत् । (54)

इसी प्रकार यक्षी क्षेत्रपाल वरुण आदि की प्रतिष्ठा “एष” इत्यादि पाँच श्लोको में कथित रीति से करे।

दृष्यन्धूर्ध्वभूजा घृतासिफलकः सतृयेनराहवाहासितं श्वानं सिंहसमं करेण भयदामन्येन विभ्रन्ददाम् ।

नागालंकरणः किलाशु उमरुकारावोल्वणांघ्रिक-सेखतर्ध-  
रमत्रयोस्त्यधिकृतः क्षेत्रे स साक्षादयं ॥55॥

ओं हीं नियुक्त क्षेत्रपाल अत्रावतरावतर संवोषट् आवाहनं, ओं हीं अत्र तिष्ठ-2 ठः-2 स्थापनं, ओं हीं मम संनिहितो भव-भव वषट् स-भिधापनम् । ततः सूत्रोक्तविधिना तिलकं दत्त्वाधिवासनादिकं कृत्वा राक्षसवभूषादिभिः सत्कुयद् । इति यक्षादिप्रतिष्ठाविधानम् ।

“ओं हीं” इत्यादि कथित रीति से मांडला बनावे । “दृश्य” इत्यादि श्लोक तथा “ओं हीं” बोलकर क्षेत्रपाल का आवाहन आदि करे ॥55॥

उसके बाद जनशास्त्र कथित विधि से तिलक देकर अधिवासना करके उत्तम वस्त्र आभूषणादिकों से सत्कार करें। यह यक्षादि प्रतिष्ठा की विधि हुई।

(प्रतिष्ठासारोद्धार

पं. श्री आशाधर विरचित

अनुवादक पं. मनोहर लाल शास्त्री)

